



THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, देहरादून का पुष्प नं० ६

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

छठा भाग

(चतुर्थ संस्करण)

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल,
देहरादून

पुस्तक प्राप्ति स्थान

नेमचन्द्र जैन, जैन बंधु

पलटन बाजार, देहरादून—२४८००१ (यू० पी०)

मूल्य : पांच रुपया

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र

प्रकाशकीय निवेदन

जगत के सब जीव सुख चाहते हैं अर्थात् दुख से भयभीत हैं । सुख पाने के लिए यह जीव सर्व पदार्थों को अपने भावों के अनुसार पलटना चाहता है । परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है क्योंकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते हैं और इस जीव का कार्य मात्र ज्ञाता-दृष्टा है ।

सुखी होने के लिए जिन वचनों को समझना अत्यन्त आवश्यक है । वर्तमान में जिन धर्म के रहस्य को बतलाने वाले अध्यात्म पुरुष श्री कान जी स्वामी हैं । ऐसे सत्पुरुष के चरणों की शरण में रहकर हमने जो कुछ सिखा पढ़ा है उसके अनुसार ५० कैलाश चन्द्र जी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातों भाग जिन-धर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पष्ट करने वाले होने से चौथी बार प्रकाशित हो रहे हैं ।

इस प्रकाशन कार्य में हम लोग अपने मडल के विवेकी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचानने वाले स्वर्गीय श्री रूप चन्द जी, माजरा वालों को स्मरण करते हैं जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ था ।

हम बड़े भक्ति भाव से और विनय पूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव जिन वचनों को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करें । ऐसी भावना से इन पुस्तकों का चौथा प्रकाशन आपके हाथ में है ।

इस छोटे भाग में सात प्रकरण हैं । इनके अध्ययन द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वस्वरूप को समझ कर, तत्त्व निर्णयरूप अभ्यास के द्वारा अपनी आत्मा में मोक्षमार्ग का प्रकाश कर मोक्ष का पथिक बने इसके लिए यह छोटा भाग पात्र जीवों के सन्मुख प्रस्तुत है ।

विनीत

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
देहरादून

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

छठे भाग की विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रकरण पहला	
	लेखक की भूमिका	१२
	गोम्पटसार-पीठिका (५० टोडरमलजी कृते)	१६
१	वीतराग विज्ञान मोक्षमार्ग प्रकाशक के आठ मंगलाचरण का स्पष्टीकरण	५०
२	द्रव्य गुणों का स्वतन्त्र परिणमन	६०
३	जैनधर्म के विषयों में शास्त्रों के प्रमाण	६३
४	अज्ञान की व्याख्या	६६
४	निश्चय सम्यक्त्व क्या है ?	६७
६	तत्त्व विचार की महिमा	६८
७	मिथ्यात्व ही आसन्न है और सम्यक्त्व ही सवर निर्जरा मोक्ष है	६९
८.	प्रयोजन और सब दुःखों का मूल मिथ्यात्व	७०
९	भवितव्य	७२
१०	जीव स्वयं नित्य ही है	७४
११	ससारी जीवों का सुख के लिए झूठा उपाय	७५
१२	बाह्य सामग्री से सुख-दुःख मानना भ्रम है	७७
१३	पुद्गलादि पर पदार्थों का कर्ता-हर्ता आत्म नहीं	७९
१४	इच्छा का प्रकार और दुःख क्या क्या है ?	८१
१५	परम कल्याण	८२
१६	प्रत्येक जीवात्मा ससार मोक्ष में भिन्न-भिन्न है	८४
१७	जीव का सदैव कर्तव्य	८५
१८	सर्व उपदेश का तात्पर्य	८५
१९	सम्यग्दर्शन	८७
२०	जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?	९२

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र

जैन धर्म

क्रम	विषय	पृष्ठ
२१	वस्तु का परिणमन बाह्य कारणों से निरपेक्ष है	६३
२२	वासना का प्रकार	६५
२३	अन्तरंग श्रद्धा और उसका फल केवलज्ञान	६७

प्रकरण दूसरा

१	जीव ज्ञान स्वभावी है,	६८
२	ज्ञान दर्शन जीव का लक्षण है	६८
३	क्या समय और कषाय जीव का लक्षण नहीं कहा उसका क्या कारण है	६८
४	ज्ञानी यथार्थ वस्तु का प्रकाशक है	६८
५	जीव दुःख स्वभावी नहीं है	६८
६	सुख जीव का स्वभाव है	६८
७	द्रव्य कर्म जीव का कुछ करता है	६८
८	वस्तु का परिणमन जीव की इच्छानुसार नहीं होता	६९
९	सुख क्या है ?	१००
१०	केवल ज्ञान को अक्षर क्यों कहा है	१००
११	वस्तु का स्वरूप	१००
१२	मनुष्य सब गुणों को उत्पन्न करता है	१००
१३	ज्ञानी को कर्म बाँधता नहीं है	१००
१४	निश्चय चारित्र्य का अंश ५ ६-७ गुणस्थान में है	१०१
१५	सम्यक्त्व क्या है ?	१०१
१६	आध्यात्मिक भाव क्या है ?	१०१
१७	सम्यग्दर्शन सबका समान है	१०१
१८	सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्व पर विवेक वाला है	१०१
१९	ज्ञान का कार्य क्या है ?	१०१
२०	अज्ञानी की दया क्या है ?	१०१
२१	सम्यक्त्व होने पर सन्मार्ग प्राप्त होता है	१०१

क्रम	विषय	पृष्ठ
२२	सम्यक्त्व बीज, सम्यक् मति-श्रुतज्ञान है	१०२
२३.	स्वभाव क्या है ?	१०२
२४.	उपादान कारण के आधीन कार्य होता है	१०२
२५	बन्ध कारण के प्रतिपक्षी का प्रमाण	१०२
२६	सयत् के कितने गुणस्थान हैं ?	१०३
२७	त्रण मूढता	१०७
२८	तत्त्वज्ञान से परम श्रेय होता है	१०६
(अ)	द्वादशांग का नाम आत्मा है	१११
२९	क्या सम्यग्दर्शन समय का अंश है ?	११३

प्रकरण तीसरा

१.	सम्यक्त्व की व्याख्या	११४
२	सम्यक्त्व की उत्पत्ति ही मोक्ष का कारण है	११४
३.	सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व भाव है	११४
४	४ से १४वें गुणस्थान तक सम्यक्त्व समान है	११४
५.	सम्यक्त्व गुणी भूत श्रद्धा आत्मा स्वरूप की प्राप्ति	११४
६.	क्षायिक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व सुलभ है	११४
७.	मिथ्यात्व आदि जीवत्व नहीं है, मगल तो जीव ही है	११४
८	सम्यक्त्व प्राप्त करने वालो ने सन्मार्ग ग्रहण किया है	११५
९.	सम्यक्त्व का फल निश्चयचारित्र्य है और निश्चयचारित्र्य का फल केवलज्ञान-सिद्धदशा है	११५
१०	मिथ्यात्व अनादि है इसलिए वह नित्य नहीं होता	११५
११	सम्यग्दृष्टि को श्रद्धा होती है अज्ञानी को श्रद्धा नहीं होती है	११५
१२	सम्यग्दृष्टि अवन्धक है	११५
१३	द्रव्यानुयोग और करणानुयोग का समन्वय	११६
१४.	श्री घवला मे अवन्ध का कथन क्या किया है ?	११६

क्रम	विषय	पृष्ठ
१५	क्या सर्वे सम्यग्दृष्टियों की स्वभावरूप अवस्था होती है	११६
१६	निश्चय सम्यक्त्व ४ से १४वें तक सर्व को समान है	११७
१७.	मेरु समानादि परमागम के अभ्यास से सम्यग्दर्शन	११७
१८	सम्यग्दर्शन रत्नगिरि का शिखर है	११७
१९.	सम्यग्दृष्टि शुद्ध है वही निर्वाण को प्राप्त होता है	११७
२०	श्रेष्ठतर उपदेश, जन्म-मरण का नाश करने वाला है	११७
२१.	धर्मों में सम्यग्दर्शन अधिक है	११७
२२.	प्रथम श्रावक को क्या करना	११७
२३.	सम्यक्त्व अमूल्य मणी के समान है	११८
२४.	सम्यक्त्व का माहात्म्य	११८
२५.	सम्यग्दर्शन आत्मा में स्थिति इसलिए आत्मा ही शरण है	११८
२६	आत्मा ही शरण है उसका क्या कारण है ?	११८
२७	आत्मा ही शरण है क्योंकि वह भूतार्थ है	११८
२८.	शुद्ध का क्या अर्थ है ?	११९
२९	आत्माश्रित निश्चय-पराश्रित व्यवहार	११९
३०.	पराश्रय बन्ध—आत्माश्रित-मोक्ष होता है	११९
३१.	क्या शुद्ध आत्मा ही दर्शन है ?	११९
३२.	शुद्ध आत्मा ही दर्शन है क्योंकि वह आत्मा के आश्रय से है	१२०
३३.	जीव का स्वभाव एक देश रहने में कोई विरोध नहीं	१२०
३४.	सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जीव को गुणीभूत की श्रद्धा होती है	१२०
३५	तीनों सम्यक्त्व में सम्यक्त्व का एकत्वपना है	१२०
३६.	क्षायोपशमिक क्षायिक की अपेक्षा सुलभ है	१२१
३७	ज्ञान सारभूत है उसकी अपेक्षा श्रद्धा सार है	१२१
३८.	सम्यक्त्व की महिमा क्योंकि उससे ज्ञान की प्राप्ति होती है	१२१
३९.	चरणानुयोग में सम्यक्त्व की महिमा	१२१

क्रम	विषय	पृष्ठ
४०	सम्यक्त्व की महिमा से कर्म नहीं बधता है	१२१
४१.	श्रद्धान का बल क्या है ?	१२२
४२.	तिर्यचो मे सम्यक्त्व समान है	१२२
४३	सम्यग्दर्शन अर्घ है	१२२
४४	सम्यग्दर्शन पूजा है	१२२
४५	सम्यग्दृष्टि नमस्कार के योग्य है	१२२
४६	सम्यग्दृष्टि कसा जानना है	१२३

प्रकरण चौथा

१	निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्पष्टीकरण	१२३
२	साधक अन्तरात्मा को एक साथ साधक-बाधक है	१२४
३	भूमिकानुसार निश्चय व्यवहार की व्याख्या क्या है	१२५
४.	ज्ञानी के व्यवहार मे विपरीतपन्ना नहीं होता है	१२५
५	व्यवहार सम्यग्दर्शन किसको होता है	१२६
६	व्यवहार सम्यक्त्व क्या है ?	१२६
७	व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है ?	१२६
८	विपरीत अभिनिवेश रहित ही सम्यक्त्व है	१२७
९	प्रवचनसार गाथा १५७ मे निश्चय व्यवहार क्या है	१२७
१०	सम्यक्त्व चौथे से १४वे तक बतलाया है	१२८
११	सम्यग्दृष्टि का किसी समय अशुभभाव भी होता है	
	उस समय व्यवहार सम्यक्त्व का क्या हुआ ?	१२८
१२	सातवें गुणस्थान के बाद व्यवहारसम्यक्त्व क्यों नहीं होता ?	१२९
१३	अन्तरात्मा बहिरात्मा परमात्मा का स्वरूप	१२९
१४	४-५-६ गुणस्थानो मे निश्चय के साथ व्यवहार होता है	१३०
१५	शुद्धनय के जानने से ही सम्यक्त्व होता है	१३०
१६	सम्यग्दर्शन प्राप्ति के बिना व्यवहार होता ही नहीं	१३०

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रकरण पाँचवा	
१.	धर्म का मूल क्या है ?	१३२
२	मनाक (अल्प) चारित्र धर्म है ?	१३५
३	धर्म की व्याख्या क्या-क्या है ?	१३७
४.	चारित्र की व्याख्या क्या-क्या है ?	१३८
५	मोक्ष	१४०
६	पुण्य अर्थात् शुभभाव	१४२
७	सोह और अनुभव	१४५
८	आत्मा का अनुभव किस गुणस्थान में होता है ?	१४६
९.	शुद्ध आत्मा में ही प्रवृत्ति करना योग्य है	१४७
१०	राग के आलम्बन के बिना वीतराग का मार्ग है	१४८
११	आत्महित के लिए प्रयोजन भूत का क्या-क्या हैं	१४९
१२.	कभी सम्यग्दर्शनादि को वध का कारण और कभी शुभभावों को—मोक्ष का कारण ऐसा क्यों ?	१५०
१३	व्यवहार मोक्षमार्ग कैसे प्राप्त किया जावे ?	१५१
१४	निश्चय-व्यवहार का साध्य-साधकपना किस प्रकार है	१५१
१५	द्रव्यलिङ्गी को मोक्षमार्ग क्यों नहीं है ?	१५२
१६	द्रव्यलिङ्गी को निश्चय रत्नत्रय प्रकट क्यों नहीं होता ?	१५२
१७	व्यवहार-निश्चय का सार	१५३

प्रकरण छठा

निश्चय-व्यवहारन्यासावलम्बी का स्वरूप

निश्चय-व्यवहार को समझने की क्या आवश्यकता है	१५४
१ निश्चय व्यवहार का स्पष्टीकरण	१५६
स्थूल मिथ्यात्व, सूक्ष्म मिथ्यात्व क्या है ?	१५६
निश्चय व्यवहार का लक्षण क्या है ?	१५६

क्रम	विषय	पृष्ठ
	यथार्थ का नाम निश्चय, उपचार का नाम व्यवहार को किस-किस प्रकार जानना चाहिए	१५६
	उभयाभासी किसे कहते हैं	१५६
	निश्चयाभासी किसे कहते हैं	१५६
	व्यवहाराभासी किसे कहते हैं	१६१
२.	वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है निमित्ति व सहचारी इन दो का तात्पर्य क्या सम्यग्दर्शन दो प्रकार के हैं निश्चय-व्यवहार के विषय में चरणा योग क्या बताता है	१६४ से १६८ तक
३	शुद्धि प्रगट करने योग्य उपादेय, अशुद्धि अश हेय है १६८ से १७० चौथे-पाँचवें, छठे में हेय-उपादेयपना	
४	उभयभासी को खोटी मान्यता का स्पष्टीकरण १७० से १७६ शुद्धपने में कितने अर्थ हैं ।	
५	तीसरी भूल का स्पष्टीकरण १७६ से १८६ तक निश्चय का निश्चय-व्यवहार का व्यवहार श्रद्धान क्या है ? प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन नहीं है ।	
६	१३८ से १६२ तक के प्रश्नोत्तर याद करने योग्य १८६ से १९६ प० जी ने निश्चय-व्यवहार के लिये क्या बताया है ? दूसरे आचार्यों ने निश्चय-व्यवहार क्या बताया है ? कुन्द कुन्द ने निश्चय-व्यवहार में क्या बताया है	
७	सयोग रूप निश्चय-व्यवहार नौ बोलो १९६ से १९६ तक मनुष्य जीव पर निश्चय-व्यवहार क्या है	
८	सयोग रूप निश्चय-व्यवहार का विशेष स्पष्टीकरण १९६ से २०६	
९	कारण-कार्य का सात बोलो से २०६ से २१० तक	

क्रम	विषय	पृष्ठ
१०	भेद-अभेद का स्पष्टीकरण	२१० से २१२ तक
११	भेद-अभेद नौ बोलो द्वारा स्पष्टीकरण ज्ञान वाला जांव है—निश्चय-व्यवहार	२१२ से २१६ तक
१२	भेद-अभेद का विशेष स्पष्टीकरण	२१६ से २२२ तक
१३	निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्पष्टता चौथे-पांचवे-छठे में निमित्ति-नैमित्तिक निश्चय-व्यवहार के विषय में क्या बताया है	२२२ से २२६ तक
१४	निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग के नौ बोल	२३० से २३३ तक
१५	मुनिपने पर निश्चय-व्यवहार	२३२ से २३६ तक
१६	व्यवहारनय कार्यकारी कब ? उदासीनता का क्या अर्थ है	२३६ से २४६ तक
१७	मोक्षमार्ग पृष्ठ २५० से २५७ तक का विशेष २४६ से २६३ तक व्रत-शीलादि ससार का ही कारण है शुद्ध-अशुद्ध भावों में हेय उपादेयपना उभयाभासी का निश्चय रत्नत्रय क्या है उभयाभासी का व्यवहार रत्नत्रय क्या है शुभभावों के विषय में कलश १०० से ११२ तक अवश्य जानने योग्य क्या है	
१८	एकान्त व्यवहाराभासी के ११ प्रश्नोत्तर	२६३ से २६५ तक
१९	उभयाभासी की प्रवृत्ति का विशेषपना तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार क्या हैं पांच लब्धियाँ का प्रकरण सातवाँ क्षयोपशम लब्धि क्या है ? विशुद्ध लब्धि क्या है ? देशना लब्धि क्या है ?	२६५ से २८४ तक २८४ २८६ से २९४ तक

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रायोग्य लब्धि क्या है ?	
	कारण लब्धि किसको होती है ?	
	अध करण क्या है ?	
	अपूर्व करण क्या है ?	
	अनिवृत्ति करण क्या है ?	
	कार्तिकेय स्वामी ने ३२१ व ३२२ मे क्या बताया है ?	२६४
	सामान्य विशेष से क्या सिद्ध होता है—	२६५
	द्रव्यदृष्टि का अभ्यास कर्तव्य है—	२६६
	आस्रवतत्व	२६७ से ३०० तक
	वधतत्व	३०० से ३०३ तक
	सबरतत्व	३०३ से ३०६ तक
	निर्जरातत्व	३०६ से ३०९ तक
	मोक्ष तत्व	३१० से ३१३ तक
	लघु द्रव्य सग्रह	३१४ से ३१८ तक
	(नेमी चन्द्र आचार्य देव कृत)	

—०—

करते हैं तथा मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियों में घूमते हुए निगोद चले जाते हैं ।

प्रश्न ६—प्रथम किन-किन पांच बातों का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य का उसका पर्याय में ही होता है, दो द्रव्यों में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कभी भी नहीं होता है । (२) अज्ञानी का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध शुभाशुभ विकारी-भावों के साथ कहो तो कहो, परन्तु पर द्रव्यों के साथ तथा द्रव्यकर्मा के साथ तो व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नहीं है । (३) ज्ञानी का शुद्ध भावों के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है । (४) मैं आत्मा व्यापक और शुद्धभाव मेरा व्याप्य है । ऐसे विकल्पो में भी रहेगा तो धर्म की प्राप्ति नहीं होगी । (५) मैं अनादिअनन्त ज्ञायक एकरूप भगवान् हूँ और मेरी पर्याय में मूर्खता के कारण एक-एक समय का बहिरात्मपना चला आ रहा है ऐसा जाने-माने तो तुरन्त बहिरात्मपने का अभाव होकर अन्तरात्मा बन जाता है । इन पाँच बातों का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है ।

प्रश्न ७—आगम के प्रत्येक वाक्य का मर्म जानने के लिए क्या-क्या जानकर स्वाध्याय करें ?

उत्तर—चारों अनुयोगों के प्रत्येक वाक्य में (१) शब्दार्थ, (२) नयार्थ, (३) मतार्थ, (४) आगमार्थ और (५) भावार्थ निकालकर स्वाध्याय करने से जैनधर्म के रहस्य का मर्म बन जाता है ।

प्रश्न ८—शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—प्रकरण अनुसार वाक्य या शब्द का योग्य अर्थ समझना शब्दार्थ है ।

प्रश्न ९—नयार्थ क्या है ?

उत्तर—किस नयका वाक्य है ? उसमें भेद-निमित्तादि का उपचार बताने वाले व्यवहारनय का कथन है या वस्तुस्वरूप बतलाने वाले

निश्चयनय का कथन है—उसका निर्णय करके अर्थ करना वह नयार्थ है ।

प्रश्न १०—मतार्थ क्या है ?

उत्तर—वस्तुस्वरूप से विपरीत ऐसे किस मत का (सांख्य-बौद्धादिक) का खण्डन करता है । और स्याद्वाद मत का मण्डन करता है—इस प्रकार शास्त्र का कथन समझना वह मतार्थ है ।

प्रश्न ११—आगमार्थ क्या है ?

उत्तर—सिद्धान्त अनुसार जो अर्थ प्रसिद्ध हो तदनुसार अर्थ करना वह आगमार्थ है ।

प्रश्न १२—भावार्थ क्या है ?

उत्तर—शास्त्र कथन का तात्पर्य—सारांश, हेय उपादेयरूप प्रयोजन क्या है ? उसे जो बतलाये वह भावार्थ है । जैसे—निरजन ज्ञानमयी निज परमात्म द्रव्य ही उपादेय है, इसके सिवाय निमित्त अथवा किसी भी प्रकार का राग उपादेय नहीं है । यह कथन का भावार्थ है ।

प्रश्न १३—पदार्थों का स्वरूप सीदे-सादे शब्दों में क्या है, जिनके अद्वान-ज्ञान से सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाता है ?

उत्तर—“जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य हैं । प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं । प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में एक ही समय में एक पर्याय का व्यय, एक पर्याय का उत्पाद और गुण ध्रौव्य रहता है । ऐसा प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा ।” इसके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दुःख का अभाव जिनागम में बताया है ।

प्रश्न १४—किसके समागम में रहकर तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए और किसके समागम में रहकर तत्त्व का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—ज्ञानियो के समागम मे रहकर ही तत्त्व अभ्यास करना चाहिए और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास कभी भी नही करना चाहिए ।

प्रश्न १५—मोक्ष मार्ग प्रकाशक मे 'ज्ञानियो के समागम मे तत्त्व अभ्यास करना और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास नहीं करना' ऐसा कही लिखा है ?

उत्तर—प्रथम अध्याय पृष्ठ १७ मे लिखा है कि “विशेष गुणो के धारी वक्ता का सयोग मिले तो बहुत भला है ही और न मिले तो श्रद्धानादिक गुणो के धारी वक्ताओ के मुख से ही शास्त्र सुनना । इस प्रकार के गुणो के धारक मुनि अथवा श्रावक सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धति बुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषो के मुख से शास्त्र सुनना उचित नही है ।”

प्रश्न १६—पाहुड दोहा मे “किसका सहवास नहीं करना चाहिए” ऐसा कहा लिखा है ?

उत्तर—पाहुड दोहा बीस मे लिखा है कि “विष भला, विषधर सर्प भला, अग्नि या बनवास का सेवन भी भला, परन्तु जिनधर्म से विमुख ऐसे मिथ्यात्वियो का सहवास भला नही ।”

प्रश्न १७—अपना भला चाहने वाले को कौन-कौन सी सात बातो का निर्णय करना चाहिये ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है । (२) सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना किसी भी जीव को सच्चे व्रत, सामायिक प्रतिक्रमण, तप, प्रत्याख्यानानादि नही होते, क्योकि वह क्रिया प्रथम पाचवे गुणस्थान मे शुभभावरूप से होती है । (३) शुभभाव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो को होते हैं । किन्तु अज्ञानी उससे धर्म होगा, हित होगा ऐसा मानता है । ज्ञानी की दृष्टि मे हेय होने से वह उसमे कदापि हितरूप धर्म का होना नहीं मानता है । (४) ऐसा नहीं

समझना कि धर्मी को शुभभाव होता ही नहीं, किन्तु वह शुभभाव को धर्म अथवा उससे क्रमशः धर्म होगा—ऐसा नहीं मानता, क्योंकि अनन्त वीतराग देवो ने उसे बन्ध का कारण कहा है । (५) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता, उसे परिणमित नहीं कर सकता, प्रेरणा नहीं कर सकता, लाभ-हानि नहीं कर सकता; उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता, उसकी सहायता या उपकार नहीं कर सकता, उसे मार-जिला नहीं सकता, ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियो ने पुकार-पुकार कर कही है । (६) जिनमत में तो ऐसा परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व और फिर व्रतादि होते हैं । वह सम्यक्त्व स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है । इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि बनना चाहिए । (७) पहले गुणस्थान में जिज्ञासु जीवों को शास्त्राभ्यास, अध्ययन-मनन, ज्ञानी पुरुषों का धर्मोपदेश-श्रवण, निरन्तर उनका समागम, देवदर्शन, पूजा, भक्तिदान आदि शुभभाव होते हैं । किन्तु पहले गुणस्थान में सच्चे व्रत, तप आदि नहीं होते हैं ।

प्रश्न १८—उभयाभासी के दोनो नयों का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह क्या करे ? (दोनो नयों को किस प्रकार समझे ?)

उत्तर—निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्रश्न १९—व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—हां, दिया है । समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि “सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि में अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है । अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही

छुड़ाया है तो फिर सन्तपुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रकट किया है ।

प्रश्न २०—निश्चयनय को अंगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान् कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्षप्राप्त गाथा ३१ में क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़ता है वह योगी अपने आत्म-काय में जागता है तथा जो व्यवहार में जागता है वह अपने कार्य में सोता है । इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है । यही बात समाधितन्त्र गाथा ७८ में भगवान् पूज्यपाद आचार्य ने बताई है ।

प्रश्न २१—व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय (१) स्वद्रव्य, परद्रव्य को (२) तथा उनके भावों को (३) तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी में मिला कर निरूपण करता है । सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए और निश्चयनय उन्हीं का यथा-वत निरूपण करता है । तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता और ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है । इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिए ।

प्रश्न २२—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना । परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है । उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग में कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो सत्यार्थ ऐसे ही है—ऐसा जानना तथा कही

व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है। उसे “ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।

प्रश्न २३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि “ऐसे भी है और ऐसे भी है” इस प्रकार दोनों नयों का ग्रहण करना चाहिये; क्या उन महानुभावों का कहना गलत है ?

उत्तर—हां, बिल्कुल गलत है, क्योंकि उन्हें जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर “ऐसे भी है और ऐसे भी है” इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

प्रश्न २४—व्यवहारनय असत्यार्थ है। तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार में ससारी भाषा बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिये व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २५—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है। इसके पहले प्रकार को समझाइए ?

उत्तर—निश्चय से आत्मा पर द्रव्यों से भिन्न स्वभावों से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है। उसे जो नहीं पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यों की सापेक्षता द्वारा नर-नारक

पृथ्वीकायादिकरूप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नारको जीव है । इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहचान हुई । इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के संयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २६—प्रश्न २५ में व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ? सो समझाइए ।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा सो पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना । वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के संयोगरूप है । वहा निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है—उस ही को जीव मानना । जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथनमात्र ही है । परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादि वाला जीव) अंगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न २७—व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नहीं होता ? इस दूसरे प्रकार को समझाइये ।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है । उसे जो नहीं पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तो वे कुछ समझ नहीं पाये । तब उनको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये । तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है । इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई । इस प्रकार भेद बिना अभेद के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २८—प्रश्न २७ में व्यवहारनय से ज्ञान-दर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई । तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइये ।

उत्तर—अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हें भेद

रूप ही नहीं मान लेना क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं । निश्चय से आत्मा अभेद ही है । उस ही को जीववस्तु मानना । सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से द्रव्यगुण भिन्न-भिन्न नहीं है, ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न २६—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसके तीसरे प्रकार को समझाइये ।

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है । उसे जो नहीं पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे कुछ समझ नहीं पाये । तब उनको तत्त्व श्रद्धान ज्ञानपूर्वक, परद्रव्य के निमित्त मिलने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हें वीतरागभाव की पहचान हुई । इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न ३०—प्रश्न २६ में व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई । तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइए ।

उत्तर—परद्रव्य का निमित्त मिलने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा । सो इन्ही को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना, क्योंकि (१) परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे । परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नहीं है । (२) इसलिए आत्मा अपने जो रागादिक भाव हैं, उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है । (३) इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है । (४) वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तिकपना) है, इसलिए, व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है । परमार्थ से बाह्यक्रिया

सोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नहीं है, ऐसा जानना ।

प्रश्न ३१—जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है उसे जिनवाणी में किन-किन नामों से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय गाथा ६ में कहा है कि “तस्य देशना नास्ति” । (२) समयसार कलश ५५ में कहा है कि “अज्ञान-मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है” । (३) प्रवचनसार गाथा ५५ में कहा है कि “वह पद-पद पर धोखा खाता है” । (४) आत्मावलोकन में कहा है कि “यह उसका हरामजादीपना है” । इत्यादि सब शास्त्रों में मूर्ख आदि नामों से सम्बोधन कि

प्रश्न ३२—परमागम के अमूल्य ११ सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जो मोक्षार्थी को सदा स्मरण रखना चाहिए और वे जिनवाणी में कहाँ-कहाँ बतलाये हैं ?

उत्तर—(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता है । [समयसार गाथा ३] (२) प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमवद्ध ही होती है । [समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक] (३) उत्पाद, उत्पाद से है व्यय या ध्रुव से नहीं है । [प्रवचनसार गाथा १०१] (४) प्रत्येक पर्याय अपने जन्मक्षण में ही होती है । [प्रवचनसार गाथा १०२] (५) उत्पाद अपने षटकारक के परिणमन से ही होता है [पचास्तिकाय गाथा ६२] (६) पर्याय और ध्रुव के प्रदेश भिन्न-भिन्न है । समयसार गाथा १८१ से १८३ तक] (७) भाव शक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी पड़ती नहीं । [समयसार ३३वीं शक्ति] ८) निज भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है । [समयसार गाथा ११] (९) चारों अनुयोगों का तात्पर्य मात्र वीतरागता है । [पचास्तिकाय गाथा १७२] . (१०) स्वद्रव्य में भी द्रव्य गुण-पर्याय का भेद विचारना वह अन्यवशपणा है । [नियमसार

३४५] (११) ध्रुव का आलम्बन है वेदन नहीं है और पर्याय का वेदन है, परन्तु आलम्बन नहीं है ।

प्रश्न ३३—पर्याय का सच्चा कारण कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर—पर्याय का कारण उस समय पर्याय को योग्यता है । वास्तव में पर्याय की एक समय की सत्ता ही पर्याय का सच्चा कारण है । [अ] पर्याय का कारण पर तो हो ही नहीं सकता है, क्योंकि परका तो द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् हैं । [आ] पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य भी नहीं हो सकता है क्योंकि पर्याय एक समय की है यदि त्रिकाली कारण हो तो पर्याय भी त्रिकाल होनी चाहिए सो है नहीं । [इ] पर्याय का कारण अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय भी नहीं हो सकती है क्योंकि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । इसलिए यह सिद्ध होता है कि पर्याय का सच्चा कारण उस समय पर्याय की योग्यता ही है ।

प्रश्न ३४—मुझ निज आत्मा का स्वद्रव्य-परद्रव्य क्या-क्या है, जिसके जानने-मानने से चारो गतियों का अभाव हो जावे ?

उत्तर—(१) स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु. परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद कल्पना, (२) स्वक्षेत्र अर्थात् आधार मात्र वस्तु का प्रदेश, पर क्षेत्र अर्थात् प्रदेशो मे भेद पडना (३) स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था, परकाल अर्थात् एक समय की पर्याय, (४) स्वभाव अर्थात् वस्तु के मूल की सहज शक्ति, परभाव अर्थात् गुणभेद करना । [समयसार कलश २५२]

प्रश्न ३५—किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी बन सकता है और किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं बन सकता ?

उत्तर—देखो । तत्त्व विचार की महिमा । तत्त्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तत्पश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार न-

तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है ।
[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३६— जीव का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर— जीव का कर्तव्य तो तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है उसमें (दर्शनमोह के उपशम में) जीव का कर्तव्य कुछ नहीं है । [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४]

प्रश्न ३७— जिनधर्म की परिपाटी क्या है ?

उत्तर— जिनमत में तो ऐसी परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व होता है फिर व्रतादि होते हैं । सम्यक्त्व तो स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है । इसलिए प्रथम द्रव्य-गुण पर्याय का अभ्यास करके सम्यग्दृष्टि बनना प्रत्येक भव्य जीव का परम कर्तव्य है । [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६३]

प्रश्न ३८— किन-किन ग्रन्थों का अभ्यास करे तो एक भूतार्थ स्वभाव का आश्रय बन सके ?

उत्तर— मोक्षमार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भागों का सूक्ष्मरीति से अभ्यास करे तो भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेना बने ।

प्रश्न ३९— मोक्ष मार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला में क्या-क्या विषय बताया है ?

उत्तर— छह द्रव्य, सात तत्त्व, छह सामान्य गुण, चार अभाव, छह कारक, द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतन्त्रता, उपादान-उपादेय, निमित्त नैमित्तिक, योग्यता, निमित्त, समयसार सौवी गाथा के चार बोल, औपशमकार्दि पांच भाव, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप तथा प्रगट करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप तथा एक निज भूतार्थ के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है, आदि विषयों का सूक्ष्म

रीति से वर्णन किया है ताकि जीव निज स्वभाव का आश्रय लेकर मोक्ष का पथिक बने ।

प्रश्न ४०—क्या जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग आपने बनाये हैं ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग तो आहार-वर्णना का कार्य है । व्यवहारनय से निरूपण किया जाता है कि मैंने बनाये हैं । अरे भाई । चारो अनुयोगो के ग्रन्थो मे से परमागम का मूल निकालकर थोड़े मे संग्रह कर दिया है । ताकि पात्र भव्य जीव सुगमता से धर्म की प्राप्ति के योग्य हो सके । इन सात भागो का एक मात्र उद्देश्य मिथ्यात्वादि का अभाव करके सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमशः मोक्ष का पथिक बनना ही है ।

भवदीय

कैलाश चन्द्र जैन

बन्ध और मोक्ष के कारण

परद्रव्य का चिन्तन ही बन्ध का कारण है और केवल विशुद्ध स्वद्रव्य का चिन्तन ही मोक्ष का कारण है ।

[तत्त्वज्ञानतरंगिणी १५-१६]

सम्यग्दर्शी सर्वत्र सुखी

सम्यग्दर्शन सहित जीव का नरकवास भी श्रेष्ठ है, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित जीव का स्वर्ग में रहना भी शोभा नहीं देता; क्योंकि आत्मज्ञान बिना स्वर्ग में भी वह दुःखी है । जहाँ आत्मज्ञान है वहीं सच्चा सुख है ।

[सारसमुच्चय-३९]

जिनेन्द्र कथित विश्व व्यवस्था

“जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त,
धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और
काल लोक प्रमाण असंख्यात हैं ।
प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण
हैं । प्रत्येक गुण में एक ही समय
में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय
का व्यय और गुण ध्रौव्य रहता है ।
इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य के गुण में हो
चुका है, हो रहा है और होता
रहेगा ।”

[जैनदर्शन का सार]

स्व—(१) अमूर्तिक प्रदेशों का पुज (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों
का धारी (३) अनादिनिघन (४) वस्तु आप है ।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यों का पिण्ड (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि
गुणों से रहित (३) नवीन जिसका सयोग हुआ है (४)
ऐसे शरीरादि पुद्गल पर हैं । [मोक्षमार्गप्रकाशक]

सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का उपाय

अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं। कोई किसी के आधीन नहीं हैं। कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। पर को परिणमित कराने का भाव मिथ्यादर्शन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक]

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चित्तवं जीव तब, परतै ममत न थाय ॥

सत् द्रव्य लक्षणम् । उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ।
[मोक्षशास्त्र]

“Permanency with a Change”

[बदलने के साथ स्थायित्व]

**NO SUBSTANCE IS EVER DESTROYED
IT CHANGES ITS FORM ONLY**

[कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अपनी
अवस्था बदलती है।]

आचार्यकल्प पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी कृत

गोम्मटसार—पीठिका मुमुक्षुओं के अति आवश्यक होने से प्रश्नोत्तरों के रूप में

मैं मदबुद्धि (इस ग्रन्थका) अर्थ प्रकाशनेरूप इसकी टीका करने का विचार कर रहा हूँ ।

यह विचार तो ऐसा हुआ जैसे कोई अपने मुखसे जिनेन्द्रदेवका सर्वगुण वर्णन करना चाहे तो वह कैसे करे ?

प्रश्न १—नहीं बनता, तो उद्यम क्यों कर रहे हो ?

उत्तर—जैसे जिनेन्द्रदेव के सर्वगुण का वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है फिर भी भक्तपुरुष भक्ति के वश अपनी बुद्धि के अनुसार गुण-वर्णन करता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ के सम्पूर्ण अर्थ का प्रकाशन करने की सामर्थ्य न होने पर भी अनुराग के-वश मैं अपनी बुद्धि-अनुसार अर्थ का प्रकाशन करूँगा ।

प्रश्न २—यदि अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रन्थाभ्यास करो, किन्तु मदबुद्धि वालों को टीका करने का अधिकारी होना उचित नहीं है ?

उत्तर—जैसे किसी पाठशाला में बहुत बालक पढ़ते हैं उनमें कोई बालक विशेष ज्ञान रहित है फिर भी अन्य बालको से अधिक पढ़ा है तो वह अपने से अल्प पढ़ने वाले बालको को अपने समान ज्ञान होने के लिये कुछ लिख देने आदि के कार्य का अधिकारी होता है । उसी प्रकार मुझे विशेष ज्ञान नहीं है, फिर भी काल दोष से मुझसे भी मद-बुद्धि वाले हैं और होंगे ही । उन्हीं के लिये मुझ समान इस ग्रन्थ का ज्ञान होने के लिये टीका करने का अधिकारी हुआ हूँ ।

प्रश्न ३—यह कार्य करना है ऐसा तो आपने विचार किया । किन्तु छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करने का विचार करे तो वहाँ पर उस

कार्य में गलती होती ही है, और वहाँ वह हास्य का स्थान बन जाता है। उसी प्रकार आप भी मदबुद्धि वाले हैं अतः इस ग्रन्थ की टीका करने का विचार कर रहे हो तो गलती होगी ही और वहाँ पर हास्य का स्थान बन जाओगे।

उत्तर—यह बात तो सत्य है कि मैं मदबुद्धि होने पर भी ऐसे महान ग्रन्थ की टीका करने का विचार करता हूँ वहाँ भूल तो हो सकती है किन्तु सज्जन हास्य नहीं करेंगे। जैसे दूसरो से अधिक पढ़ा हुआ बालक कही भूल करे तब बड़े जन ऐसा विचार करते हैं कि 'बालक है भूल करे ही करे, किन्तु अन्य बालको से भला है, इस प्रकार विचार कर हास्य नहीं करेंगे, उसी प्रकार मैं यहाँ कही भूल जाऊँ वहाँ सज्जन पुरुष ऐसे विचार करेंगे कि वह मदबुद्धि था सो भूले ही भूले किन्तु कितने ही अतिमद बुद्धि वालो से तो भला है, ऐसे विचार कर हास्य नहीं करेंगे।

प्रश्न ४—सज्जन तो हास्य नहीं करेंगे, किन्तु दुर्जन तो करेंगे ही ?

उत्तर—दुष्ट तो ऐसे ही हैं जिनके हृदय में दूसरो के निर्दोष-भले गुण भी विपरीतरूप ही भासते हैं किन्तु उनके भय से, जिसमें अपना हित हो-ऐसे कार्य को कौन न करेगा ?

प्रश्न ५—पूर्व ग्रन्थ तो थे ही उन्हीं का अभ्यास करने-करवाने से ही हित होता है, मदबुद्धि ग्रन्थ की टीका करने की महत्ता क्यों प्रगट करते हो ?

उत्तर—ग्रन्थ का अभ्यास करने से-ग्रन्थ के टीका की रचना करने में उपयोग विशेष लग जाता है, अर्थ भी विशेष प्रतिभास में आता है अन्य जीवो को ग्रन्थाभ्यास कराने का सयोग होना दुर्लभ और सयोग होने पर भी किसी जीव को अभ्यास होता है। और ग्रन्थ की टीका बनने से तो परम्परागत अनेक जीवो को अर्थ का ज्ञान होगा। इसलिये स्व-पर अन्य जीवो का विशेष हित होने के लिये टीका करने में आती है, महत्ता का तो कुछ प्रयोजन ही नहीं है।

प्रश्न ६—यह सत्य है कि-इस कार्य में विशेष हित होता है, किन्तु बुद्धि की मंदता से कहीं भूल से अन्यथा अर्थ लिखा जाय तो वहाँ महापाप की उत्पत्ति होने से अहित भी होगा ?

उत्तर—यथार्थ सर्व पदार्थों के ज्ञाता तो केवली भगवान् हैं, दूसरों को ज्ञानावरण का क्षयोपशमके अनुसार ज्ञान है उसको कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभास में आ जाय किन्तु जिनदेवका ऐसा उपदेश है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रों के वचन की प्रतीति से वा हठ से, वा क्रोध-मान माया लोभ से वा, हास्य, भयादिकसे यदि अन्यथा श्रद्धा करे वा उपदेश दे तो-वह महापापी है और विशेषज्ञानवान गुरुके निमित्त विना वा अपने विशेष क्षयोपशम विना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासित हो और वह ऐसा जाने कि जिनदेवका उपदेश ऐसे ही है ऐसा जानकर कोई सूक्ष्म अर्थ की अन्यथा श्रद्धा करे वा उपदेश दे तो उसका महत् पाप नहीं होता, वही इस ग्रन्थ में भी आचार्य ने कहा है—

“सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठ पवयणं तु सद्दहदि

सद्दहदि असत्त्वावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥ जीवकांड ।

प्रश्न ७—आपने अपने विशेष ज्ञान से ग्रन्थ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करके टीका करने का प्रारम्भ क्यों न किया ?

उत्तर—कालदोष से केवली—श्रुत केवली का तो यहाँ अभाव ही हुआ, विशेष ज्ञानी भी विरल मिले। जो कोई है वह तो दूर क्षेत्र में है, उनका सयोग दुर्लभ है और आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि तुच्छ रह गये हैं। इसलिये जितना हो सका वह अर्थ का निर्णय किया, अवशेष जैसे है तैसे प्रमाण हैं।

प्रश्न ८—तुमने कहा वह सत्य है, किन्तु इस ग्रन्थ में जो भूल होंगे उनके शुद्ध होने का कुछ उपाय भी है ?

उत्तर—ज्ञानवान् पुरुषों का प्रत्यक्ष सयोग नहीं है इससे उनको परोक्ष ही ऐसी विनती करता हू कि—मैं मन्दबुद्धि हू, विशेष ज्ञान रहित हूँ, अविवेकी हूँ, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रन्थों का

विशेष अभ्यास मुझे नहीं है, इसलिये मैं शक्ति हीन हूँ, फिर भी धर्मानुराग के वश टीका करने का विचार किया है, उसमें जहाँ जहाँ भूल हो, अन्यथा अर्थ हो जाय वहाँ वहाँ मेरे ऊपर क्षमा करके उस अन्यथा अर्थ को दूर करके यथार्थ अर्थ लिखना, इस प्रकार विनति करके जो भूल होगी उसे शुद्ध होने का उपाय किया है ।

प्रश्न ६—आपने टीका करने का विचार किया वह तो अच्छा किया है किन्तु ऐसे महान् ग्रन्थ की टीका संस्कृत ही चाहिये, भाषा में तो उसकी गंभीरता भासित नहीं होगी ?

उत्तर—इस ग्रन्थ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नामक संस्कृत टीका तो पूर्व है ही । किन्तु वहाँ संस्कृत गणित आम्नाय आदि के ज्ञान रहित जो मन्दबुद्धि है उसका प्रवेश नहीं होता । यहाँ काल दोष से बुद्धि आदि के तुच्छ होने से संस्कृतादि के ज्ञान रहित ऐसे जीव बहुत हैं उन्हीं को इस ग्रन्थ के अर्थ का ज्ञान होने के लिये भाषा टीका करता हूँ । जो जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञानवान हैं वह मूल ग्रन्थ वा टीका से अर्थ धारण करे । जो जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञान रहित हैं वे इस भाषा टीका से अर्थ ग्रहण करे । और जो जीव संस्कृतादि ज्ञान सहित है परन्तु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव से मूल ग्रन्थ का वा संस्कृत टीका में प्रवेश नहीं पा सकते हैं वे इस भाषा टीका से अर्थ को धारण करके मूल ग्रन्थ वा संस्कृत टीका में प्रवेश करे । और जो भाषा टीका से मूल ग्रन्थ वा संस्कृत टीका में अधिक अर्थ हो सके उसको जानने का अन्य उपाय बने उसे करे ।

प्रश्न १०—संस्कृत ज्ञानवालो को भाषा अभ्यास में अधिकार नहीं है ?

उत्तर—संस्कृत ज्ञानवालो को भाषा बाचने से तो दोष आते नहीं हैं, अपना प्रयोजन जैसे सिद्ध हो वैसे ही करना । पूर्व में अर्द्धमागधी आदि भाषामय महाग्रन्थ थे जब बुद्धि की मन्दता जीवों के हुई तब संस्कृतादि भाषामय ग्रन्थ बने । अब विशेष बुद्धि की मदता जीवों को हुई उससे देशभाषामय ग्रन्थ करने का विचार हुआ । संस्कृतादि अर्थ

भी अब भाषा द्वारा जीवों को समझाते हैं। यहाँ भाषा द्वारा ही अर्थ लिखने में आया हो कुछ दोष नहीं है। इस प्रकार विचार कर श्रीमद् गोष्मटसार द्वितीय नाम पंच सग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नामक टीका के अनुहार 'सम्यग्ज्ञान चद्रिका' नामक यह देशभाषा-मयी टीका करने का निश्चय किया है। श्री अरहन्त देव वा जिन-वाणी वा निर्ग्रन्थ गुरुओं के प्रसाद से वा मूलग्रन्थकर्ता श्री नेमिचन्द्र आदि आचार्यों के प्रसाद से यह कार्य सिद्ध हो।

अब इस शास्त्र के अभ्यास से जीवों को सन्मुख किया जाता है। हे भव्य जीव, तुम अपने हित की वाँछा करते हो तो तुमको जिस-प्रकार हित बने वैसे ही इस शास्त्र का अभ्यास करना। कारण कि आत्मा का हित मोक्ष है, मोक्ष के बिना अन्य जो है वह पर सयोग जनित है, विनाशीक है, दुःखमय है, और मोक्ष है वही निज स्वभाव है अविनाशी है, अनन्त सुखमय है। इसलिये मोक्षपद की प्राप्ति का उपाय तुमको करना चाहिये। मोक्ष का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य है। इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने से ही होती है। उसे कहता हूँ।

जीवादि तत्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है उसे बिना जाने श्रद्धान का होना आकाश के फूल समान है। प्रथम जाने तब फिर वैसे ही प्रतीति करने से श्रद्धान को प्राप्त होता है। इसलिये जीवादिक का जानना, श्रद्धान होने से पूर्व ही होता है, वही उनके-श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन का कारणरूप जानना। श्रद्धान होने पर जो जीवादिक का जानना होता है उसी का नाम सम्यग्ज्ञान है। तथा श्रद्धानपूर्वक जीवादि को जानते ही स्वयमेव उदासीन होकर हेयका त्याग, उपादेय का ग्रहण करता है तब सम्यक्चारित्र्य होता है। अज्ञानपूर्वक क्रियाकांड से सम्यक्चारित्र्य नहीं होता। इस प्रकार जीवादिक को जानने से ही सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायों की प्राप्ति निश्चय करनी ही चाहिये। इस शास्त्र के अभ्यास से जीविकादि का जानना यथार्थ होता है। जो ससार है वही जीव और कर्म का सम्बन्ध रूप है। तथा

विशेष जानने से इनके सम्बन्ध का अभाव होता है वही मोक्ष है । इस-
लिये इस शास्त्र में जीव और कर्म का ही विशेष निरूपण है । अथवा
जीविकादिक का, षट्द्रव्य, सात तत्त्वादिक का भी उसमें यथार्थ निरू-
पण है अतः इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना ।

प्रश्न ११—अब यहाँ अनेक जीव इस शास्त्र के अभ्यास में अरुचि
होने का कारण विपरीत विचार प्रगट करते हैं । अनेक जीव प्रथमा-
नुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग केवल पक्ष करके इस करणा-
नुयोगरूप शास्त्र में अभ्यास का निषेध करते हैं । उनमें से प्रथमानुयोग
का पक्षपाती कहता है कि—वर्तमान में जीवों की बुद्धि मंद बहुत है
उन्हीं को ऐसे सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र में कुछ भी समझ होती
नहीं । इससे तीर्थकरादिक की कथा का उपदेश दिया जाय तो ठीक
समझ लेगा और समझकर पाप से डरे, धर्मानुरागरूप होगा इसलिये
प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है—उन्हे उत्तर दिया जाता है—

उत्तर—अब भी सब जीव तो एक से नहीं हुए हैं' हीनाधिक
बुद्धि दिख रही है अतः जैसे जीव हो वैसे उपदेश देना । अथवा मंद-
बुद्धि जीव भी सिखाने से अभ्यास में बुद्धिमान होता दिख रहा है ।
इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हीं को तो वह ग्रन्थ कार्यकारी ही है, और
जो मन्दबुद्धि हैं वे विशेष बुद्धि द्वारा सामान्य विशेषरूप गुणस्थाना-
दिक का स्वरूप सीखकर इस शास्त्र के अभ्यास में प्रवृत्ति करें ।

प्रश्न १२—यहाँ मन्दबुद्धि कहता है कि इस गोम्मटसार शास्त्र
में तो गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन से बहुत कठिनता है, ऐसा
सुनते आये हैं । हम उसमें किस प्रकार प्रवेश कर सकते हैं ?

उत्तर—समाधान—भय न करो । इस भाषा टीका में गणित
आदि का अर्थ सुगमरूप बनाकर कहा है, अतः प्रवेश पाना कठिन नहीं
रहा है । इस शास्त्र में कहीं तो सामान्य कथन है कहीं विशेष है; कहीं
सुगम है, कहीं कठिन है वहाँ जो सर्व अभ्यास बन सके तो अच्छा ही
है और यदि न हो सके तो अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा हो सके वैसा

ही अभ्यास करो, अपने उपाय में आलस करना नहीं। तूने कहा जो प्रथमानुयोग सम्बन्धी वृथादिक सुनने में पाप से डर कर धर्मानुरागरूप होता है वह तो वहाँ दोनों कार्य शिथिलता लिये होते हैं। यहाँ पुण्य-पाप के कारण कार्यादिक विशेष जानने से वे दोनों कार्य दृढता लिये होते हैं। अतः उनका अभ्यास करना। इस प्रकार प्रथमानुयोग के पक्षपाती का इस शास्त्र के अभ्यास में सम्मुख किया।

प्रश्न १३—अथ चरणानुयोग का पक्षपाती कहता है कि—इस शास्त्र में कथित जीव-कर्म का स्वरूप है वह जैसे है वैसे ही है उनको जानने से क्या सिद्धि होती है? यदि हिंसादिक का त्याग करके उपवासादि तप किया जाय वा व्रत का पालन किया जाय वा ग्रहहन्तादिक की पूजा, नाम, स्मरण आदि भक्ति की जाय वा दान दीजिये वा विषय-कषायादिक से उदासीन बने इत्यादिक जो शुभ कार्य किया जाय तो आत्महित हो, इसलिये इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

उत्तर—उसको कहते हैं कि हे स्थूल बुद्धि! तूने व्रतादिक शुभ कार्य कहे वह करने योग्य ही हैं किन्तु वे सर्व सम्यक्त्व विना ऐसे हैं जैसे अक विना विदी। और जीवादिक का स्वरूप जाने विना सम्यक्त्व का होना ऐसा, जैसे दाशा का पुत्र, अतः जीवादिक जानने के अर्थ इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना।

तूने जिस प्रकार व्रतादिक शुभकार्य कहा, और उससे पुण्य बन्ध होता है। उसी प्रकार जीवादिक जानने रूप ज्ञानाभ्यास है वह प्रधान शुभ कार्य है। इससे अतिशय पुण्य का बन्ध होता है और उन व्रतादिक में भी ज्ञानाभ्यास की ही मुख्यता है उसे ही कहते हैं। जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवों के विशेष जानकर पश्चात् ज्ञान से हिंसादिक का त्यागी बनकर व्रत को धारण करे वही व्रती है। जीवादिकके विशेष को जाने विना कथञ्चित् हिंसादिक के त्याग से आपको व्रती माने तो वह व्रती नहीं है। इसलिये व्रत पालन में भी ज्ञानाभ्यास ही

प्रधान है। तप के दो प्रकार हैं—(१) बहिरग, (२) अन्तरग। जिसके द्वारा शरीर का दमन हो वह बहिरग तप है। और जिससे मन का दमन होवे, वह अन्तरग तप है। इनमें बहिरग तप से अन्तरग तप उत्कृष्ट है। उपवासादिक बहिरग तप है, ज्ञानाभ्यास अन्तरग तप है। सिद्धान्त में भी ६ प्रकार के अन्तरग तपो में चौथा स्वाध्याय नाम का तप कहा है, उससे उत्कृष्ट व्युत्सर्ग और ध्यान ही हैं, इसलिये तप करने में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिक का स्वरूप जानने से ही अरिहत आदि का स्वरूप भले प्रकार पहिचाने जाते हैं। अपनी अवस्था पहचानी जाती है, ऐसी पहचान होने पर जो अन्तरग में तीव्र भक्ति प्रकट होती है वही बहुत कार्यकारी है। जो कुलक्रमादिक से भक्ति होती है वह किञ्चित्मात्र ही फल देती है इसलिये भक्ति में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

दान चार प्रकार का होता है, उनमें आहारदान, औषधदान अभयदान तो तत्काल क्षुधा के दुःख को या रोगके या मरणादिक दुःख को दूर करते हैं। और ज्ञानदान वह अनन्तभवसन्तान से चले आ रहे दुःख को दूर करने में कारण है। तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिक के भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है। इससे ज्ञानदान उत्कृष्ट है, इसलिये अपने ज्ञानाभ्यास हो तो अपना भला कर लेता है और अन्य जीवों को भी ज्ञानदान देता है।

ज्ञानाभ्यास के बिना ज्ञानदान कैसे हो सकता है ? इसलिये दोनों में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। जैसे जन्म से ही कोई पुरुष ठगों के घर जाय वहा वह ठगों को अपना मानता है, कदाचित् कोई पुरुष किसी निमित्त से अपने कुल का और ठगों का यथार्थ ज्ञान करने से ठगों से अन्तरग में उदासीन हो जाता है। उनको पर जानकर सम्बन्ध छुड़ाना चाहता है। बाहर में जैसा निमित्त है वैसी प्रवृत्ति करता है। और कोई पुरुष उन ठगों को अपना ही जानता है, किसी कारण से कोई ठगों से अनुराग करता है और कोई ठगों से लड़कर उदासीन

होता है, आहारादिक का त्याग कर देता है। वैसे अनादि से सब जीव ससार में हैं, वह कर्मों को अपना मानता है। उनमें कोई जीव किसी निमित्त से जीव और कर्म का यथार्थ ज्ञान करके कर्मों से उदासीन होकर उनको पर जानता है, उनसे सम्बन्ध छुड़ाना चाहता है। बाहर में जैसा निमित्त है वैसी प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार ज्ञानाभ्यास के द्वारा उदासीन होता है वही कार्यकारी है। कोई जीव उन कर्मों को अपना जानता है और किसी कारण से कोई कर्मों से अनुरागरूप प्रवृत्ति करता है, कोई अशुभ कर्म को दुःख का कारण जानकर उदासीन होकर विषयादिक का त्यागी होता है, इस प्रकार ज्ञान के बिना जो उदासीनता होती है वह पुण्यफल की दाता है, मोक्षकार्य का साधन नहीं है। अतः उदासीनता में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। उसी प्रकार अन्य भी शुभ कार्यों में ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना। देखो, महामुनि के भी ध्यान अध्ययन दो ही कार्य मुख्य हैं। इसलिये शास्त्र अध्ययन द्वारा जीव-कर्म का स्वरूप जानकर स्वरूप ध्यान करना।

प्रश्न १४—यहाँ कोई तर्क करे कि—कोई जीव शास्त्र अध्ययन तो बहुत करता है और विषयादिक का त्यागी नहीं होता तो उसको शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है या नहीं? यदि है! तो महन्त पुरुष क्यों विषयादिक तर्जें? और नहीं तर्जें! तो ज्ञानाभ्यास की महिमा कहाँ रही?

उत्तर—उसका समाधान—शास्त्राभ्यास को दो प्रकार हैं। (१) लोभार्थी (२) आत्मार्थी १—वहाँ अन्तरंग अनुराग के बिना ख्याति लाभ पूजादिक के प्रयोजन से शास्त्राभ्यास करे वह लोभार्थी है; वह विषयादिक का त्याग नहीं करता। अथवा ख्याति पूजा लाभादिक के अर्थ विषयादिक का त्याग भी करे फिर भी उसका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नहीं है।

२—जो जीव अन्तरंग अनुराग से आत्महित के अर्थ शास्त्राभ्यास करता है वह धर्मार्थी है। प्रथम तो जैनशास्त्र ही ऐसे हैं कि जो

उनका धर्मार्थी होकर अभ्यास करता है वह विषयादिक का त्याग करता ही है । उसका तो ज्ञानाभ्यास कार्यकारी ही है ।

२ जो जीव अन्तरंग अनुराग से आत्महित के अर्थ शास्त्राभ्यास करता है वह धर्मार्थी है । प्रथम तो जैनशास्त्र ही ऐसे हैं कि जो उनका धर्मार्थी होकर अभ्यास करता है वह विषयादिक का त्याग करता ही है । उसका तो ज्ञानाभ्यास कार्यकारी ही है ।

कदाचित् पूर्व कर्मोदय की प्रबलता से (अर्थात् कपाय शक्ति की प्रबलता होने से) न्याय रूप विषयादिक का त्याग न हो तो भी उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने से ज्ञानाभ्यास कार्यकारी होता है । जिस प्रकार असयत गुण स्थान में विषयादिक के त्याग बिना भी मोक्ष-मार्गपना संभव है ।

प्रश्न १५—जो धर्मार्थी हुआ है, जैन शास्त्र का अभ्यास करता है, उसके विषयादिक का त्याग न हो सके ऐसा तो नहीं बनता । विषयादिक का सेवन परिणामो से होता है, परिणाम स्वाधीन है ।

उत्तर—समाधान :—परिणाम ही दो प्रकार है (१) बुद्धिपूर्वक (२) अबुद्धिपूर्वक । अपने अभिप्राय के अनुसार ही वह बुद्धिपूर्वक और दैव (कर्म) निमित्त से अपने अभिप्राय से अन्यथा (विच्छेद) हो वह अबुद्धिपूर्वक । जैसे सामायिक करने में धर्मात्मा का अभिप्राय तो ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभ रूप रखूँ, वहाँ जो शुभ परिणाम ही हो वह तो बुद्धिपूर्वक, और कर्मोदय से (कर्मों के उदय में युक्त होने से) स्वयमेव अशुभ परिणाम होता है वह अबुद्धिपूर्वक जानना । (यह दृष्टान्त है) उसी प्रकार धर्मार्थी होकर जो जैन शास्त्र का अभ्यास करता है उसका अभिप्राय तो विषयादिक के त्याग रूप वीतराग भाव की प्राप्ति का ही होता है, वहाँ पर वीतराग भाव हुआ वह बुद्धिपूर्वक है और चारित्र्य मोह के उदय से (उदय के वश होने पर) सरागभाव (आश्रित्य च्युति, पराश्रय रूप परिणाम) होता है वह अबुद्धिपूर्वक है अतः स्ववश बिना (परवश) जो सरागभाव होता है उसके द्वारा उसको विषयादिक की प्रवृत्ति दिख रही है

इसलिए बाह्य प्रवृत्ति का कारण परिणाम है ।

प्रश्न १६—यदि इस प्रकार है तो हम भी विषयादिक का सेवन करेंगे और कहेंगे - हमारे उदयाधीन कार्य होते हैं ।

उत्तर—रे मूर्ख ! कुछ कहने से होता नहीं । सिद्धि तो अभिप्राय के अनुसार है इसलिए जैन शास्त्र के अभ्यास द्वारा अपने अभिप्राय को सम्यक् रूप करना । और अन्तरंग में विषयादिक सेवन का अभिप्राय हो तो धर्मार्थी नाम कैसे प्राप्त होगा ? अतः धर्मार्थीपन वनता ही नहीं । इस प्रकार चरणानुयोग के पक्षपाती को इस शास्त्र के अभ्यास में सन्मुख किया ।

प्रश्न १७—अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है कि इस शास्त्र में जीव के गुणस्थानादि रूप विशेष और कर्म के विशेष (भेद) का वर्णन किया है, किन्तु उनको जानने से तो अनेक विकल्प-तरंग उत्पन्न होते हैं और कुछ सिद्धि नहीं है । इसलिये अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना वा स्व-परका भेदविज्ञान करना, इतना ही कार्यकारी है, अथवा इनके उपदेशक जो अध्यात्मशास्त्र उन्हीं का अभ्यास करना योग्य है ।

उत्तर—अब उसी को कहते हैं—

हे सूक्ष्माभास ! तूने कहा वह सत्य है, किन्तु अपनी अवस्था देखना । जो स्वरूपानुभव में वा भेदविज्ञान में उपयोग निरन्तर रहता है तो अन्य विकल्प क्यों करने ? वहाँ ही स्वरूपानन्द सुधारस का स्वादी होकर सतुष्ट होना । किन्तु निचली अवस्था में वहाँ निरन्तर उपयोग रहता ही नहीं, उपयोग अनेक अवलम्बों को चाहता है । अतः जिस काल वहाँ उपयोग न लगे तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना । तूने कहा जो अध्यात्मशास्त्र का ही अभ्यास करना युक्त है, किन्तु वहाँ भेदविज्ञान करने के लिये स्व-पर का सामान्यपने स्वरूपनिरूपण है, और विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट नहीं होता । इसलिए जीव और कर्म का विशेष अच्छी तरह जानने से ही स्व-पर का जानना स्पष्ट होता है । उस विशेष जानने के लिये

इस शास्त्र का अभ्यास करना । कारण-सामान्यशास्त्र से विशेषशास्त्र बलवान है । वही कहा है—“सामान्य शास्त्र तो नून विशेषो बलवान भवेत् ।”

प्रश्न १८—यहाँ कहते हैं कि अध्यात्मशास्त्रों में तो गुणस्थानादि विशेषों (-भेदों) से रहित शुद्धस्वरूप का अनुभव करना उपादेय कहा है और यह गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है । इसलिये अध्यात्मशास्त्र और इस शास्त्र में तो विरुद्धता भासित होती है वह कैसे है ?

उत्तर—उसे कहते हैं .—

नय दो प्रकार के हैं —१ निश्चय, २ व्यवहार ।

निश्चय नय से जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद-वस्तु मात्र ही है । और व्यवहारनय से गुणस्थानादि विशेष सहित अनेक प्रकार है । वहाँ जो जीव सर्वोत्कृष्ट अभेद एक स्वभाव का अनुभव करता है उसको तो वहाँ शुद्धउपदेशरूप जो शुद्धनिश्चय वही कार्यकारी है । और जो स्वानुभावदशा को प्राप्त नहीं हुआ है वा स्वानुभवदशा से छूटकर सविकल्पदशा को प्राप्त है ऐसा अनुत्कृष्ट जो अशुद्धस्वभाव, उसमें स्थित जीवको व्यवहारनय (उसकाल में जाना हुआ-जानने के अर्थ में) प्रयोजनवान है । वही आत्मख्याति अध्यात्म-शास्त्र में गाथा १२ में कहा है—

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरसीहि ।

ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे दिठ्ठा भावे ॥

इस सूत्र के व्याख्यान के अर्थ को विचारकर देखना । सुनो ! तुम्हारे परिणाम स्वरूपानुभव दशा में तो वर्तते नहीं । और विकल्प जानकर गुणस्थानादि भेदों का विचार नहीं करोगे तो तुम इतने भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होकर अशुभप्रयोग में ही प्रवर्तन करोगे वहाँ तेरा बुरा होगा । सुन ! सामान्यपक्ष से तो वेदान्त आदि शास्त्राभासों में भी जीवका स्वरूप शुद्ध कहते हैं वहाँ विशेष को जाने बिना यथार्थ-अय-थार्थ का निश्चय कैसे हो ?

इसलिये गुणस्थानादि विशेष जानने से शुद्ध-अशुद्ध मिश्र अवस्था-का ज्ञान होता है, तब निर्णय करके यथार्थ को अगीकार करो, सुन ! जीवका गुण ज्ञान है सो विशेष जानने से आत्मगुण प्रगट होता है, अपना श्रद्धान भी दृढ होता है, जैसे सम्यक्त्व है वह केवलज्ञान प्राप्त होते परमावगाढ नाम को प्राप्त होता है इसलिये विशेष जाना ।

प्रश्न १६—आपने कहा वह सत्य, किन्तु कारणानुयोग द्वारा विशेष जानने से भी द्रव्यलिगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान बिना संसारी ही रहते हैं, और अध्यात्म का अनुसरण करने वाले तिर्यचादिक को अल्प श्रद्धान से भी सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, बा 'तुषभाष भिन्न' इतना ही श्रद्धान करने से शिवभूति नामक मुनि मुक्त हुए । अतः हमारी बुद्धि से तो विशेष विकल्पो का साधन नहीं होता । प्रयोजनमात्र अध्यात्मका करेंगे । अब उसको कहते है—

उत्तर—जो द्रव्यलिगी जिस प्रकार कारणानुयोग द्वारा विशेष को जानता है उसी प्रकार अध्यात्मशास्त्रो का ज्ञान भी उसको होता है, किन्तु मिथ्यात्व के उदय से (मिथ्यात्व वश) अयथाय साधन करता है तो शास्त्र क्या करे ? जैन शास्त्रो मे तो परस्पर विरोध है नही, कैसे ? वह कहते है—करणानुयोग के शास्त्र मे भी तथा अध्यात्म-शास्त्रो मे भी रागादिक भाव आत्म, के कर्म-निमित्त से उत्पन्न कहे हैं, द्रव्यलिगी उनका स्वय कर्ता होकर प्रवर्तता है, और शरीर आश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कही है, किन्तु द्रव्यलिगी उसे अपनी जानकर उसमे ग्रहण-त्याग की बुद्धि करता है । 'सर्व ही शुभाशुभ भाव आस्रव-बध के कारण' कहे है, किन्तु 'द्रव्यलिगी शुभक्रिया को सवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण मानता है । शुद्धभाव को सवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण कहा है, किन्तु द्रव्यलिगी उसको पहचानते ही नहीं । और शुद्धात्म स्वरूप को मोक्ष कहा है, उसका द्रव्य-लिगी को यथार्थ ज्ञान ही नहीं है, इस प्रकार अन्यथा साधन करे तो उसमे शास्त्रो का क्या दोष है ? तूने कहा कि तिर्यचादिकको सामान्य श्रद्धान से कार्यसिद्धि कही, तो उनके भी अपने क्षयोपशम के अनुसार

विशेष का जानना होता ही है। अथवा पूर्व पर्यायों में (पूर्वभवं में) विशेष का अभ्यास किया था उसी सस्कार के बल से (विशेष का जानना) होता है। जिस प्रकार किसी ने कही पर गड़ा हुआ धन पाया, तो 'हम भी उसी प्रकार पावेंगे' ऐसा मानकर सभी को व्यापारादिक का त्याग न करना। उसी प्रकार किसी को अल्प श्रद्धान द्वारा ही कार्यसिद्धि हुई है तो 'हम भी इस प्रकार ही कार्य की सिद्धि करेंगे' ऐसा मानकर सबही को विशेष अभ्यास का त्याग करना उचित नहीं, इसलिये यह राजमार्ग नहीं है। राजमार्ग तो यही है जिससे नाना प्रकार के विशेष (भेद) जानकर तत्त्वों का निर्णय होते ही कार्यसिद्धि होती है। तूने जा कहा कि मेरी बुद्धि से विकल्प साधन नहीं होता, अतः जितना हो सके उतना अभ्यास कर, और तू पाप कार्य में तो प्रवीण और इस अभ्यास में कहता है 'मेरी बुद्धि नहीं है,' यह तो पापी का लक्षण है। इस प्रकार द्रव्यानुयोग के पक्षपाती को इस शास्त्र के अभ्यास में सन्मुख किया। अब अन्य विपरीत विचारवालों को समझाते हैं।

प्रश्न २०—शब्द शास्त्रादि का पक्षपाती कहता है कि-व्याकरण, न्याय, कोश, छंद अलंकार, काव्यादिक ग्रन्थों का अभ्यास किया जाय तो अनेक ग्रन्थों का स्वयमेव ज्ञान होता है व पंडितपना प्रगट होता है। और इस शास्त्र के अभ्यास से तो एक इसी का ज्ञान हो व पंडितपना विशेष प्रगट नहीं होगा अतः शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

उत्तर—अब उसको कहते हैं—

यदि तुम लोक में ही पंडित कहलाना चाहते हो तो तुम उसी का अभ्यास किया करो। और यदि अपना (हितरूप) कार्य करने की चाह है तो ऐसे जैन ग्रन्थों का ही अभ्यास करने योग्य है। तथा जैनी तो जीवादिक तत्त्वों के निरूपण करने वाले जो जैन ग्रन्थ हैं उन्हीं का अभ्यास होने पर पंडित मानेंगे। वह कहता है कि—मैं जैन ग्रन्थों के विशेष ज्ञान होने के लिये ही व्याकरणादि का अभ्यास करता हूँ।

उसको कहते हैं—ऐसे है तो भला ही है । किन्तु इतना है—जिस प्रकार चतुर किसान अपनी शक्ति अनुसार हलादिक द्वारा अल्प-बहुत खेत को सम्हालकर समयसर बीज बोवे तो उस फल की प्राप्ति होती है । उसी प्रकार तुम भी यदि अपनी शक्ति अनुसार व्याकरणादि के अभ्यास से अल्प और अधिक बुद्धि को सम्हालकर जितने काल मनुष्य-पर्याय वा इन्द्रियो की प्रबलता इत्यादिक प्रवर्तते हैं उतने समय में तत्त्वज्ञान के कारण जो शास्त्र, उनका अभ्यास करोगे तो तुम्हें सम्यक्त्वआदि की प्राप्ति होगी ।

जैसे अज्ञान किसान हलादिक से खेत को सवारता-सवारता ही समय की बितावेगा तो उसको फल-प्राप्ति होने वाली नहीं, वृथा ही खेदखिन्न हुआ । उसी प्रकार तू भी यदि व्याकरणादिक द्वारा बुद्धि को सवारता-सवारता ही समय बितावेगा तो सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने वाली नहीं, वृथा ही खेदखिन्न होगा । इस काल में आयु बुद्धि आदि अल्प हैं, इसलिये प्रयोजन मात्र अभ्यास करना, शास्त्रों का तो पार है नहीं । सुन ! कुछ जीव व्याकरणादिक के बिना भी तत्त्वोपदेश रूप भाषा शास्त्रों के द्वारा व उपदेश सुनकर तथा सीखने से भी तत्त्वज्ञानी होते देखे जाते हैं और कई जीव केवल व्याकरणादिक के ही अभ्यास में जन्म गवाते हैं और तत्त्वज्ञानी नहीं होते हैं ऐसा भी देखा जाता है । सुन ! व्याकरणादिक का अभ्यास करने से पुण्य नहीं होता, किन्तु धर्मार्थी होकर उनका अभ्यास करे तो किञ्चित् पुण्य होता है । तथा तत्त्वोपदेशक शास्त्रों के अभ्यास से सातिशय महत् पुण्य उत्पन्न होता है इसलिए भला तो यह है कि ऐसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रों का अभ्यास करना । इस प्रकार शब्दशास्त्रादिक के पक्षपाती को सन्मुख किया ।

प्रश्न २१—अब अर्थ का पक्षपाती कहता है कि—इस शास्त्र का अभ्यास करने से क्या है । सर्वकार्य धन से बनते हैं । धन से ही प्रभावना आदि धर्म होता है, धनवान के निकट अनेक पंडित आकर रहते हैं अन्य भी सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, अतः धन

पैदा करने का उद्यम करना । उसको कहते हैं—

उत्तर—रे पापी ! धन कुछ अपना उत्पन्न किया तो नहीं होता भाग्य से होता है । श्रद्धाभ्यास आदि धर्म साधन से पुण्य की उत्पत्ति होती है उसी का नाम भाग्य है । यदि धन होना है तो शास्त्राभ्यास करने से कैसे नहीं होगा ? अगर नहीं होना है तो शास्त्राभ्यास नहीं करने से कैसे होगा ? इसलिये धन का होना, न होना तो उदयाधीन है, शास्त्राभ्यास में क्यों शिथिल होता है ? सुन-धन है वह तो विनाशीक है भय सयुक्त है पाप से उत्पन्न होता है, नरकादिक का कारण है । और जो यह शास्त्राभ्यास रूप ज्ञानधन है वह अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, अतः महत् पुरुष तो धनादिक-को छोड़कर शास्त्राभ्यास में ही लगते हैं और तू पापी शास्त्राभ्यास को छोड़ाकर धन पैदा करने की बड़ाई करता है तो तू अनन्तससारी है । तूने कहा कि प्रभावनादि धर्म की धन से ही होता है । किन्तु वह प्रभावनादि धर्म तो किञ्चित् सावद्यक्रिया सयुक्त है; इसलिये समस्त सावद्यरहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है वह प्रधान है, यदि ऐसा न हो तो गृहस्थ अवस्था में प्रभावनादि धर्म साधन थे, उनको छोड़कर सयमी होकर शास्त्राभ्यास में किसलिये लगते हैं ?

शास्त्राभ्यास करने से प्रभावनादिक भी विशेष होती है । तूने कहा कि—धनवान के निकट पडित भी आकर के रहते हैं । सो लोभी पडित हो और अविवेकी धनवान हो वहाँ ऐसा होता है । और शास्त्राभ्यासवालों की तो इन्द्रादिक भी सेवा करते हैं, यहाँ भी बड़े-बड़े महत् पुरुष दास होते देखे जाते हैं, इसलिये शास्त्राभ्यास वालों से धनवानों को महत् न जान । तूने कहा कि धन से सर्व कार्यसिद्धि होती है, (किन्तु ऐसा नहीं है) उस धन से तो इस लोक सबधी कुछ विषयादिक कार्य इस प्रकार के सिद्ध होते हैं जिससे बहुत काल तक नरकादिक दुःख सहन करने पड़ते हैं । और शास्त्राभ्यास से ऐसे कार्य सिद्ध होते हैं कि जिससे इस लोक परलोक में अनेक सुखों की परंपरा प्राप्त होती है इसलिये धन पैदा करने के विकल्प को छोड़कर शास्त्राभ्यास

करना । और जो ऐसा सर्वथा न बने तो सतोष पूर्वक घन पैदा करने के पक्षपाती को सम्मुख किया ।

प्रश्न २२—अब काम भोगादिक का पक्षपाती कहता है कि शास्त्राभ्यास करने में सुख नहीं है, बड़प्पन नहीं है, इसलिये जिनके द्वारा यहाँ ही सुख हो ऐसे जो स्त्री-सेवन, खाना-पहिरना इत्यादिक विषय-सुख उनका सेवन किया जाय अथवा जिसके द्वारा यहाँ ही बड़प्पन हो ऐसे विवाहादिक कार्य किये जाय ।

उत्तर—अब उसको कहते हैं—विषयजनित जो सुख है वह दुःख ही है क्योंकि विषय—सुख पर-निमित्त से होता है, पूर्व और पश्चात् पुरन्त ही आकुलता सहित है और जिसके नाश होने के अनेक कारण मिलते ही हैं; आगामी नस्कादि दुर्गति को प्राप्त कराने वाला है . ऐसा होने पर भी वह तेरी चाह अनुसार मिलता ही नहीं, पूर्व पुण्य से होता है, इसलिये विषम है । जैसे खाज से पीड़ित पुरुष अपने अंग को कठोर वस्तु से खुजाते हैं वैसे ही इन्द्रियो से पीड़ित जीव उनको पीड़ा सही न जाय तब किञ्चित्तमात्र जिनमें पीड़ा का प्रतिकार सा भासे ऐसे जो विषय सुख उनमें झपापात करते हैं, वह परमार्थरूप सुख है नहीं; और शास्त्राभ्यास करने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ उससे उत्पन्न आनन्द-वह सच्चा सुख है । जिससे वह सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, किसी के द्वारा नष्ट नहीं होता, मोक्ष का कारण है, विषम नहीं है । जिस प्रकार खाज की पीड़ा नहीं होती तो सहज ही सुखी होता, उसी प्रकार वहाँ इन्द्रिय पीड़ने के लिये समर्थ नहीं होती तब सहज ही सुख को प्राप्त होता है । इसलिये विषय सुख को छोड़कर शास्त्राभ्यास करना, यदि सर्वथा न छूटे तो जितना हो सके उतना छोड़कर शास्त्राभ्यास में तत्पर रहना । तूने विवाहादिक कार्य में बड़ाई होना कही वह कितने दिन बड़ाई रहेगी ? वह बड़ाई जिसके लिये महापापारम्भ से नरकादि में बहुत काल दुःख भोगना होगा, अथवा तुझ से भी उन कार्यों में घन लगाने वाले बहुत हैं अतः विशेष बड़ाई भी होने वाली नहीं है । और शास्त्राभ्यास से तो ऐसी बड़ाई होती है कि जिनकी

सर्वजन महिमा करते हैं। इन्द्रादिक भी प्रशंसा करते हैं। और परपरा भी स्वर्ग—मुक्ति का कारण है। इसलिये विवाहादिक कार्यो का विकल्प छोड़कर शास्त्राभ्यास का उद्यम रखना। सर्वथा न छोटे तो बहुते विकल्प न करना। इस प्रकार काम—भोगादिक के पक्षपाती को शास्त्राभ्यास में सन्मुख किया।

इस प्रकार अन्य भी जो विपरीत विचार से इस ग्रन्थ के अभ्यास में अरुचि प्रगट करते हैं, उनको यथार्थ विचार से इस शास्त्र के अभ्यास में सन्मुख होना योग्य है।

प्रश्न २३—यहाँ अन्यमती कहते हैं कि तुमने अपने ही शास्त्र के अभ्यास करने का दृढ़ किया, हमारे मत में माना युक्ति आदि सहित शास्त्र हैं उनका भी अभ्यास क्यों न कराया जाय ?

उत्तर—उनको कहते हैं—

तुम्हारे मत के शास्त्रों में आत्महित का उपदेश नहीं। कही श्रृ गार का, कही युद्ध का, कही काम सेवन आदि का, कही हिंसादिक का कथन है। और यह तो बिना ही उपदेश सहज ही हो रहा है अतः इनको तजने से हित होता है। अन्यमत तो उलटा उनका पोषण करता है, इसलिये उससे हित कैसे होगा ? वहाँ वह कहते हैं कि ईश्वर ने ऐसी लीला की है, उसको गाते हैं तो उससे भला होता है। वहाँ कहते हैं कि यदि ईश्वर को सहज सुख न होगा तब ससारीवत् लीला से सुखी हुआ। जो वह सहज सुखी होता तो किसलिये विषयादि सेवन वा युद्धादि करता ? मदबुद्धि भी बिना प्रयोजन किंचित्मात्र भी कार्य नहीं करते। इसलिये जाना जाता है कि—वह ईश्वर हम जैसा ही है। उसका यश गाने से क्या सिद्धि होगी ?

प्रश्न २४—और वह कहता है कि हमारे शास्त्रों में त्याग, वैराग्य, अहिंसादिक का भी उपदेश है।

उत्तर—वह उपदेश पूर्वा पर विरोध सहित है, कही विषय पोषते हैं, कही निषेध करते हैं, कही वैराग्य दिखाकर पश्चात् हिंसादिक का करना पुष्ट किया है वहाँ वातुलवचनवत् प्रमाण कहाँ ?

प्रश्न २५—तथा वह कहते हैं कि—वेदान्त आदि शास्त्रों में तो तत्त्व का निरूपण है ।

उत्तर - उनको कहते हैं—नहीं, वह निरूपण प्रमाण से बाधित है, अयथार्थ है, उसका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रों में किया है सो जानना । इसलिए अन्य मत के शास्त्रों का अभ्यास न करना ।

प्रश्न २६—इसी प्रकार जीवों को इस शास्त्र के अभ्यास में सन्मुख किया ।

उत्तर—उनको कहते हैं ..

हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं । शब्द या अर्थ का वाँचन या सीखना, सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारम्बार चर्चा करना इत्यादि अनेक अंग हैं—वहाँ जैसे बने तैसे अभ्यास करना । यदि सर्वशास्त्र का अभ्यास न बने तो इस शास्त्र में सुगम या दुर्गम अनेक अर्थों का निरूपण है, वहाँ जिसका बने उसका अभ्यास करना । परन्तु अभ्यास में आलसी न होना । देखो ! शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होने पर परम्परा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षमार्ग रूप फल को प्राप्त होना है । यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रगट हो । है, क्रोधादि कषायों की तो मदता होती है, पचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति रुकती है, अति चंचल मन भी एकाग्र होता है, हिंसादि पाँच पाप नहीं होते, स्तोक (अल्प) ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीन काल सम्बन्धी चराचर पदार्थों का जानना होता है, हेय—उपादेय की पहचान होती है, आत्मज्ञान सन्मुख होता है, अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है, लोक में महिमा यश विशेष होता है, अतिशय पुण्य का बंध होता है, इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए शास्त्राभ्यास अवश्य करना ।

प्रश्न २७—तथा हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास करने के समय की प्राप्ति महादुर्लभ है । कैसे ? यह कहते हैं—

उत्तर—एकेन्द्रियादि असंज्ञीपर्यंत जीवों को तो मन नहीं, और नारकी वेदना से पीड़ित तिर्यच विवेकरहित, देव विषयासक्त, इसलिए मनुष्यों को अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास होता है। सो मनुष्य पर्याय की प्राप्ति ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से महादुर्लभ है।

वहाँ द्रव्य से तो लोक में मनुष्य जीव बहुत भल्य हैं, तुच्छ सख्यात मात्र ही हैं, और अन्य जीवों में निगोदिया अनन्त है दूसरे जीव अमर्याद हैं। तथा क्षेत्र से मनुष्यों का क्षेत्र बहुत स्तोक (थोड़ा ही) अठ्ठाई द्वीप मात्र ही है और अन्य जीवों में एकेन्द्रियों का क्षेत्र सर्व लोक है, दूसरों का कितनेक राजू प्रमाण है। और काल से मनुष्य पर्याय में उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि—अपेक्षा पृथक्त्व कोटिपूर्व मात्र है और अन्य पर्यायों में उत्कृष्ट रहने का काल—एकेन्द्रिय में तो जसख्यात पुद्गल-परावर्तन मात्र और अन्य में सख्यात पत्य मात्र है। भाव-अपेक्षा तीव्र शुभाशुभपने से रहित ऐसे मनुष्य-पर्याय के कारण रूप परिणाम होने अति दुर्लभ हैं, अन्य पर्याय का कारण अशुभ रूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। इस प्रकार शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याय कर्मभूमि या मनुष्य पर्याय, उसका दुर्लभपना जानना। वहाँ सुवास, उच्चकुल, पूर्ण आयु, इन्द्रियों की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगात, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादि की प्राप्ति होना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। यह प्रत्यक्ष दीख रहा है; और उतनी सामग्री मिले बिना ग्रन्थाभ्यास बनता नहीं, सो तुमने भाग्य से अवसर पाया है इसलिए तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिए प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो, अन्य जीवों को जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखवाना, व पढ़ने-पढ़ानेवालों की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण, उनका साधन करना; क्योंकि उनके द्वारा भी परम्परा कायसिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस शास्त्र के अभ्यासादि में जीवों को रुचिदान किया।

मिथ्यातम ही महापाप है

राजमल पवैया

मिथ्यातम ही महा पाप है, सब पापो का बाप है ।
 सब पापो से बड़ा पाप है, घोर जगत सताप है ॥टेका॥
 हिंसादिक पाचो पापो से, महा भयकर दुखदाता ।
 सप्त व्यसन के पापो से भी, तीव्र पाप जग विख्याता ॥
 है अनादि से अग्रहीत ही, शाश्वत शिव सुख का घाता ।
 वस्तु स्वरूप इसी के कारण, नहीं समझ में आ पाता ॥
 जिन वाणी सुनकर भी पागल, करता पर का जाप है ।

मिथ्यातम ही महापाप है ॥१॥

सजी पचेन्द्रिय होता है, तो ग्रहीत अपनाता है ।
 दो हजार सागर त्रस रहकर, फिर निगोद में जाता है ॥
 पर में आपा मान स्वय को, भूल महा दुख पाता है ।
 किन्तु न इस मिथ्यात्व मोह के, चक्कर से बचपाता है ॥
 ऐसे महापाप से वचना, यह जिनकुल का माप है ।

मिथ्यातम ही महापाप है ॥२॥

इससे बढ़कर महा शत्रु तो, नहीं जीव का कोई भी ।
 इससे बढ़कर महा दुष्ट भी, नहीं जगत में कोई भी ॥
 इसके नाश किए बिन होता, कभी नहीं व्रत कोई भी ।
 एकदेश या पूर्ण देशव्रत, कभी न होता कोई भी ॥
 क्रिया काड उपदेश आदि सब, झूठा वृथा प्रलाप है ।

मिथ्यातम ही महापाप है ॥३॥

यदि सच्चा सुख पाना है तो, तुम इसको सहार करो ।
 तत्क्षण सम्यक्दर्शन पाकर, यह भव सागर पार करो ॥
 वस्तु स्वरूप समझने को अब, तत्त्वों का अभ्यास करो ।
 देह पृथक है, जीव पृथक है, यह निश्चय विश्वास करो ॥
 स्वय अनादिअनंत नाथ तू, स्वय सिद्ध प्रभु आप है ।

मिथ्यातम ही महापाप है ॥४॥

॥ श्री वीतरागायनम् ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

छठा भाग

मगलाचरण

चस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम ।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम ॥१॥
अनुभव चिन्तामनि रतन, अनुभव है रस कूप ।
अनुभव मारग मोक्ष कौ, अनुभव मोक्ष स्वरूप ॥२॥
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और ॥३॥
जिनपद नाहि शरीर कौ, जिन पद चेतन मांहि ।
जिन वर्नन कछु और है, यह जिन वर्नन नाहि ॥४॥
प्रगटै निज अनुभव करै, सता चेतन रूप ।
सब ज्ञाता लखिके नमौ, समयसार सब भूप ॥५॥
देव गुरु दोनो खड़े, किसके लागू पाव ।
बलिहारी गुरु देव की, भगवन् दियो बताय ॥६॥
करुनानिधि गुरुदेव श्री, दिया सत्य उपदेश ।
ज्ञानी माने परख कर, करें मूढ संक्लेश ॥७॥

अकरण पहला

१. वीतराग-विज्ञान

१ वीतराग-विज्ञान (मोक्षमार्गप्रकाशक मे से मागलिक काव्य)

[अ] मंगलमय मंगल करण, वीतराग विज्ञान ।

नमों ताहि जातै भये, अरहंतादि महान ॥१॥

करि मंगल करि हों महा, ग्रथ करन को काज ।

जातै मिलै समाज सब, पावै निज पद राज ॥२॥

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १)

अर्थ—वीतराग-विज्ञान मंगलमय है तथा मंगल का करने वाला है । जिस कारण से अरहन्तादि पंच परमेष्ठी महान हुए हैं उनको नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार मंगलाचरण करके इस महा ग्रन्थ के करने का शुभ कार्य करता हूँ । जिससे सर्व समाज को उस वीतरागी विज्ञान की प्राप्ति हो और निजपद के राज्य को प्राप्त करे ।

भावार्थ—विज्ञान दो प्रकार का है—(१)अज्ञानरूप विज्ञान, (२) वीतराग विज्ञान ।

प्रश्न १—अज्ञानरूप विज्ञान क्या है ?

उत्तर—जो परिणाम मिथ्या अभिप्राय सहित हो, स्व-पर के एकत्व अभिप्राय से युक्त हो वह अज्ञानरूप विज्ञान है ।

श्री समयसार गा० २७१ को टीका मे लिखा है कि 'स्वपर का अविवेक हो (स्व-पर का भेदज्ञान ना हो) तब जीव को अध्यवसिति मात्र (एक मे दूसरे की मान्यता पूर्वक) परिणति और (मात्र पर को जानने की वुद्धि होने से) विज्ञप्ति मातृत्व से विज्ञान है । यह विज्ञप्ति मात्र स्व-पर के अविवेक को दृढ करती है, इसलिए अज्ञान कहलाती है, ऐसा विज्ञान मिथ्यादृष्टियों को होता है तथा वह ससारवर्धक है ।

मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त आत्माये, अनन्तान्त

पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य तथा शुभाशुभ भावो मे एकत्व बुद्धि, एकत्व का ज्ञान और एकत्व का आचरण ही अज्ञानरूप विज्ञान है । यह अज्ञानरूप विज्ञान इस जीव को चारो गतियो मे भ्रमण कराता है ।

प्रश्न—अज्ञानरूप विज्ञान तीन प्रकार का कौन-कौन सा है ?

उत्तर—(१) हिंसादि और अहिंसादि के अध्यवसान से अपने को हिंसादि और अहिंसादि रूप मानना । (२) उदय मे आते हुए नारक, तिर्यच, मनुष्य, देव के अध्यवसान से अपने को नारकी आदिरूप मानना । (३) जानने मे आते हुए सब द्रव्यो मे अपने को उस रूप करने की मान्यता । (देखो समयसार गा० २६८ से २७० तक)

प्रश्न—वीतराग विज्ञान क्या है ?

उत्तर—स्व-पर के भिन्नपने का ज्ञान वीतराग-विज्ञान है ।

श्री समयसार गा० ७४ मे लिखा है कि 'मिथ्यात्व जाने के बाद जीव चाहे ज्ञान का उघाड अल्प हो, तो भी विज्ञान कहने मे आता है । जैसे-जैसे विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है वैसे-वैसे आस्रवो से निवृत्त होता जाता है और जैसे-जैसे आस्रवो से निवृत्त होता जाता है तैसे-तैसे विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है ।

मुक्त निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त आत्माये, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य तथा शुभाशुभ भावो मे भिन्नत्व ज्ञा श्रद्धान, भिन्नत्व का ज्ञान और भिन्नत्व का आचरण ही वीतराग विज्ञान है । वह जीव को चारो गतियो का अभाव करके मोक्ष मे पहुचा देता है ।

प्रश्न—मगल शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—(१) 'मग अर्थात् सुख, उसे 'लाति' अर्थात् देता है । (२) 'म' अर्थात् पाप, उसे 'गालयति' अर्थात् गाले, दूर करे उसका नाम मगल है । वास्तव मे मिथ्यादर्शनादि भावो पाप है उनका नाश करके सम्यग्दर्शनादि भावो सुख है उनकी प्राप्ति होना वह मगल है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

[आ] मिथ्या भाव अभाव तें, जो प्रगट निज भाव ।

सो जयवन्त रहौ सदा, यह ही मोक्ष उपाव ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१]

अर्थ—मिथ्या भाव का अभाव होने से जो निज भाव प्रगट होता है, वह एक ही मोक्ष का उपाय है । वह सदा जयवन्त रहो ।

भावार्थ—यहाँ मोक्ष का उपाय एक ही है, दो या अधिक मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा स्पष्ट बताया है । मोक्षमार्ग एक ही है ऐसा ही श्री प्रवचनसार गाथा ८२, १६६ तथा २४२ में तथा समयमार कलश २३६ और २४० में बताया है रत्नकरण्ड-श्रावकाचार गा० ३ में तथा तत्त्वार्थ सूत्र पहला अध्याय के पहले सूत्र में भी यही बताया है ।

‘मोक्षमार्ग दो नहीं है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है .. एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है ।’

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४८ से २४९ में देखो]

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र यह मिथ्याभाव हैं, इनके अभाव से तथा अपने स्वभाव का आश्रय लेने से निजभाव प्रगट होता है, वह सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र है ।

स्व-पर के अविवेक से मिथ्याभाव प्रगट होता है और स्व-पर के विवेक से सम्यक्भाव प्रगट होता है ।

[इ] सो निज भाव सदा सुखद, अपना करो प्रकाश ।

जो बहुविधि भव दुखनि को, करि है सत्ता नाश ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४५]

अर्थ—जो निजभाव है वह सदा सुख देने वाला है, इसलिये निजभाव का प्रकाश करो । निजभाव के प्रकाश करने से अनेक प्रकार के दुखों की सत्ता का नाश हो जाता है ।

भावार्थ—जीव अनादि से, एक-एक समय करके मिथ्याभाव के

कारण ही अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है। उन सब दुःखों का नाश एक मात्र निजभाव को प्रगट करने से ही होता है, क्योंकि वह सदा सुख को देने वाला है।

बाह्य पदार्थों के कारण जीव को सुख-दुःख होता है, यह मान्यता झूठी है। इसलिए खोटी मान्यता को छोड़कर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर शुद्ध भाव प्रगट करना चाहिए, क्योंकि शुद्धभाव सुखदायक है और आकुलता-चिन्ता का अभाव करने वाला है।

प्रश्न—अशुद्ध भाव क्या है ?

उत्तर—हिंसादि और अहिंसादि के भाव अशुद्ध भाव हैं। इन अशुद्ध भावों को और आत्मा को एक मानना—यह ससार का बीज है, मिथ्यात्व है। इस भाव से सब बातें उल्टी ही श्रद्धा में आती हैं, उल्टी ही ज्ञान में जाती है और उल्टी ही आचारणरूप होती है। आत्मा और विकारी क्षणिक भावों की एकताबुद्धि ही अनन्त ससार है।

[पुरुषार्थसिद्धिउपाय गा० १४]

प्रश्न—शुद्ध भाव क्या है ?

उत्तर—अपने त्रिकाली आत्मा का आश्रय लेने से अशुद्ध भाव रुक जाते हैं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप शुद्धभाव प्रगट हो जाते हैं। शुद्ध भाव के प्रगट होते ही अनन्त ससार का अभाव हो जाता है। शुद्धभाव के प्रगट होते ही सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा आचरण प्रगट हो जाता है। परका मैं कल्लू-धल्लू रूप जो बुद्धि है उसका अभाव हो जाता है।

प्रश्न—शुद्धभाव के प्रगट होते ही क्या-क्या होता है, जरा स्पष्ट बताइये ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग जो ससार के कारण हैं उनका अभाव हो जाता है। (२) आठों कर्मों का अभाव हो जाता है। (३) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप जो पाँच परावर्तन हैं उनका अभाव हो जाता है। (४) पचम पारि-

है । और मिथ्यात्व के समान तीन काल और तीन लोक में अन्य कोई अकल्याणकारी नहीं है ।

प्रश्न—सम्यग्दर्शन क्या है ?

उत्तर—मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है, इसलिये सबसे प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये ।

(उ) बहुविधि मिथ्या ग्रहणकरि, मलिन भयो निज भाव ।

ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६५]

अर्थ—अनेक प्रकार के मिथ्या श्रद्धान के ग्रहण से निज भाव मलिन होता है, इन कारणों का अभाव होने पर जीव का सहजरूप देखने में आता है ।

भावार्थ—जगत में धर्म के नाम पर अनेक मिथ्या मान्यताएँ चलती हैं । जिस कुटुम्ब में स्वयं मनुष्य तरीके जन्म लिया, वहाँ जो कुछ मान्यता चलती हो उसी को वह ग्रहण करता है । उस मिथ्या मान्यता से उसका निज भाव मलिन होता है । इसलिये सत्यदेव, सत्यगुरु, सच्चे धर्म का, तत्त्वों का, द्रव्यों का, सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप क्या है ? और अन्यथा स्वरूप क्या है ? उसे जानकर अन्यथा विपरीत स्वरूप जिससे अपना निजभाव मलिन हो रहा था, उसे छोड़कर यथार्थ स्वरूप ग्रहण करके उन भावों का अभाव करना चाहिये और अपना सहज स्वभाविक शुद्धस्वरूप जो शक्तिरूप है उसे पर्याय में प्रगट करना चाहिये । अन्य मत वाले अनेक कल्पित बातें करते हैं सो जैन धर्म में सम्भव नहीं हैं ।

[ऊ] मिथ्या देवादिक भजै, हो है मिथ्याभाव ।

तज तिनको साँचे भजो, यह हित हेतु उपाय ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६८]

अर्थ—मिथ्यादेव, गुरु, धर्म के मानने से मिथ्याभाव दृढ़ होता है ।

इसलिये इनको छोड़कर सच्चदेव, गुरु, धर्म को मानना चाहिये यह हित का उपाय है ।

भावार्थ—आत्मा का हित जन्म मरण का अभाव करके परिपूर्ण सुख दशा की प्राप्ति ही है । कुदेव, कुगुरु, कुधर्म की भक्ति से मिथ्या भाव उत्पन्न होता है । इसलिये सत्य क्या है ? उसका यथार्थ निर्णय करके असत्य को छोड़कर, सत्य देवादि को ग्रहण करके, उसके उपदेश के अनुसार शुद्धता प्रगट करनी चाहिये, क्योंकि वह अपने हित का निमित्त कारण है इसलिये उसका उपाय करना ।

प्रश्न—हम दिगम्बर धर्मो अन्य कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को मानते ही नहीं, क्योंकि हम वीतरागी प्रतिमा को पूजते हैं, २८ मूलगुणधारी नग्न भार्वाङ्गी मुनि को मानते हैं और उनके कहे हुए सच्चे शास्त्रों का अभ्यास करते हैं, तो हम किस प्रकार मिथ्यादृष्टि हैं ?

उत्तर—“सत्तास्वरूप” मे ५० भागचन्द्र जी छाजेड ने कहा है दिगम्बर जैन कहते हैं कि ‘हम तो सच्चे देवादि को मानते हैं इसलिये हमारा गृहीत मिथ्यात्व तो छूट गया है । तो कहते हैं कि नहीं, तुम्हारा गृहीतमिथ्यात्व नहीं छूटा है क्योंकि तुम गृहीतमिथ्यात्व को जानते ही नहीं । मात्र अन्य देवादि को मानना ही गृहीतमिथ्यात्व का स्वरूप नहीं है । सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा बाह्य मे भी यथार्थ व्यवहार जानकर करना चाहिये । सच्चे व्यवहार को जाने बिना कोई देवादि की श्रद्धा करे, तो भी वह गृहीतमिथ्यादृष्टि है ।

प्रश्न—गृहीतमिथ्यात्व कैसे छूटे ?

उत्तर—वर्तमान मे जो कोई शुभभावो से आत्मा का भला होता है, निमित्त मिले तो कल्याण हो, दूसरे के आश्रय से हमारा भला होता है, आदि खोटी मान्यताओं के उपदेशक की श्रद्धा सब गृहीत-मिथ्यात्व मे आते हैं । (१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है, कुछ सहायता आदि करता है आदि उपदेशक गृहीतमिथ्यात्व मे आते हैं (२) शुभभाव करो, धीरे-धीरे कल्याण हो जावेगा आदि

मान्यता करने वाले वर्तमान में जो कोई हो इनसे दूर रहना चाहिये । श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ११७ की टीका में सदासुखदास जी ने पृष्ठ १५२ में लिखा है कि “कलिकाल में भावलिंगी मुनीश्वर तथा अर्जिका तथा क्षुल्लक का समागम तो है ही नाहि” इसलिये सच्चेदेव, गुरु, धर्म का स्वरूप समझकर दिगम्बर धर्म के नाम से मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले जो कोई भी हो’ इनसे दूर रहना चाहिए । क्योंकि यह गृहीतमिथ्यात्व के पुष्ट करने वाले हैं ।

प्रश्न—आत्मा का हित एक मोक्ष ही है, ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में कहाँ आया है ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक ६वाँ अध्याय पृष्ठ ३०६ में लिखा है “आत्मा का हित मोक्ष ही है, अन्य नहीं ।”

प्रश्न—आत्मा का हित मोक्ष ही है उसकी सिद्धि कैसे हो ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०७ में लिखा है कि “(१) या तो अपने रागादि दूर हो (२) या आप चाहे उसी प्रकार सर्व द्रव्य परिणमित हो तो आकुलता मिटे परन्तु सर्व द्रव्य तो अपने आधीन नहीं है क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नहीं है, सब अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमे हैं ।

अपने रागादिक दूर होने पर निराकुलता हो, सो यह कार्य बन सकता है । सो अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय लेकर अपना हित साधना प्रत्येक पात्र जीव का प्रथम कर्तव्य है ।

प्रश्न—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

उत्तर—मिथ्यात्व है ।

प्रश्न—सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है यह कहाँ आया है ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक छठवे अधिकार के अन्त में पृष्ठ १६१ में लिखा है कि “जिनधर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है, इसलिए इस मिथ्यात्व को सप्त-व्यसनादिक से भी बड़ा पाप जानकार पहले छुड़ाया है । इसलिए जो-

पाप के फल से डरते हैं। अपने आत्मा को दुःख समुद्र में नहीं डुबाना चाहते हैं, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो”।

(ए) इस भव तृष्णा का मूल इक जानहु मिथ्याभाव।

ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६३]

अर्थ—इस भव रूपी वृक्ष का मूल एक मिथ्यात्व भाव है उसको निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए।

भावार्थ—मिथ्यात्व महापाप है। मिथ्यात्व को सातव्यसन से भी महापाप जानकर पहले छुड़ाया है, इसलिए पात्र जीव को मिथ्यात्व को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न—निश्चयाभासी मिथ्यात्व को पुष्टि कैसे करता है ?

उत्तर—निश्चयाभासी जीव जो बात भगवान ने शक्ति अपेक्षा कही है उसे अपनी वर्तमान पर्याय में मानकर, तथा भगवान ने शुभ-भावों को हेय बताया है ऐसा मानकर अशुभ में प्रवर्तता हुआ अपने को मोक्षमार्गी मानता हुआ मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

प्रश्न—व्यवहाराभासी मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

उत्तर—“केळ व्यवहार दान शील तप भाव ही को आत्मा का हित जान छाँडत न मुद्धता” व्यवहाराभासी जीव जो बात जिनागम में व्यवहार की मुख्यता से बतलाई है उसे ही मोक्षमार्ग मानकर बाह्य साधनादिक ही का श्रद्धानादिक करता है ऐसा मानने से उसके सर्व धर्म के अग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—उभयाभासी मिथ्यात्व की पुष्टि कैसे करता है ?

उत्तर—“केळ व्यवहारनय, निश्चय के मारग भिन्न-भिन्न जान, यह बात करे उद्धता” निश्चयाभासी के समान निश्चय को और व्यवहाराभासी के समान व्यवहार को, इस प्रकार दोनों को मानने वाला उभयाभासी है।

(१) दो प्रकार के मोक्षमार्ग मानता है जबकि एकमात्र वीतरागता

ही मोक्षमार्ग है । (२) निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, जबकि मात्र निश्चय उपादेय है आदि बातों से मिथ्यात्व की पुष्टि करता है ।

प्रश्न—तीनों प्रकार के भासियों की मिथ्या मान्यता कैसे टले ?

उत्तर—“जबै जाने निहचै के भेद-व्यवहार सब कारण को उपचार माने, तब बुद्धता” निश्चय-व्यवहार को जानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले तो मिथ्याभासीपने का अभाव हो, तब धर्म की प्राप्ति हो ।

(ऐ) शिव उपाय करते प्रथम, कारन मंगल रूप ।

विघन विनाशक सुख करन, नमो शुद्ध शिवभूष ॥१॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६]

अर्थ—शिव उपाय अर्थात् मोक्ष का उपाय करते समय पहले उसका कारण और मंगल रूप, शुद्ध शिवभूष को नमस्कार करना चाहिये, क्योंकि वह विघ्न विनाशक और सुख करने वाला है ।

भावार्थ—शुद्ध शिवभूष व्यवहारनय से सिद्ध भगवान है और निश्चयनय से अपना त्रिकाली आत्मा ही है । जो कि सर्व विशुद्ध परम पारिणामिक, परम भाव ग्राहक, शुद्ध उपादान भूत, शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से निज जीव ही है जो कि कर्तृत्व-भोक्तृत्व रहित तथा बध-मोक्ष के कारण और परिणाम से रहित (शून्य) है । उसको प्राप्ति एक मात्र शक्तित्वान के आश्रय से ही होती है, किसी पर भगवान या शुभ भाव से कभी भी नहीं । इसलिए अपने परम पारिणामिक ज्ञायक आत्मा का आश्रय लेकर सवर निर्जरारूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति कर, पूर्ण मोक्ष का पथिक बनना ही जैनधर्म का सार है ।

२. द्रव्य गुणो का स्वतन्त्र परिणमन

(अ) जीव द्रव्य, उसके अनन्त गुण, सब गुण असहाय, स्वाधीन, सदाकाल, ऐसा वस्तु स्वरूप है ।

(आ) अब इनकी व्यवस्था “न ज्ञान चारित्र के आधीन है, न

चारित्र ज्ञान के आधीन हैं, दोनों असहाय रूप हैं।" ऐसी मर्यादा बँधी है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान-निमित्त चिट्ठी पृष्ठ १६]

(इ) कोई कहता है कि 'ज्ञान की शुद्धता से क्रिया (चारित्र) शुद्ध हुआ, सो ऐसा नहीं है। कोई गुण किसी गुण के सहारे नहीं है।' सर्व असहाय रूप हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान-निमित्त चिट्ठी पृष्ठ १६]

प्रश्न—इसमें अनेकान्त कैसे हुआ ?

उत्तर—सर्वगुण स्वाधीन वह अस्ति तथा असहाय वह नास्ति, इस प्रकार अस्ति-नास्ति रूप असहाय यह अनेकान्त है।

(ई) प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है निमित्त विशिष्टता नहीं ला सकता 'क्योकि पर अर्थात् पर द्रव्य किसी द्रव्य को परभाव रूप करने का निमित्त नहीं हो सकता।'।

[समयसार गा० २२० से २२३ टीका में]

(उ) 'ससारी के एक यह उपाय है कि स्वयं को जैसा श्रद्धान है, उसी प्रकार पदार्थों को परिणमित करना चाहता है, यदि वे परिणमित हो तो इसका सच्चा श्रद्धान हो जाये। परन्तु अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती।' तथापि जीव उन्हें अपनी इच्छानुसार परिणमित कराने की इच्छा करता है यह तो मिथ्यादर्शन ही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२]

(ऊ) "कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं, सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव रूप परिणमित होते हैं, यह जीव वृथा ही कपाय भाव से आकुलित होता है।"

(ए) "लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं, कोई किसी को सुख-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं। यह जीव

व्यर्थ ही अपने परिणामो मे उन्हें सुखदायक-उपकारी मानकर इष्ट मानता है अथवा दुःखदायी-अनुपकारी जानकर अनिष्ट मानता है ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८६]

(ऐ) “यदि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो, तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं, इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक है उन्हें छोड़कर वीते-रागी होता है ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५२]

(ओ) “सर्व कार्य जैसे यह चाहे वैसे ही हो, अन्यथा न हो, तब यह निराकुल रहे, परन्तु यह तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नहीं है, इसलिए अपने रागादिक दूर होने पर निराकुलता हो, सो यह कार्य बन सकता है ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०७]

(औ) “इस बधान मे कोई किसी को करता तो है नहीं ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४]

(अ) “यदि कर्म स्वयं कर्ता होकर उद्यम से जीव के स्वभाव का घात करे, बाह्य सामग्री को मिलावे, तब तो कर्म के चेतनपना भी चाहिये और बलवानपना भी चाहिए, सो है नहीं । सहज ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५]

(अ) “पदार्थों को यथार्थ मानना और यह परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नहीं होगे, ऐसा मानना सो ही उस दुःख के दूर होने का उपाय है । भ्रमजनित दुःख का उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना ।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२]

(क) “सब पदार्थ अपने द्रव्य मे अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं स्पर्श करते हैं तथापि वे (सब द्रव्य) परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते ।”

[समयसार गा० ३ की टीका]

(ख) अन्य द्रव्य से, अन्य द्रव्य के गुण की उत्पत्ति नहीं की जा सकती, इससे (यह सिद्धान्त हुआ कि) सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। [समयसार मूल गा० ३७२]

(ग) जो द्रव्य किसी द्रव्य में और पर्याय में वतता है वह अन्य द्रव्य में तथा पर्याय में बदलकर अन्य में नहीं मिल जाता। अन्य रूप से सक्रमण को प्राप्त न होती हुई वस्तु अन्य वस्तु को कैसे परिणमन करा सकती है। अर्थात् नहीं करा सकती है।

[समयसार मूल गा० १०३]

(घ) जो पर द्रव्य है वह ग्रहण नहीं किया जा सकता है और छोड़ा भी नहीं जा सकता, ऐसा ही कोई उसका (आत्मा का) प्रायोगिक (विकारी पर्याय) वैस्रसिक (स्वभाव) है।”

[समयसार मूल गा० ४०६]

३. जैनधर्म

(अ) ‘सर्व कषायो का जिस-तिस प्रकार से नाश करने वाला जो जिन धर्म अर्थात् जैनधर्म।’ [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १२]

(आ) जैन शास्त्रों के पदों में तो कषाय मिटाने का तथा लौकिक कार्य घटाने का प्रयोजन है।’ [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १३]

(इ) “जैनमत में एक वीतराग भाव के पोषण का प्रयोजन है” जैनधर्म में देव-गुरु-धर्मादिक का स्वरूप वीतराग ही निरूपण करके केवल वीतरागता ही का पोषण करते हैं।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १३७]

(ई) “जीव मोक्षमार्ग को प्राप्त कर ले तो उस मार्ग में स्वयं गमन कर उन दुःखों से मुक्त हो। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, इसलिए जिन शास्त्रों में किसी प्रकार रागद्वेष मोह भावों का निषेध करके वीतराग भाव का प्रयोजन प्रगट किया हो, उन्हीं शास्त्रों का वाँचना-सुनना उचित है।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १४]

(उ) जैनधर्म में मुनिपद लेने का क्रम तो यह है—पहले तत्त्वज्ञान होता है, तत्पश्चात् उदासीन परिणाम होते हैं, परिषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्री गुरु मुनि-धर्म अंगीकार कराते हैं।” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १७६]

(ऊ) जैनधर्म की पद्धति तो ऐसी है कि “प्रथम तत्त्वज्ञान हो, और पश्चात् चारित्र्य हो, सो सम्यक्चारित्र्य नाम पाता है।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २४२]

(ए) ‘सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की एकतारूप मोक्षमार्ग वही ही मुनियों का सच्चा लक्षण है।’ [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२३]

(ऐ) भक्ति तो राग रूप है, और राग से बंध है इसीलिए मोक्ष का कारण नहीं है।” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२२]

(ओ) उच्च भूमिका में (ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति प्राप्त न की हो, तब अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा तीव्र राग ज्वर मिटाने के हेतु कर्दाचित् ज्ञानी को भी भक्ति होती है यह (प्रशस्त राग) वास्तव में, जो स्थूल लक्ष वाला होने से मात्र भक्ति प्रवीण है ऐसे अज्ञानी को होता है। [पञ्चास्तिकाय गा० १३६ पृष्ठ २०३]

(औ) “जिस भाव से आत्मा को पुण्य अथवा पाप आस्रवित होते हैं, उस भाव द्वारा वह (जीव) पर चारित्र्य है ऐसा जिन प्ररूपित करते हैं, इसलिये पर चारित्र्य में प्रवृत्ति सो बंधमार्ग ही है मोक्षमार्ग नहीं है। [पञ्चास्तिकाय गाथा १५७]

(अ) “वीतराग भाव रूप तप को न जाने और इन्हीं (अनशन प्रायश्चित्त आदि) को तप जानकर सग्रह करे तो ससार में ही भ्रमण करेगा। बहुत क्या, इतना समझ लेना कि निश्चयधर्म तो वीतराग-भाव है, अन्य नाना विशेष बाह्य साधन को अपेक्षा उपचार से किये हैं उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा जानना। इस रहस्य को जो नहीं जानता इसलिए उसके निर्जरा का सच्चा श्रद्धान नहीं।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(अ) स्वर्गसुख का कारण प्रशस्त राग है और मोक्ष सुख का कारण वीतराग भाव है ।” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३४]

(क) “सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य इनकी एकता मोक्षमार्ग है वही धर्म है ।” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५७]

(ख) “जिन धर्म में यह तो आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है । इसलिए मिथ्यात्व को सप्तव्यमनादिक से भी बड़ा पाप जानकर पहले छुड़ाया है । इसलिए जो पाप के फल से डरते हैं, अपने आत्मा को दुःख समुद्र में नहीं डुबाना चाहते वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो ।” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६१]

(ग) “रागादिक का छोड़ना, इसी भाव का नाम धर्म अर्थात् जैन धर्म है” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६१]

(घ) “जैनधर्म का तो ऐसा उपदेश है, पहले तो तत्त्वज्ञानी हो, फिर जिसका त्याग करे उसका दोष पहिचाने, त्याग करने में जो गुण हो उसे जाने, फिर अपने परिणामों को ठीक करे, वर्तमान परिणामों के ही भरोसे प्रतिज्ञा न कर बैठे, जैन धर्म में प्रतिज्ञा न लेने का दण्ड तो है नहीं” [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३६]

(ङ) “जिन्हें बन्ध नहीं करना हो वे कषाय नहीं करें”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २८]

(च) “जिनमत में तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०३]

(छ) “जिनमत में तो यह परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व होता है, फिर व्रत होते हैं, वह सम्यक्त्व स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है और वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने पर होता है, इसलिये प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो, पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धारण करके व्रती हो । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २६३],

(ज) स्व-पर के श्रद्धान में शुद्धात्म श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व गमित है । [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ २]

(‘फ’) जैन धर्म का सेवन तो ससार नाश के लिए किया जाता है, जो उसके द्वारा साँसारिक प्रयोजन (पूजा-शास्त्रादि कार्य) साधना चाहते हैं वे बड़ा अन्याय करते हैं। इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २१६]

(‘ज’) इस प्रकार सासारिक प्रयोजन सहित जो धर्म साधते हैं वे पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२०]

(‘ट’) जो जीव प्रथम से ही साँसारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है तो उसके पाप का ही अभिप्राय हुआ। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२२]

(‘ठ’) इस प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पाप बध ही होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

(‘ड’) “शास्त्र बाँचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो; क्योंकि यदि आशावान हो तो यथार्थ उपदेश नहीं दे सकता।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५]

४. अज्ञान की व्याख्या

(‘अ’) जीव की जो मान्यता हो तदनुसार (उस मान्यता के अनुसार) जगत में नहीं बनता हो तो वह मान्यता अज्ञान है।

[समयसार गा० २४८, २४९]

(‘आ’) पर पदार्थों को परिणमावने का अभिप्राय वास्तव में अज्ञान ही है, क्योंकि पर पदार्थ आत्मा के अधीन नहीं।

इन्द्रियो से ज्ञान मानना अज्ञान है, क्योंकि ज्ञान तो आत्मा से ही होता है। आत्मा ज्ञान के लिए इन्द्रिय-प्रकाश आदि बाह्य सामग्री सोधना अज्ञान है जिसको मोह महामत्तल जीवित है वह जीव अपने सुख और ज्ञान के लिए पर की ओर दौड़ता है यह अज्ञान है।

[प्रवचनसार गा० ५५ से]

(इ) जीव का जैसा आशय हो उसके अनुसार जगत में कार्य न बनता हो तो वह आशय अज्ञान है ।

[समयसार गाथा २५४ से २५६ तक]

(ई) आठ प्रकार के ज्ञानों में मति, श्रुति तथा अवधि ये तीन मिथ्यात्व के उदय के वश (६ द्रव्य, सात तत्त्व, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-नैमित्तिक, व्याप्य-व्यापक आदि में) विपरीताभिनिवेश रूप अज्ञान होता है । [वृहत् द्रव्यसंग्रह गा० ५ पृष्ठ १४ व १५ से]

(उ) मिथ्यादर्शन ही के निमित्त से क्षयोपशमरूप ज्ञान है वह अज्ञान हो रहा है । उससे यथार्थ वस्तु स्वरूप का जानना नहीं होता अन्यथा जानना होता है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६]

(ऊ) तत्त्व ज्ञान के अभाव से ज्ञान को अज्ञान कहते हैं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८८]

प्रश्न—अज्ञान क्या है सीधे-सादे शब्दों में बताओ ?

उत्तर—(१) आत्मा का कार्य ज्ञप्ति क्रिया है इसके बदले यह मानना कि मैं परजीवों को बचा सकता हूँ, मार जिला सकता हूँ । सुबह से लेकर चौबीस घण्टे जो रूपी पुद्गल का कार्य है, मैं इसे करता हूँ आदि सब मान्यता अज्ञान है ।

(२) स्वयं है आत्मा इसके बदले अपने को देव, नारकी, इन्द्रियादि वाला मानना यह अज्ञान है ।

(३) ज्ञान ज्ञान से आता है उसके बदले ज्ञेय से आता है यह सब मान्यता अज्ञान है । [देखो समयसार गा० २७०]

५. निश्चय सम्यक्त्व

(अ) मिथ्या मति ग्रन्थि भेदि, जगो निर्मल ज्योति ।

जोग सो अतीत सो, तो निहचै प्रमानिये ।

अर्थ—मिथ्यात्व का नाश होने से मन, वचन, काय के अगोचर

जो आत्मा की निर्विकार श्रद्धान की ज्योति प्रकाशित होती है उसे निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए ।

[समयसार नाटक चतुर्थ गुणस्थान अधिकार पृष्ठ ४६०]

(आ) केवलज्ञान आदि गुणों का आश्रय भूत निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है; इस प्रकार की रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व जो कि पहले तपश्चरण की अवस्था में भावित किया था (भावना की थी, अनुभव किया था) उसके फलस्वरूप समस्त जीवादि तत्वों के विषय में विपरीत अभिनिवेश (विरुद्ध अभिप्राय) से रहित परिणाम रूप परम ध्यायिक सम्यक्त्व कहलाता है ।

[वृहत द्रव्य सग्रह गा० १४ पृष्ठ ४१]

(इ) विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्त्वार्थ श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

६. तत्त्व विचार की महिमा

(अ) देखो तत्त्वविचार की महिमा । तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे; बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नाही और तत्त्वविचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६०]

(आ) तत्त्व विचार में उपयोग को तद्रूप होकर लगाये उससे समय-समय परिणाम निर्मल होते जाते हैं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६२]

(इ) पुरुषार्थ से तत्त्व निर्णय में उपयोग लगाये तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर सम्यक्त्वादि रूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है, इसलिए मुख्यता से तो तत्त्व निर्णय में उपयोग लगाने का पुरुषार्थ करना ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१२]

(ई) सो इसका कर्तव्य तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से

दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है। उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं।
(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४)

७. मिथ्यात्व ही आस्रव है और सम्यक्त्व ही सवर-निर्जरा, मोक्ष हैं

(अ) वास्तव में मिथ्यात्व ही आस्रव है।

(समयसार नाटक पृष्ठ १५३ आश्रवाधिकार)

(आ) प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव-बन्ध है और मिथ्यात्व का अभाव सम्यक्त्व सवर-निर्जरा तथा मोक्ष है।

(समयसार नाटक पृष्ठ ३१० मोक्षद्वार)

(इ) सिद्धान्त में मिथ्यात्व को ही पाप कहा है; जब तक मिथ्यात्व रहता है तब तक शुभाशुभ सर्व क्रियाओं को अध्यात्म में परमार्थतः पाप ही कहा जाता है।

(समयसार कलश १३७ के भावार्थ में पृष्ठ ३०७)

(ई) मिथ्यात्व सम्बन्धी बन्ध जो कि अनन्त ससार का कारण है वही यहाँ प्रधानतया विवक्षित है अविरति आदि से जो बन्ध होता है वह अल्प स्थिति-अनुभाग वाला है दीर्घ ससार का कारण नहीं है।

(समयसार गा० ७२ के भावार्थ में पृष्ठ १३३)

(उ) संसार का कारण मिथ्यात्व ही है, इसलिए मिथ्यात्व सबधी रागादि का अभाव होने पर, सर्व भावास्रवों का अभाव हो जाता है यह यहाँ कहा गया है। (समयसार कलश ११४ के भावार्थ में पृष्ठ २६१)

(ऊ) मिथ्यात्व सहित राग को ही राग कहा है, मिथ्यात्व रहित चारित्र-मोह सम्बन्धी परिणाम को राग नहीं कहा।

(समयसार कलश १३७ के भावार्थ पृष्ठ ३०८)

(ए) मिथ्यात्व है सो ही ससार है। मिथ्यात्व जाने के बाद ससार का अभाव ही होता है समुद्र में एक बूँद की गिनती ही क्या है ?

(समयसार गा० ३२० के भावार्थ पृष्ठ ४५४)

(ऐ) सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय ना होने से उसे इस प्रकार के भावास्त्रव तो होते ही नहीं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी बन्ध भी नहीं होता है ।

(समयसार गा० १७३ से १७६ तक भावार्थ पृष्ठ २७०)

(ओ) बन्ध के होने में मुख्य कारण मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी का उदय ही है। अनन्त ससार का कारण मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी ही है उसका अभाव हो जाने पर फिर उनका बन्ध नहीं होता वृक्ष की जड़ कट जाने पर फिर हरे पत्तों की अवधि कितनी ?

(समयसार कलश १६२ का भावार्थ पृष्ठ ३५६-३५७)

८. प्रयोजन और सब दुःखों का मूल मिथ्यात्व

(अ) जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो तथा दुःख का विनाश हो उस कार्य का नाम प्रयोजन है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६)

(आ) बाह्य अनुकूल सामग्री मिले यह प्रयोजन नहीं है क्योंकि इस प्रयोजन से (अनुकूल सामग्री से) कुछ भी अपना हित नहीं होता ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८)

(इ) सर्व दुःखों का मूल यह मिथ्यादर्शन है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ई) सर्व बाह्य सामग्री में इष्ट-अनिष्टपना मानता है, अन्यथा उपाय करता है, सच्चे उपाय की श्रद्धा नहीं करता, अन्यथा कल्पना करता है सो इन सबका मूल कारण एक मिथ्यादर्शन है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(उ) सब दुःखों का मूल कारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असयम है । मिथ्यादर्शनादिक है वे ही सर्व दुःखों का मूल कारण है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६)

(ऊ) मिथ्यात्व को सप्त व्यसन से भी बड़ा पाप कहा है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६१)

(ए) इस भव तरू का मूल एक मिथ्यात्व भाव है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६३)

(ऐ) इस मिथ्यात्व घैरी का अश भी बुरा है इसलिए सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६३)

(ओ) सर्व प्रकार के मिथ्यात्वभाव को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है क्योंकि ससार का मूल मिथ्यात्व है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६७)

(औ) मिथ्यात्वभाव को छोड़कर अपना कल्याण करा ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६२)

(अ) यही भाव दुखो के बीज है, अन्य कोई नहीं । इसलिये हे भव्य ! यदि दुखो से मुक्त होना चाहता है तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावभाव का अभाव करना ही कार्य है, इस कार्य के करने से तेरा परम कल्याण होगा । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६४)

(अ) मिथ्यात्व कर्म अत्यन्त अप्रशस्त है । (श्री धवल)

(क) सुख का कारण स्वभाव प्रतिघात का (द्रव्य-भाव घाति कर्म-का) अभाव है । (प्रवचनसार गा० ६१ की टीका)

(ख) इस जीव का प्रयोजन तो एक यही है कि दुख न हो सुख हो । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७८)

(ग) मोक्षमार्ग के प्रतिपक्षी जो मिथ्यादर्शनादिक उनका स्वरूप बताया । उन्हें तो दुःखरूप, दुख का कारण जानकर, हेय मानकर उनका त्याग करना मोक्ष के मार्ग जो सम्यग्दर्शनादिक है उन्हें सुखरूप, सुख का कारण जानकर, उपादेय मानकर, अगीकार करना, क्योंकि आत्मा का हित मोक्ष ही है ।

(घ) दुख न हो सुख हो, तथा अन्य भी जितने उपाय करते हैं वे सब इसी एक प्रयोजन सहित करते हैं दूसरा प्रयोजन नहीं ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६)

६. भवितव्य

(अ) अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव, आप स्वयं अथवा अन्य सचेतन-अचेतन पदार्थ किसी प्रकार परिणमित हुए, अपने को वह परिणमन बुरा लगा, तब अन्यथा परिणमन करके उस परिणमन का बुरा चाहता है, परन्तु उनका परिणमन उसके आधीन नहीं है। इस प्रकार क्रोध से बुरा करने की इच्छा तो हो, परन्तु बुरा होना या न होना भवितव्य के आधीन है।

(आ) अन्य कोई अपने से उच्च कार्य करे तो उसे किसी उपाय से नीचा दिगाता है और स्वयं नीचा कार्य करे तो उसे उच्च दिखाता है। इस प्रकार मान से अपनी महत्ता की इच्छा तो हो, परन्तु महत्ता होना भवितव्य आधीन है।

(इ) छल-रूपट द्वारा अपना अभिप्राय सिद्ध करना चाहता है। इस प्रकार माया ने इष्ट सिद्धि के अर्थ छल तो करे, परन्तु इष्ट सिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

(ई) लोभ से इष्ट प्राप्ति की इच्छा तो बहुत करे, परन्तु इष्ट प्राप्ति होना भवितव्य के आधीन है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३६)

(उ) श्री गीमट्टसार कर्मकाण्ड में पाँच प्रकार के एकान्तवादियों का कथन आता है उनका आशय (गाथा ८७६ से ८८३) इतना ही है कि इनमें से किसी एक से कार्य की उत्पत्ति मानता है वह मिथ्यादृष्टि है और जो कार्य की उत्पत्ति में इन पाँचों के (स्वभाव, पुरुषार्थ, काल, नियति और कर्म) समवाय को स्वीकार करता है वह सम्यग्दृष्टि है। पण्डित बनारसीदास जी ने नीचे पद के अनुसार इसी तथ्य की पुष्टि की है

पद सुभाव पूरव उदै निहचै उद्यम काल

पच्छपात मिथ्यात्व पथ, सरवगी शिवचाल ॥४१॥

तथा अष्ट सहस्री पृष्ठ २५७ मे अकलक देव ने कहा है .

तादृशी जायते बुद्धि, व्यवसायश्च तादृशः ।

सहायास्तादृशाः सन्ति, यादृशी भवितव्या ॥

अर्थ—जिस जीव की जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है उसकी वैसे ही बुद्धि हो जाती है । वह प्रयत्न भी उसी प्रकार का करने लगता है और उसे सहायक भी उसके अनुसार मिल जाते हैं । इस श्लोक मे भवितव्यता को मुख्यता दी गई है ।

प्रश्न—भवितव्यता क्या है ?

उत्तर—जीव की समर्थ उपादान शक्ति का नाम ही तो भवितव्यता है ।

प्रश्न—भवितव्यता का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर—भवितु योग्य भवितव्यम्, तस्य भावः भवितव्यता ।” अर्थात् जो होने योग्य हो उसे भवितव्य कहते हैं और उसका भाव भवितव्यता कहलाती है ।

प्रश्न—भवितव्यता के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उत्तर—योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लियाकत, ताकत यह सब भवितव्यता के पर्यायवाची शब्द हैं ?

(जैनतत्त्वमीमासा पृष्ठ ६५-६६)

(ऊ) यदि इनकी सिद्धि हो तो कषाय का उपशमन होने से दुःख दूर हो जावे, सुखी हो, परन्तु उनकी सिद्धि इसके किये उपायो के आधीन नहीं है । भवितव्य के आधीन है, क्योंकि अनेक उपाय करते देखते हैं, परन्तु सिद्धि नहीं होती, तथा उपाय होना भी अपने आधीन नहीं हैं, भवितव्य के आधीन है, क्योंकि अनेक उपाय करने का विचार करता है और एक भी उपाय नहीं होता है, तथा काकतालीय न्याय से भवितव्य ऐसा ही हो जैसा अपना प्रयोजन हो, वैसा ही उपाय हो, और उससे कार्य की सिद्धि भी हो जावे । तो उस कार्य सम्बन्धी किसी कषाय का उपशम हो ।”

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५६)

(ए) इस प्रकार कार्य की उत्पत्ति के पूरे कारणों पर दृष्टिपात करने से भी यही फलित होता है कि जहाँ पर कार्य की उत्पत्ति अनुकूल द्रव्य का स्ववीर्य तथा उपादान शक्ति होती है वहाँ अन्य साधन सामग्री स्वयमेव मिल जाती है उसे मिलाना नहीं पड़ता है। जैन दर्शन में कार्य को उत्पत्ति के प्रति उपादान और निमित्त होता है उसका ज्ञान कराया गया है।
(जैनतत्त्वमोमासा पृष्ठ ६७)

(ऐ) वास्तव में भवितव्यता उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण है। जो भी कार्य होना है उस समय पर्याय की योग्यता ही साक्षात् साधक है दूसरा कोई नहीं। प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में उसकी उस समय पर्याय की योग्यता ही है, ऐसा जानकर स्वभाव की दृष्टि करे तो जीव का कल्याण हो। जो कोई मात्र भवितव्यता की बातें करे अपनी और दृष्टि ना करे। तो उसने भवितव्यता को माना ही नहीं, एक कार्य में अनेक कारण होते हैं। कार्य हमेशा उस समय पर्याय की योग्यता में होता है और निमित्त भी स्वयं उस समय पर्याय की योग्यता में होता ही है लाना-मिलाना नहीं पड़ता।

प्रश्न—भवितव्यता को किसने माना ?

उत्तर—जिसने अपने स्वभाव की सन्मुखता की उसने भवितव्यता को माना, दूसरों ने नहीं माना।

१०. जीव स्वयं नित्य ही हैं

(अ) आयुकर्म के उदय से मनुष्यादि पर्यायों की स्थिति रहती है। आयु का क्षय हो तब उस पर्यायरूप प्राण छूटने से मरण होता है। दूसरा कोई उत्पन्न करने वाला, क्षय करने वाला या रक्षा करने वाला है नहीं, ऐसा निश्चय करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४२]

(आ) शरीर सम्बन्ध की अपेक्षा जन्मादिक है। जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। तथापि मोही जीव को अतीत-अनागत का विचार

नहीं है इसलिए अज्ञानी प्राप्त पर्याय मात्र ही अपनी स्थिति मानकर पर्याय सम्बन्धी कार्यों में ही तत्पर हो रहा है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४३]

(इ) इस लोक में जो जीवादि पदार्थ हैं वे न्यारे-न्यारे अनादि-निघन हैं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ११०]

(ई) अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों सहित, अनादिनिघन, वस्तु आप है ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३८)

११. संसारी जीवों का सुख के लिये झूठा उपाय

(अ) पर युक्त बाधा सहित, खण्डित, बंध कारण विषम छै ।

जे इन्द्रियोथी लब्ध ते, सुख ये रीते दुःख ज खरे ॥७६॥

जो इन्द्रियों से प्राप्त किया सुख है, वह पराधीन है, बाधा सहित है, विनाशक है, बन्ध का कारण है, विषम है, मो ऐसा सुख इस प्रकार दुःख ही है ।

(प्रवचनसार गा० ७६)

(आ) नहि मानतो-ये रीते, पुण्ये पाप माँ न विशेष छै ।

ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार ससारे भमे ॥७७॥

इस प्रकार पुण्य और पाप में फर्क नहीं है ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित होता हुआ, घोर अपार ससार में परिभ्रमण करता है (क्योंकि पुण्य पाप दोनों आत्मा का धर्म नहीं और शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार करने वाले हैं ।)

(प्रवचनसार गा० ७७)

(इ) सूणी घाति कर्म विहीननु, सुख सौ सुख उत्कृष्ट छै ।

श्रद्धे न तेह अभव्य छे, ने भव्य ते सम्मत करे ॥६२॥

टीका में—इस लोक में मोहनीय आदि कर्मजाल वालों को स्वभाव प्रतिघात के कारण और आकुलता के कारण 'सुखाभास' होने पर भी 'सुख' कहने की अज्ञानियों की अपरमार्थिक रूढ़ि है ।

(प्रवचनसार गा० ६२)

(ई) मिथ्यादृष्टि ससारी जीव द्वारा किये गये उपाय झूठे जानना ।
तो सच्चा उपाय क्या है ?

(१) जब इच्छा दूर हो जावे और (२) सर्व विषयो का युगपत् ग्रहण बना रहे तब यह दुःख मिटे । सो इच्छा तो मोह जाने पर मिटे और सब का युगपत् ग्रहण केवलज्ञान होने पर हो । इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है और वही सच्चा उपाय जानना ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५०)

(उ) सजी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्व निश्चय करने का उपाय विचारे, वहाँ अभाग्य से कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का निमित्त बने तो अतत्त्व श्रद्धान पुष्ट हो जाता है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ऊ) कदाचित् सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र का भी निमित्त बन जाये तो वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नहीं करता, व्यवहार श्रद्धान से अतत्त्व श्रद्धानी ही बना रहता है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ए) अज्ञानी जीव पर पदार्थों को अपनी इच्छानुसार परिणमाना चाहता है वह बन नहीं सकता, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है किसी के परिणमाये से परिणमती नहीं ।

(ऐ) मिथ्यादृष्टि होकर पदार्थों को अन्यथा माने, अन्यथा परिणमित कराना चाहे तो आप ही दुःखी होता है । उन्हें यथार्थ मानना और यह परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नहीं होंगे ऐसा मानना, सो ही दुःख दूर होने का उपाय है । भ्रमजनित दुःख का उपाय भ्रम दूर करना ही है सो भ्रम दूर होने पर सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२)

(ओ) आशाखी गड्ढा प्रत्येक अज्ञानी प्राणी में पाया जाता है । विषयो से इच्छापूर्ण होती नहीं । इसका अभिप्राय तो सर्व कषायों का सर्व प्रयोजन सिद्ध करने का है, वह हो तो वह सुखी हो, परन्तु वह कदापि नहीं हो सकता है इसलिए अभिप्राय में सर्वदा दुःखी ही रहता

है। इसलिए कषायों के प्रयोजन को साधवत् दुःख दूर करके सुखी होना चाहता है, सो यह उपाय झूठा ही है। तों सच्चा उपाय क्या है ? सम्यग्दर्शन ज्ञान से यथावत् श्रद्धान और जानना हो तब इष्ट-अनिष्ट बुद्धि मिटे। तब कषाय जन्य पीडा दूर हो, निराकुल होने से महासुखी हो। इसलिए सम्यग्दर्शनादिक ही यह दुःख मेटने का सच्चा उपाय है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५७)

(औ) व्यवहार धर्म कार्यों में प्रवर्तें तब अवसर तो चला जावेगा और ससार में ही भ्रमण करेगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१३)

(अ) कितने ही धर्म बुद्धि से धर्म साधते हैं, परन्तु निश्चय धर्म को नहीं जानते इसलिए अभूतार्थ धर्म को ही साधते हैं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२१)

१२. बाह्य सामग्री से सुख-दुःख मानना यह भ्रम है

(अ) बाह्य सामग्री से सुख-दुःख मानते हैं सो ही भ्रम है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५६)

(आ) आकुलता घटना-बढ़ना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नहीं। कषाय भावों के घटने-बढ़ने के अनुसार है। × ×

(इ) आकुलता का घटना-बढ़ना रागादिक कषाय घटने-बढ़ने के अनुसार है तथा पर द्रव्य रूप सामग्री के अनुसार सुख-दुःख नहीं है।

(ई) × बाह्य सामग्री से किंचित् सुख-दुःख नहीं है ×

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६)

(उ) सुखी-दुःखी होना इच्छा के अनुसार जानना, बाह्य कारण के आधीन नहीं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७१)

(ऊ) पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से क्रोधादिक होते हैं, जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक उत्पन्न नहीं होते, तब सच्चा धर्म होता है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६)

(ए) सामग्री के अनुसार (आधीन) सुख-दुःख नहीं है साता-असाता का उदय होने पर मोह के परिणमन के निमित्त से ही सुख-दुःख मानते हैं ।

(ऐ) निर्धार करने पर मोह ही से सुख-दुःख मानना होता है; औरो के द्वारा सुख-दुःख होने का नियम नहीं ।

(ओ) तू सामग्री को दूर करने का या होने का उपाय करके दुःख मिटाना चाहता है और सुखी होना चाहता है सो यह उपाय झूठा है । तो सच्चा उपाय क्या ? सम्यग्दर्शनादि ने भ्रम दूर हो तब सामग्री से सुख-दुःख भासित नहीं होता, अपने परिणामों से ही भासित होता है ।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०]

(औ) जो अपने को सुखदायक हो, उपकारी हो उसे इष्ट कहते हैं तथा जो अपने को दुःखदायक हो, अनुपकारी हो उसे अनिष्ट कहते हैं । लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं कोई किसी को सुख-दुःखदायक उपकारी-अनुपकारी है नहीं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८६]

(अ) कपायभाव होते हैं सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं सो इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या बुद्धि है क्योंकि कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नहीं ।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८६]

(अ) पर द्रव्यों का दोष देखना मिथ्या भाव है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४३]

(क) प्रथम तो पर द्रव्यों को इष्ट-अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, क्योंकि कोई द्रव्य किसी का मित्र-शत्रु है नहीं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १७५]

(ख) पर द्रव्यों को इष्ट-अनिष्ट मानकर रागद्वेष करना मिथ्यात्व है क्योंकि ससार का कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट होता तो मिथ्यात्व नाम नहीं पाता । परन्तु कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है और यह इष्ट-

अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है इसलिए इस परिणमन को मिथ्यात्व कहा है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०]

(ग) इसलिए मुख-दुःख का मूल बलवान कारण (निमित्त) मोह का उदय है। अन्य वस्तुये है वह बलवान (निमित्त) कारण नहीं है (निमित्त की अपेक्षा कथन है)। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४२)

१३. पुद्गलादि पर पदार्थों का कर्ता-हर्ता आत्मा नहीं

(अ) जा कर्म के उपशमादिक हैं यह पुद्गल की शक्ति है उसका आत्मा कर्ता-हर्ता नहीं है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३११)

(आ) तत्त्व निर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है, परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है अपना दोष कर्म-दिक को लगाता है, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१२)

(इ) इसका तो कर्तव्य तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है, इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१४)

(ई) यहाँ कर्म के उपशमादिक से उपशमादि सम्यक्त्व कहे, सो कर्म के उपशमादिक इसके करने से नहीं होते।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३४०)

(उ) जैसे—कोई अपने हाथ से पत्थर लेकर अपना सिर फोड़ ले तो पत्थर का क्या दोष ? उसी प्रकार जीव अपने रागादिक भावों से पुद्गल को कर्मरूप परिणमित करके अपना बुरा करे, तो कर्म का क्या दोष ? (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०)

(ऊ) आप कर्मों के उपशमादि करना चाहे तो कैसे हो ? आप तो तत्त्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करे, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७)

(ए) तत्त्व विचारादिक का तो उद्यम करे और मोहकर्म के उप-
शमादिक स्वयमेव हो तब रागादिक दूर होते हैं ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६७)

(ऐ) पर द्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा पर द्रव्य
का कर्ता-हर्ता हो जाए, परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है
नहीं ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५२)

(ओ) बाह्य व्रतादिक हैं वे तो शरीरादि पर द्रव्य के आश्रित हैं,
पर द्रव्य का आप कर्ता है नहीं । इसलिए उसमें कर्तापने की बुद्धि भी
नहीं करना और वहां ममत्व भी करना ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५)

(औ) पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता होना तथा साक्षीभूत रहना यह
परस्पर विरुद्ध है । साक्षीभूत तो उसका नाम है- जो स्वयमेव जैसा हो
उसी प्रकार देखता जानता रहे, परन्तु जो इष्ट-अनिष्ट मानकर किसी
को उत्पन्न करे और नाश करे तो साक्षीभूत कैसे कहा जा सकता है ।
कभी नहीं ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १०६)

(अ) कर्म के उदय से जीव को विकार होता है । यह मान्यता
भ्रम मूलक है 'हे मित्र ! × × × पर द्रव्य ने मेरा द्रव्य मलिन किया
जीव स्वयं ऐसा झूठा भ्रम करता है । × × × उनका दोष जानता
है, यह तेरा हरामजादीपना है ।'

(आत्मावलोकन पृष्ठ १४३)

(अ) समयसारकलश ५१, ५२, ५३, ५४, ५६, १६६, २००, २०१
में स्पष्ट समझाया है कि जीव शरीरादि पर द्रव्य की क्रिया नहीं कर
सकता है । और निमित्त से सचमुच कार्य होता है, ऐसा मानना भ्रम
है ।

(क) मैं पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता हूँ ऐसी मान्यता वाला पद पद पर
धोखा खाता है ।

(प्रवचनसार गा० ५५)

(ख) पर द्रव्य का मैं करता हूँ यह अज्ञान मोह अज्ञान अन्वकार
है उसका सुलटना अत्यन्त दुर्निवार है ।

(समयसारकलश ५५)

(ग) मैं पर द्रव्य का कर सकता हूँ यह सम्यक्त्व से रहित पुरुषो का व्यवहार है । (समयसार गा० ३२४ से ३२७ की टीका)

(घ) जो व्यवहार के कथन को निश्चय का कथन मानता है उसके लिए “तस्य देशना नास्ति” कहा है । (पुरुषार्थसिद्धिउपाय गा० ६)

(ङ) व्यवहार से लोग आत्मा को घडा, वस्त्र, इन्द्रियो, द्रव्यकर्म और शरीरादि नोकर्म का करता है ऐसा मानना व्यवहारी जीवो का व्यामोह (भ्रान्ति अज्ञान) है । (समयसार गा० ६८)

१४. इच्छा का प्रकार और दु ख

(अ) दु ख का लक्षण आकुलता है और आकुलता इच्छा होने पर होती है । अज्ञानी जीवो को अनेक प्रकार की इच्छा पायी जाती है—

(आ) विषय ग्रहण की इच्छा—इन्द्रियो के विषय पुद्गल पदार्थो को जानने-देखने की इच्छा होती है अर्थात् भिन्न-भिन्न रंग रूप देखने की, राग सुनने की इस इच्छा का नाम विषय है ।

(इ) एक इच्छा कषाय भावो के अनुसार कार्य करने की है—जैसे किसी का बुरा करने की, उसे नीचा दिखाने की इच्छा होती है, जब तक यह कार्य ना हो तब तक महाव्याकुल रहता है, इस इच्छा का नाम कषाय है ।

(ई) एक इच्छा पाप के उदय से शरीर मे या बाह्य अनिष्ट कारण मिलते हैं, उनको दूर करने की होती है । जब तब वह दूर न हो तब तक महाव्याकुल रहता है, इस इच्छा का नाम पाप का उदय है ।

इस प्रकार इन तीन प्रकार की इच्छा होने पर सभी मिथ्यादृष्टि दु ख मानते हैं सो दु ख ही है । इन तीन प्रकार की इच्छाओ मे एक-एक प्रकार की इच्छा के अनेक प्रकार हैं ।

(उ) कितने ही प्रकार की इच्छा पूर्ण होने के कारण पुण्योदय से मिलते हैं, परन्तु उनका साधन एक साथ नहीं हो सकता है । इसलिए

एक को छोड़कर अन्य में लगता है, फिर भी उसे छोड़कर अन्य में लगता है, जैसे किसी को अनेक प्रकार की सामग्री मिली, वहाँ वह किसी को देखता है, उसे छोड़कर राग सुनता है, फिर उसे छोड़कर किसी का बुरा करने लग जाता है, उसे छोड़कर भोजन करता है अथवा देखने में ही एक को देखकर अन्य को देखता है। इसी प्रकार अनेक कार्यों की प्रवृत्ति में इच्छा होती है इस इच्छा का नाम पुण्य का उदय है इसे जगत सुख मानता है, परन्तु यह सुख है नहीं, दुख ही है।

(ऊ) देवादिको को भी सुखी मानते हैं वह भ्रम ही है। उनके चाँथी इच्छा की मुख्यता है इसलिए आकुलित है।

इस प्रकार जो इच्छा होती है वह मिथ्यात्व-अज्ञान-असयम से होती है।

(ए) जब मिथ्यात्व, अज्ञान, असयम का अभाव हो और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की प्राप्ति हो तो इच्छा दूर हो इसलिए इस कार्य का उद्यम करना योग्य है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६६ से ७१]

(ऐ) आत्मा का भला सुख पाने में है और सुख उसे कहते हैं जिसमें आकुलता, चिन्ता, क्लेश ना हो। आकुलता मोक्ष में नहीं है, इसलिए मोक्ष में लगना चाहिए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य इन तीनों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है उसका कथन दो प्रकार से है। जो यथार्थ निश्चय स्वरूप है वह निश्चय है और निश्चय का निमित्त कारण है वह व्यवहार है। [छहढाला तीसरी ढाल का पहला काव्य]

१५ परम कल्याण

(अ) मिथ्यादृष्टि जीव एक-एक समय करके अनादि से मिथ्या-दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप परिणमित हो रहा है। इसी परिणमन से ससार में अनेक प्रकार का दुःख उत्पन्न करने वाले कर्मों का सम्बन्ध

पाया जाता है। यही भाव दुःखो के बीज हैं अन्य कोई नहीं। इसलिए हे भव्य ! यदि दुःखो से मुक्त होना चाहता है तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभाव भावो का अभाव करना ही कार्य है; इस कार्य के करने से तेरा परम कल्याण होगा। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६४]

(आ) इस जीव का मुख्य कर्तव्य आगम ज्ञान है उसके होने से तत्वो का श्रद्धान होता है, तत्वो का श्रद्धान होने से सयम भाव होता है और उस आगम से आत्मज्ञान की भी प्राप्ति होती है तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म के अनेक अंग हैं उनमें ध्यान बिना उससे ऊँचा और धर्म का अंग नहीं है इसलिए जिस-तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है इसके अभ्यास में प्रवर्तों, तुम्हारा कल्याण होगा। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २०]

(इ) हे भव्य ! तू यह मान कि 'मेरे अनादि से एक-एक समय करके ससार रोग पाया जाता है उसके नाश का उपाय (अपने त्रिकाली के आश्रय से) मुझे करना' इस विचार से तेरा कल्याण होगा।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४४)

(ई) हे भव्य ! तू ससार से छूटकर सिद्धपद प्राप्त करने का हम जो उपाय कहते हैं वह कर, बिलम्ब मत कर। यह उपाय करने से तेरा कल्याण होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७५)

(उ) अन्य सब मत मिथ्यादर्शनादिक के पोषक हैं तो त्याज्य हैं। सच्चे जिनधर्म का स्वरूप जानकर उसमें प्रवर्तन करने से तुम्हारा कल्याण होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक १६७)

(ऊ) इसलिए बहुत कहने से क्या ? सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है वर्तमान में (दिगम्बर धर्म में भी) इनकी प्रवृत्ति विशेष पाई जाती है। इसलिए उसे जानकर मिथ्यात्व भाव को छोड़कर अपना कल्याण करो।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६२)

(ए) सर्व प्रकार के मिथ्यात्व भाव को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना

योग्य है। ससार का मूल मिथ्यात्व है मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नहीं है। मिथ्यात्व का अभाव होने पर शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त करता है। इसलिए जिस तिस प्रकार से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६७)

(ऐ) मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम ज्ञान कहा है, आगम ज्ञान बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हें भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा परम कल्याण होगा। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३०५)

(ओ) हे भव्य ! इतना ही सत्य कल्याण (आत्मा) है जितना यह ज्ञान है ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र से ही, सदा ही रति प्राप्त कर इससे तुझे वचन अगोचर ऐसा मुख प्राप्त होगा और उस सुख को उसी क्षण तू ही स्वयमेव देखेगा। दूसरो से पूछना नहीं पड़ेगा। (समयसार गा० २०६)

१६. प्रत्येक जीव आत्मा भिन्न-भिन्न हैं

(अ) प्रत्येक जीव आत्मा को भिन्न भिन्न मानता है सो यह तो सत्य है। परन्तु मुक्त होने के पश्चात् भी भिन्न ही मानना योग्य है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १२८)

(आ) इस लोक में जो जीवादि पदार्थ हैं वे न्यारे-न्यारे अनादि-निधन हैं, तथा उनकी अवस्था का परिवर्तन होता रहता है, उस अपेक्षा से उत्पन्न-विनष्ट कहे जाते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ११०)

(इ) एक जीव द्रव्य, उसके अनन्त गुण, अनन्त पर्याये एक-एक गुण के असख्यात् प्रदेश, एक-एक प्रदेश में अनन्त कर्मवर्गणाये, एक-एक कर्म वर्गणा में अनन्त-अनन्त पुद्गल परमाणु, एक-एक पुद्गल परमाणु अनन्त-गुण अनन्त-पर्याय सहित विराजमान हैं। यह एक ससार अवस्थित जीव पिण्ड की अवस्था। इसी प्रकार अनन्त जीव द्रव्य ससार अवस्था में सपिण्ड रूप जानना (और मोक्ष में प्रत्येक जीव

जुदा-जुदा अनन्त गुण और पर्याय सहित अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में विराजमान है) ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक परमार्थ वचनिका पृष्ठ १०)

१७ जीव का सदैव कर्तव्य

(अ) जीवाजीवादीना तत्त्वार्थाना सदैव कर्तव्यम् ।

श्रद्धान विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूप तत् ॥२२॥

जीव अजीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश रहित अर्थात् अन्य को रूप समझने अन्यरूप जो मिथ्याज्ञान है उससे रहित श्रद्धान निरन्तर ही करना कर्तव्य है, क्योंकि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है । (पुरुषार्थसिद्धयुपाय गाथा २२)

(आ) विपरीताभिनिवेश से रहित जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है । यह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है । दर्शनमाह उपाधि दूर होने पर प्रगट होता है, इसलिए आत्मा का स्वभाव है । चतुर्थादि गुण स्थान में प्रगट होता है पश्चात् सिद्ध अवस्था में भी सदाकाल इसका सद्भाव रहता है ऐसा जानना ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२० से ३२१)

१८. सर्व उपदेश का तात्पर्य

(अ) ससार अवस्था में पण्य के उदय से इन्द्र अहमिन्द्रादि पद प्राप्त करे, तो भी निराकुलता नहीं होती, दुःखी ही रहता है, इसलिए ससार अवस्था हितकारी नहीं है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१०)

(आ) मोक्ष अवस्था में किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं रही, इसलिए आकुलता मिटाने का उपाय करने का भी प्रयोजन नहीं है । सदाकाल शान्तरस से सुखी रहते हैं, इसलिए मोक्ष अवस्था ही हितकारी है । पहले भी ससार अवस्था के दुःख का और मोक्ष अवस्था के सुख का विशेष वर्णन किया है, वह इसी प्रयोजन के अर्थ किया है ।

उसे भी विचारकर मोक्ष का हितरूप मानकर मोक्ष का उपाय करना सर्व उपदेश का तात्पर्य इतना है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१०)

(इ) यह अवसर चूकना योग्य नहीं है । अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है । इसलिये श्री गुरु-दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना । (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१५)

(ई) तत्त्वार्थ श्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उनका निश्चय करना मात्र ही नहीं है, यहाँ अभिप्राय ऐसा है कि जीव-अजीव को पहिचानकर अपने को तथा पर को जैसा का तैसा माने, तथा आस्रव को पहिचान कर उसे हेय माने, तथा बन्ध को पहिचानकर उसे अहित का कारण माने, सवर को पहिचान कर उसे उपादेय माने, तथा निर्जरा को पहिचान कर उसे हित का कारण माने तथा मोक्ष को पहिचानकर उसको अपना परम हित माने । ऐसा तत्त्वार्थ श्रद्धान का अभिप्राय है । (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२०)

(उ) आश्रय करने के लिये एक मात्र अपना त्रिकाली एक परम शुद्ध पारिणामिक भाव ही है यह परम उपादेय है । सवर-निर्जरा एक देश प्रगट करने के लिए उपादेय है मोक्ष पूर्ण प्रगट करने के लिए उपादेय है; हित का कारण है परमहित है परन्तु आश्रय करने के लिए नहीं है । आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप हेय है और अजीव ज्ञेय हैं ।

(नियमसार गा० ३८ से ५० तक)

(ऊ) अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति, जिनागमस्य संक्षेप ॥ ४४ ॥

अर्थ—वास्तव में राग आदि भावों का प्रगट न होना यह अहिंसा है और उन्हीं रागादि भावों की उत्पत्ति होना हिंसा है । यही जैन सिद्धान्त का संक्षिप्त रहस्य है । [पुरुषार्थसिद्धयुपाय गा० ४४]

(ए) जीव जुदा हैं, पुद्गल जुदा हैं यही तत्त्व का सार है अन्य जो कुछ कथन है सब इसी का विस्तार है । [इष्टोपदेश गा० ५०]

(ऐ) लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ ।

तोरि सकल जग दन्द-फन्द, नित आत्म ध्यावो ॥

[छहढाला चौथी ढाल]

(ओ) निश्चय धर्म तो मात्र वीतरागभाव है यह ही धर्म है यह जिनागम का सार है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(औ) मिथ्यात्व ही ससार है सम्यक्त्व ही मोक्ष है ।

[सर्व शास्त्रों का रहस्य]

१६. सम्यग्दर्शन

(अ) विपरीताभिनिवेशरहित जीवादिक तत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है । जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जेरा, मोक्ष यह सात तत्त्वार्थ है । इनका जो श्रद्धान ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है, ऐसा प्रतीतिभाव सो तत्त्वार्थश्रद्धान तथा विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय उससे रहित सो सम्यग्दर्शन है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

(आ) जो तत्त्वार्थ श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है वही सम्यग्दर्शन है ।

(ई) विपरीताभिनिवेश से रहित जीव अजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करने योग्य है यह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२०]

(इ) सम्यग्दर्शनरूप श्रद्धान का बल इतना है कि केवली सिद्ध भगवान रागादिरूप परिणमित नहीं होते, ससार अवस्था को नहीं चाहते ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२४]

(उ) सच्चा तत्त्वार्थ श्रद्धान, व आपा पर का श्रद्धान व आत्म-श्रद्धान व देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान यह सम्यक्त्व का लक्षण है इन सर्व लक्षणों में परस्पर एकता भी है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२६]

(ऊ) श्री अरहन्त देव के जो गुण कहे हैं उनमें कितने तो विशेषण

पुद्गलाश्रित हैं और कितने ही जीवाश्रित है। जीव के यथावत् विशेषण जाने तो मिथ्यादृष्टि न रहे। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२१]

(ए) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य की एकतारूप मोक्षमार्ग वह ही मुनियो का सच्चा लक्षण है। उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टि रहे नहीं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२३]

(ऐ) वीतरागी शास्त्रो मे अनेकान्तरूप सच्चे जीवादि तत्वो का निरूपण है और सच्चा रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग दिखलाया है उसीसे जैन शास्त्रो की उत्कृष्टता है। उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टि-पना रहता नहीं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२४]

(ओ) सर्व प्रकार प्रसिद्ध जानकर विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थो का श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व का लक्षण है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३३२]

(औ) जो वास्तव मे अरहन्त देव को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह वास्तव मे आत्मा को जानता है। उसी समय त्रिकाली आत्मा को समझ लेने वाला जीव चिद्विवर्तो (पर्याय) को ही चेतन (द्रव्य) मे ही अन्तर्गत करके, चैतन्य (गुण) को चेतन (द्रव्य) मे ही अन्तर्हित करके केवल आत्मा को जानता है। उसको कर्ता, कर्म, क्रिया का विभाग क्षय को प्राप्त हो जाने से निष्क्रय (रागरहित) चिन्मात्र भाव (निर्विकल्प दशा) को प्राप्त हो जाता है यह सम्यग्दर्शन है। यह निर्विकल्प तथा निष्क्रिय दशा है।

[प्रवचनसार गा० ८०]

(अ) ज्ञेय अधिकार मे सम्यक्त्व की व्याख्या करी है—

तम्हा तस्स णमाई किच्चा णिच्चपि तं मणो होज्ज।

वोच्छामि संग हादो परमट्ठ विणिच्छयाधिगमं ॥१॥

अर्थ—क्योकि सम्यग्दर्शन के बिना साधु होता ही नहीं है। इस कारण से उस सम्यक्त्व सहित सम्यक्चारित्र्य से युक्त साधु को नमस्कार करके नित्य ही उन साधुओ को मन मे धारण करके

परमार्थ एक शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावरूप परमात्मा है। उसको विशेष करके सशय आदि से रहित निश्चय कराने वाले सम्यक्त्व को अथवा अनेक धर्मरूप पदार्थों के ससूह का अधिगम जिसमें होता है उसको सक्षेप में कहेंगे। (वहाँ जिन परमात्मा को परमार्थ शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव रूप है उसकी श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य ज्ञेय अधिकार के शुरु में]

(अ) “दर्शनमात्मविनिश्चिति” अर्थात् अपनी आत्मा का श्रद्धान् सम्यग्दर्शन कहा है और विनिश्चित का अर्थ अपनी आत्मा किया है।

[पुरुषार्थसिद्धि उपाय गा० २१६]^१

(क) आ जाणी, शुद्धात्मा वनी ध्यावे परम निज आत्मने।

साकार अण-आकार हो, ते मोहग्रंथी क्षय करे ॥१६४॥

टीका—इस यथोक्त (गा० १६२-१६३) विधि द्वारा शुद्ध आत्मा को जो ध्रुव जानता है। उसको उसमें ही लीनता द्वारा शान्ति-आनन्द रूप शुद्धात्म तत्त्व प्राप्त होता है। इसलिए अनन्त शक्ति वाला चैतन्यमात्र परम आत्मा में एकाग्रसचेतन लक्षण ध्यान होता है। उससे साकार उपयोग वाला व अनाकार उपयोग वाले को अविशेष रूप से एकाग्र सचेतन की प्रसिद्धि होने से अनादि ससार से बँधी हुई अतिदृढ़ मोह दुर्ग्रंथी छूट जाती है। इस प्रकार दर्शनमोहरूपी गाँठ का भेदना-तोड़ना वह शुद्धात्मा की उपलब्धि का फल है।

[प्रवचनसार गा० १६४ को टीका सहित]

(ख) सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, (i) आनन्दरूपी अमृत का नित्य भोजन करने वाला है, (ii) अपनी जाननेरूप क्रिया सहज अवस्था को प्रगट करने वाला, (iii) धीर है, (iv) उदार (अर्थात् महान विस्तार वाला, निश्चित है) है। (v) अनाकूल है (अर्थात् जिसमें किंचित् भी आकुलता का कारण नहीं है)। (vi) उपाधि रहित (अर्थात् परिग्रह या जिसमें कोई पर द्रव्य सम्बन्धी ग्रहण-त्याग नहीं है) है। सम्य-

दर्शन होते ही अमृतरूप आनन्द प्रगट होता है वह जीव उसे हर समय भोगता है । [समयसार कलत्र १६३]

(ग) जब आत्मा ज्ञानी होता है तब ज्ञान के कारण ज्ञान के प्रारम्भ से (चीथे गुण स्थान से) लेकर पृथक्-पृथक् स्वाद का अनुभव होने से (पुद्गल कर्म और अपने स्वाद का एक रूप नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न रूप अनुभव होने से) जिसकी भेद सवेदन शक्ति प्रगट हो गई है ऐसा होता है इसलिए वह जानना है कि "अनादिनिघन, निरन्तर स्वाद में आने वाला, समस्त अन्य रसों से (शुभाशुभ भावों से) विलक्षण (भिन्न), अत्यन्त मधुर चैतन्य रस ही एक जिसका (अनाकुलता) रस है ऐसा आत्मा है और कपाये (शुभाशुभभाव) उससे (आत्मा में) भिन्न रस वाली है, उनके साथ (शुभाशुभ और आत्मा में) जो एकत्व का विकल्प करना है वह अज्ञान से है ।"

इस प्रकार पर को (शुभाशुभभाव) और अपने को भिन्नरूप जानता है, इसलिए अकृत्रिम (नित्य) एक ज्ञान ही मैं हूँ, किन्तु कृत्रिम (अनित्य) अनेक जो क्रोधादिक है यह मैं नहीं हूँ, ऐसा जानता हुआ 'मैं क्रोध हूँ इत्यादि आत्म विकल्प भी किंचित मात्र भी नहीं करता' इसलिए समस्त (द्रव्य कर्म, नोकर्म, भाव कर्म के) कर्तृत्व को छोड़ देता है, अतः सदा ही उदासीन (निर्विकल्प) अवस्था वाला होता हुआ मात्र जानता ही रहता है, और इसलिए निर्विकल्प, अकृत्रिम, एक विज्ञाघन होता हुआ अत्यन्त अकर्ता प्रतिभासित होता है ।

[समयसार गा० ६७ की टीका पृष्ठ १७२]

(घ) जब यही आत्मा जिज्ञासा द्वारा मार्ग को प्राप्त करके उपशान्त क्षीण मोहपने के कारण (दर्शन मोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम के कारण) जिसे विपरीत अभिनिवेश नष्ट हो जाने से सम्यग्ज्ञान-ज्योतिः प्रगट हुई है ऐसा होता हुआ कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके सम्यक् रूप से प्रगट प्रभुत्व शक्तिवान होता हुआ ज्ञान का ही अनुसरण करने वाले मार्ग में विचरता है (प्रवर्तता है,

परिणमित होता है, आचरण करता है) तब वह विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि रूप अपवर्ग नगर को (मोक्षपुर को) प्राप्त करता है।

[पचास्तिकाय गा० ७० की टीका से]

[यहाँ उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जीव जिनाज्ञा द्वारा मार्ग को प्राप्त हुआ अर्थात् चौथे गुणस्थान से मार्ग प्राप्त होता हुआ जैसे-जैसे अपने स्वभाव को एकाग्रता करता जाता है वैसे-वैसे श्रावक, मुनि, श्रेणी, सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेता है क्योंकि उसको सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट हो गई है।]

(च) ऐसे दर्शन मोह के अभावतः सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थज्ञान प्रगट होय है। अरु अनन्तानुबन्धी के अभावतः स्वरूपाचरण चरित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है। यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण के उदयतः देश-चारित्र नार्हि भया है अरु प्रत्याख्यानावरण का उदयतः सकल चारित्र नाही प्रगट भया है। तो हूँ सम्यग्दृष्टि के देहादिक पर द्रव्य तथा राग-द्वेषादिक कर्म जनित परभाव इनमें दृढ भेद विज्ञान ऐसा भया है जो अपना ज्ञानदर्शनरूप ज्ञानस्वभाव ही में आत्म-बुद्धि धारणतः अरु पर्याय में आत्मबुद्धि स्वप्न में हूँ नार्हि होने से ऐसा चिन्तवन करै हैं, हे आत्मन ! अष्ट प्रकार स्पर्श..... ये समस्त कर्म का उदय जनित विकार है मेरा स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा है।

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ की टीका पृष्ठ ६८-६९]

(छ) स्वसम्वेदन ज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे, पाँचवें गुणस्थान वाले गृहस्थ के भी होता है। वहाँ पर सराग देखने में आता है इसलिए रागसहित अवस्था के निषेध के लिए वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञान ४-५ वें गुणस्थानी को प्रगट हुआ है।

[परमात्मा प्रकाशक गा० १२ की टीका पृष्ठ २१]

(ज) मिथ्यात्व तथा राग आदि को जीतने के कारण असयत सम्यग्दृष्टि आदि एकदेशी जिन है।

[बृहत् द्रव्यसंग्रह गाथा १, टीका पृष्ठ ५]

(भ) स्वाभाविक अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुण का आधारभूत निज परमात्मद्रव्य उपादेय है तथा इन्द्रिय सुख आदि (द्रव्य कर्म, नोकर्म, भावकर्म) परद्रव्य त्याज्य है इस तरह सर्वज्ञदेव प्रणीत निश्चय व्यवहारनय को साध्य-साधक भाव से जानता है। यह अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती का लक्षण है।

[वृहत् द्रव्यसंग्रह गा० १३ की टीका पृष्ठ ४०]

(ज) 'जीवादि सददहण सम्मत्त' वीतराग सर्वज्ञ देव द्वारा कहे हुए शुद्ध जीव आदि तत्वों में चल, मलिन, अगाढ़ दोष रहित श्रद्धान, रवि अथवा 'जो जिनेन्द्र ने कहा वही है जिस प्रकार से जिनेन्द्र ने कहा है उसी प्रकार है।' ऐसी निश्चयरूप बुद्धि (निर्णयरूप ज्ञान) सम्यग्दर्शन आत्मा का परिणाम है। [वृहत् द्रव्यसंग्रह गा० ४१ टीका पृष्ठ १८८]

(ट) मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशमादि होने पर, (२) अथवा अध्यात्म भाषा के अनुसार निजशुद्ध आत्मा के सम्मुख परिणाम होने पर शुद्ध आत्मभावना से उत्पन्न यथार्थ सुखरूपी अमृत को उपादेय करके, ससार शरीर और भोगों में जो हेय बुद्धि है, वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध है वह चतुर्थ गुणस्थान वाला व्रतरहित दार्शनिक है।

[वृहत् द्रव्यसंग्रह गाथा ४५ टीका पृष्ठ २२०]

(ठ) व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है ऐसा ऋषि-श्वरो ने बताया है जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

[समयसार गाथा ११]

२०. जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उसका कारण

(अ) जीव का द्रव्यकर्म नोकर्म से तो किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। परन्तु अनादि से अज्ञानी जीव एक-एक समय करके कर्मकृत शुभाशुभ भावों की, जो अपने साथ एकमेक नहीं है, पृथक् है;

परन्तु उनके साथ एकत्व करता है, इसलिए सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती ।

(आ) एवमयं कर्मकृतैर्भावैर समाहितोऽपि युक्त एव ।

प्रतिभाति बालिशानां, प्रतिभासः स खलु भवबीजं ॥१४॥

अन्वयः—एव अयं कर्मकृतैः असमाहित अपि बालिशानां युक्तः इव प्रतिभाति । स प्रतिभासः खलु भव बीज (अस्ति) ।

अर्थ—इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत भावों से (कर्म का उदय है निमित्त जिनमें ऐसे दया, दान पूजा यात्रा आदि विभाव भावों से) सयुक्त न होने पर भी (स्वभाव और विभाव का तादात्म्य न होने पर भी, एक द्रव्य न बन जाने पर भी, पारिणामिक और विभाव भाव एक न होने पर भी) सयुक्त सरीखा (एक द्रव्य सरीखा) प्रतिभासित होना ही निश्चय करके ससार का बीज है । अर्थात् ध्रुव स्वभाव और क्षणिक विभाव की इस एकता की मान्यता को ही मिथ्यात्व कहते हैं, यह मिथ्यात्व का पक्का लक्षण है । [पुरुषार्थसिद्धि उपाय गाथा १४]

(इ) जिन्हे सयोग सिद्ध संवध है ऐसे आत्मा और क्रोधादि आस्रवों में भेद ज्ञान ना होने से ही सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता है ।

[समयसार गाथा ६६-७० टीका]

(इ) स्व-पर का विवेक न होने से सम्यक्त्व नहीं होता ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६]

(उ) जीवादि सात तत्त्व जो प्रयोजनभूत हैं इनका उल्टा श्रद्धान होने से सम्यक्त्व नहीं होता है ।

[छहढाला दूसरी ढाल]

(ऊ) अपनी आत्मा को छोड़कर अनन्त आत्मा, अनतानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असंख्यात काल-द्रव्य तथा शुभाशुभ भावों के साथ एकत्व बुद्धि, एकत्व का ज्ञान, एकत्व का आचरण होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है ।

२१. वस्तु का परिणमन बाह्य कारणों से निरपेक्ष है

(अ) मिथ्यादृष्टि शास्त्रों का अभ्यासी कहता है कि कर्म के उदय

से विकार होता है और जीव विकार करे तो नया बन्ध होता है। विकार स्वतंत्र है और कर्म का उदय उपशमादि स्वतंत्र है। यह बात तुमने कहाँ से निकाली ऐसे अज्ञानी को समझाने के लिए श्री बीरसेन स्वामी जयधवलपुस्तक सातवी पृष्ठ १७७ के प्रारम्भ में लिखा है। कि—“वज्रकारण निरपेक्षो वस्तु परिणामो” अर्थात् वस्तु का परिणमन बाह्य कारणों से निरपेक्ष होता है।

आचार्य भगवान ने यह कथन विकारी परिणामों के सम्बन्ध में कहा है क्योंकि जीव अपने दोष से अज्ञानी रहता है ऐसा होने पर भी अपना दोष बाह्य कारणों के ऊपर लगाता है।

[जय धवल पु० सातवी पृष्ठ १७७]

(आ) सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में यह छह कारक एक साथ वर्तते हैं इसलिए आत्मा और पुद्गल शुद्ध दशा में या अशुद्ध दशा में स्वयं छहों कारक रूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारकों की (निमित्त कारणों की) अपेक्षा नहीं रखते।

[पचास्तिकाय गा० ६२ टीका सहित]

(इ) निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकपने का सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मा स्वभाव को प्राप्ति के लिए सामग्री (बाह्य साधन) खोजने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) पन्नन्व होते हैं।

[प्रवचनसार गाथा १६ की टीका]

(उ) अज्ञानी जीव को समझाने के लिए आचार्यदेव उपदेश देते हैं कि राग द्वेष की उत्पत्ति अज्ञान से आत्मा में ही होती है और वे आत्मा के अशुद्ध परिणाम हैं। इसलिए अज्ञान का नाश करो, सम्यग्ज्ञान प्रगट करो, आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा अनुभव करो, परद्रव्य को रागद्वेष उत्पन्न करने वाला मानकर उस पर कोप न करो।

[समयसार कलश २२० का भावार्थ]

(ऊ) वास्तव में कोई भी पर्याय हो, चाहे विकारी हो या अविकारी हो वह निरपेक्ष है उसका दूसरा कोई कारण नहीं है। क्योंकि

एक पर्याय का उसकी पहली पर्याय और अगली पर्याय से सम्बन्ध नहीं है, तब उस पर्याय को दूसरा करे, यह बात कहां से आई ? अज्ञानता मे से आई ।

२२. वासना का प्रकार

(अ) प्रतीति करने मे आता हुआ वह इन्द्रियजनित सुख-दुख है । प्रश्न कैसे है ? उत्तर वह केवल वासनामात्र है । जीव को (देहादि पदार्थों) उपकारक तथा अपकारक नही होने से परमार्थ से देहादि (पदार्थ) विषै वह उपेक्षणीय है । उसमे तत्त्वज्ञान के अभाव से “यह मुझे उपकारक होने से इष्ट है और अपकारक होने से अनिष्ट है” ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुआ सस्कार वह वासना है । वह (वासना इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के अनुभव के अनन्तर उत्पन्न हुआ स्व सर्वद्य अभिमान-युक्त परिणाम है, वह वासना ही है, स्वाभाविक आत्मा का स्वरूप नहीं । [नोट--इस स्व सर्वद्य अभिमान युक्त परिणाम को मिथ्यात्व-पूर्वक का अनन्तानुबन्धी मान कहा जाता है । इस वासना का अभाव सम्यग्दर्शन होने पर ही होता है ।] [इष्टोपदेश गा० ६ की टीका मे]

(आ) जीवन का विणेष (गुण) विशेष्य (द्रव्य) की वासना है । उसका अन्तर्धान-सम्यक्दर्शन होने पर होता है ।

[प्रवचनसार गा० ८०]

(इ) परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करने मे आवे (अर्थात् द्रव्य का द्रव्य प्राप्त करता है, पहुचता है, ऐसा द्रव्यार्थिकनय से कहा जाता है) तब समस्त गुणवासना का उन्मेश अस्त हो जाता है ऐसा वह जीव को “शुक्ल वस्त्र ही है” इत्यादि की भाँति, ऐसा द्रव्य ही है ऐसा समस्त ही अतद्भाविक भेद निमग्न होता है । रागद्वेष मोह की वासना अनादि से एक-एक समय करके है । नोट—यहाँ गुण-गुणी के भेद को वासना का उन्मेश कहने मे आया है क्योंकि भेद से भी राग उत्पन्न होता है ।

[प्रवचनसार गा० ६८ की टीका से]

(ई) जिन जीवों के तत्त्वज्ञान नहीं है वे यथार्थ आचरण नहीं आचरते। वही विशेष बतलाते हैं—कितने ही जीव पहले तो प्रतिज्ञा धारण कर बैठते हैं, परन्तु अन्तरंग में विषय-कषाय वासना मिटी नहीं है इसलिए जैसे-तैसे प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। वहाँ उस प्रतिज्ञा से परिणाम दुःखी होते हैं। जैसे—कोई बहुत उपवास कर बैठता है और पश्चात् पीडा से दुःखी हुआ रोगी की भाँति काल गँवाता है, धर्म साधन नहीं करता। तो प्रथम सवती जाने उतनी ही प्रतिज्ञा क्यों न ले ? दुःखी होने में तो आर्त्तध्यान हो उसका फल अच्छा कैसे लगेगा ? × × × × × विषय वासना नहीं छूटी थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा किसलिए की ? × × × × × क्योंकि वहाँ तो उल्टा रागभाग तीव्र होता है। नोट—यहाँ पर जीव को विषय वासना और कषाय वासना अनादि से एक-एक समय करके चली आ रही है ऐसा बताया है सम्यग्दर्शन के बिना इस वासना का अभाव नहीं हो सकता।) [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २३८ से २३९]

(उ) देवगति में विषय वासना है और इसे कषाय वासना भी कहते हैं। [पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय]

(ऊ) प्रतिज्ञा के प्रति निरादर भाव न हो, परिणाम चढते रहे, ऐसी जिनधर्म की आम्नाय है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २३९]

(ए) किसी ने प्रतिज्ञा द्वारा विषय प्रवृत्ति रोक रखी थी, अन्तरंग आसक्ति बढ़ती गई, और प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही अत्यन्त विषय प्रवृत्ति होने लगी, सो प्रतिज्ञा के काल में विषय-वासना मिटी नहीं। आगे पीछे उसके बदले अधिक राग किया, सो फल तो राग भाव मिटने में होगा, इसलिए जितनी विरक्ति हुई हो, उतनी ही प्रतिज्ञा करना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २४०]

(ऐ) भाव शुद्धि बिना गृहस्थपना छोड़े तो मुनिपना कैसे हो ? उसका फल अच्छा कैसे होय ? कभी नहीं होय। उसको शुभ भाव की वासना मिटती नहीं, मुनिर्लिंग का वेश धारण करके स्वयं विवाह

न करे, तो भी गृहस्थो को विवाहादि की बातें बताये, सम्बन्ध कराये वैंटरी आदि रखे, जीव हिंसा स्वयं करे और गृहस्थ के पास से करावे तो पापी होकर नरक जाता है । [लिंगपाहुड गा० ६]

(ओ) परन्तु अल्प परिग्रह ग्रहण करने का फल निगोद कहा है, तब ऐसे पापों का फल तो अनन्त ससार होगा ही होगा ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १७६]

(औ) सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना विषय और कषाय की वासना का अभाव नहीं होता है । इसलिये प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना पात्र जीव का प्रथम कर्त्तव्य है ।

२३ अन्तरंग श्रद्धा और उसका फल केवलज्ञान

(अ) कर्मोदय जनित शुभाशुभरूप कार्य करता हुआ तद्रूप परिणमित हो, तथापि अन्तरंग में ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नहीं है । यदि शरीराश्रित व्रत-सयम को भी अपना माने तो मिथ्या-दृष्टि होय । [मोक्षमार्गप्रकाशक, चिट्ठी में पृ० २]!

(आ) जो ज्ञान मति-श्रुतिरूप हो प्रवर्तता है वही ज्ञान बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूप होता है । [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी में पृ० २]

(इ) (१) निर्विकल्प दशा में केवल आत्मा को ही जानता है एक तो यह विशेषता है । (२) मात्र स्वरूप से ही तादात्म्यरूप होकर प्रवृत्त हुआ यह दूसरी विशेषता है । (३) ऐसी विशेषताएँ होने पर कोई वचनातीत ऐसा अपूर्व आनन्द होता है जो कि विषय सेवन में उसकी जाति का अंश भी नहीं है । इसलिए उस आनन्द को अतीन्द्रिय कहते हैं । [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृ० ६-७]!

(ई) भला यह है कि चैतन्य स्वरूप के अनुभव का उद्यमी रहना ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ ६]

सम्यग्दृष्टि को स्वपर के स्वरूप में न सशय, न विमोह, न विभ्रम यथार्थ दृष्टि है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्दृष्टि से मोक्षपद्धति

को साधना जानता है। बाह्यभाव बाह्य निमित्तरूप मानता है, वह निमित्त नानारूप है, एकरूप नहीं है। अन्तर्दृष्टि के प्रमाण में मोक्ष-मार्ग साधे और सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जागने पर मोक्ष-मार्ग सच्चा। मोक्षमार्ग को साधना वह व्यवहार, शुद्ध द्रव्य अक्रियारूप से निश्चय। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का स्वरूप सम्यग्दृष्टि जानता है। मूढ़ जीव न जानता है न मानता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक परमार्थ वचनिका पृ० १३-१४]

(३) सम्यग्दर्शन होने पर नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है चाहे देर लगे, इसलिए जिसकी अन्तरंग श्रद्धा सच्ची है उसका फल केवलज्ञान है। सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में और केवलज्ञान में जानने में फरक नहीं है, मात्र प्रत्यक्ष परोक्ष का भेद है।

प्रकरण दूसरा—जीव ज्ञान स्वभावी है

(१) ज्ञान का जीव उपादान कारण है और वह ज्ञान उपादेय है जो कि यावत् द्रव्य मात्र में रहता है।

[धवल पुस्तक ७ पृ० ६८-६९]

(२) ज्ञानदर्शन जीव का लक्षण है—उपयोग जीव का लक्षण है। जिसके अभाव में जीव का अभाव होता है। इसलिए ज्ञान-दर्शन व उपयोग जीव का लक्षण है।

[धवल पुस्तक ५ पृ० २२३]

(३) प्रश्न—सयम, कषाय जीव का लक्षण नहीं कहा उसका क्या कारण है?

उत्तर—सयम जीव का लक्षण नहीं है—क्योंकि सयम के अभाव से जीव का अभाव नहीं होता। [धवल पुस्तक ७ पृष्ठ ६६]

कषाय जीव का लक्षण नहीं है क्योंकि कषाय कर्म जनित है।

[धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२३]

(४) जो यथार्थ वस्तु का प्रकाशक है—अथवा जो तत्त्वार्थ को प्राप्त करावने वाला है, वह ज्ञान है । [घवल पुस्तक ७ पृष्ठ ७]

ज्ञान दर्शन को जीव का लक्षण असिद्ध नहीं है, उसका अभाव नहीं होता । कहा भी है कि—

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत, मात्र-आत्मा मम अरे ।

अरु शेष सब सयोग लक्षित, भाव मुझसे है परे ॥

अर्थ—ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है । शेष सब सयोग लक्षण वाले भाव मुझसे बाह्य है ।

[नियमसार गा० १०२]

(५) जीव दुःख स्वभावी नहीं—क्योंकि जीव का लक्षण (स्वरूप) ज्ञान और दर्शन के 'विरोधी' दुःख को जीव का स्वभाव मानने में विरोध आता है ।

[घवल पुस्तक ६ पृ० ११]

(६) सुख जीव का स्वभाव है—सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता ।

[घवल पुस्तक ६ पृ० ३५]

(७) द्रव्य कर्म जीव का कुछ करता है—वह परमार्थ कथन नहीं, उपचार कथन है । जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म है ।

शका—इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने पर जीव मोहनीयत्व को प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करना चाहिए, क्योंकि जीव से अभिन्न और कर्म ऐसी सज्ञा वाले पुद्गल द्रव्य में उपचार से कर्तृत्व का आरोपण करके उस प्रकार की व्युत्पत्ति की गई है । अभिन्न का अर्थ एक क्षेत्रावगाही है अभिन्न भाव (कहने में आता है पर है भिन्न)

[घवल पुस्तक ६ पृ० ११]

(८) वस्तुओं का परिणमन जीव की इच्छा से नहीं होता है । भिन्न रुचि होने से अमधुर स्वर भी मधुर समान रूप है । परन्तु इससे उसकी (आत्मा की) मधुरता नहीं होती है क्योंकि पुरुषों की इच्छा से वस्तु का परिणमन प्राप्त नहीं होता है । नीम कितने ही

जीवो को अच्छा लगता है इसलिए वह मधुरता को प्राप्त नहीं होता है। इससे विरुद्ध माने तो अव्यवस्था प्राप्त होती है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० १०६]

(६) स्वास्थ्य लक्षण सुख जो जीव का स्वाभाविक गुण है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० ४६१]

(१०) केवलज्ञान—क्षरण अर्थात् विनाश का अभाव होने से केवल ज्ञान अक्षर कहलाता है। उसका अनन्तवा भाग पर्याय नाम का मतिज्ञान है (वह सूक्ष्म निगोदियो को उघाडरूप होता है)

[धवल पुस्तक ६ पृ० २१]

केवलज्ञान सहाय निरपेक्ष होने से बाह्य पदार्थों की उपेक्षा के विना उनके अर्थात् नष्ट, अनुत्पन्न पदार्थों के ज्ञान की उत्पत्ति में कोई विरोध नहीं है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० २६]

(११) वस्तु का स्वरूप—वस्तु त्रिकाल गोचर अनन्त पर्यायो से उपचित है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० २७]

(पुण्य पवित्रता)

(१२) मनुष्य सर्व गुणों को उत्पन्न करता है उसका स्पष्टीकरण

(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन पर्ययज्ञान (५) केवलज्ञान (६) सम्यक्त्वमिथ्यात्व (७) सम्यक्त्व (८) सयमासयम (९) सयम (१०) बलदेवत्व (११) वासुदेवत्व (१२) चक्रवर्तीत्व (१३) तीर्थकरत्व (१४) अन्तः कृत केवली होकर सिद्ध (१५) बुद्ध (१६) मुक्त (१७) परिनिर्वाण (१८) सर्व दुःखों के अन्त का अनुभव करते हैं।

[धवल पु० ६ पृ० ४६४-४६५]

(१३) ज्ञानी कर्म बँधाता नहीं—ज्ञान परिणत जीव कर्म को प्राप्त नहीं होता (अर्थात् ज्ञानी कर्म बँधाता नहीं)। अज्ञान परिणत जीव के परिणाम के निमित्त से कर्म बँधाता है।

[धवल पु० ६ पृ० १२]

(१४) जीव के स्वभावभूत चारित्र्यके एक देशरूप ५-६-७वे गुण-स्थान में आविर्भाव पाया जाता है। (फिर ८वे तथा १२वे गुण-स्थान वालों की बात कहाँ रही) [धवल पु० ५ पृ० २३३]

(१५) सम्यक्त्व—तत्त्वार्थ के श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। अथवा तत्वों में रुचि होना ही सम्यक्त्व है। [धवल पु० ७ पृ० ७]

(१६) अध्यात्मिक भाव—माक्ष को उत्पन्न करने वाले अध्यात्मिक भाव है। [धवल पु० ७ पृ० ६]

(१७) सम्यग्दर्शन सब का समान है—चौथे से तेरहवे गुणस्थान तक के आस्रव सहित और चौदहवे गुणस्थानवर्ती आस्रव रहित ऐसे दोनों प्रकार के जीवों में (सम्यग्दर्शन सब को समान ४ से १४ तक) सम्यग्दर्शन पाया जाता है अर्थात् होता है।

(धवल पु० ७ पृ० २३ मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४)

(१८) सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्व-पर विवेक वाला है। मति अज्ञान में स्वपर के विवेकरूप अभावरूप सफलता होती है। (द्रष्टान्त—खम्भा आदि अज्ञान है क्योंकि श्रद्धा सच्ची नहीं है।

(धवल पु० ७ पृ० ८५-८६)

मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान है वह ज्ञान अपना कार्य करता नहीं।

(धवल पु० ५ पृ० २२४)

(१९) ज्ञान का कार्य—जाने हुए पदार्थों की श्रद्धा करना वह ज्ञान का कार्य है।

(धवल पु० ५ पृ० २२४)

(२०) अज्ञानी की दया—दया-धर्म के ज्ञाताओं में भी आप्त आगम और पदार्थ के श्रद्धान से रहित जीव के यथार्थ श्रद्धान होने में विरोध है।

(धवल पु० ५ पृ० २२४)

(२१) सम्यक्त्व प्राप्त होने पर सन्मार्ग (मोक्षमार्ग) जीव ने ग्रहण किया है। एक विभग ज्ञानी देव या नारकी जीव ने सन्मार्ग (मोक्षमार्ग) पाकर सम्यक्त्व ग्रहण किया। (फिर निश्चय सम्यक्त्व

कोई ८ वें गुणस्थान में कोई १२वें में कहते हैं यह बात कहाँ रही)।

(धवल पु० ७ पृ० २१६)

पर्यायार्थिकनय के अवलम्बन से जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया, तब तक जीव को भव्यत्व अनादिअनन्त रूप है। किन्तु सम्यक्त्व के ग्रहण कर लेने पर अन्य ही भव्य भाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ भव्य जीव सादिसान्त होते हैं।

(धवल पु० ७ पृ० १७७)

(२२) सम्यग्दृष्टि को सम्यक् मति और सम्यक् श्रुतज्ञान होता है।

(धवल पु० ७ पृ० १६२)

(२३) स्वभाव—आभ्यन्तर भाव को स्वभाव कहते हैं अर्थात् वस्तु या वस्तु स्थिति की उस अवस्था को उसका स्वभाव कहते हैं। जो उसका भीतरी गुण है और बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित नहीं है। (धवल पु० ७ पृ० २३८) (पर के अवलम्बन से स्वभाव प्रगट नहीं होता है)

समयसार गा० २०४ में लिखा है कि 'जिसमें समस्त भेद निरस्त हुआ है ऐसा आत्मस्वभावभूत ज्ञान का ही अवलम्बन करना।

ज्ञान का उपादान कारण जीव है और ज्ञान उपादेय है, क्योंकि वह सदा जीव में द्रव्य और भाव रूप से रहता है।

(इसी प्रकरण का नम्बर १)

(२४) उपादान कारण आधीन कार्य—(श्री जयसेनाचार्य समयसार गा० २२० तथा २२७ की टीका में कहा है कि) "अन्तरंग स्वकीय उपादान कारण के आधीन होता है। (ज्ञान का उपादान कारण जीव है उससे (जीव) उसके आधीन शुद्धता होती है।

(२५) बध कारण के प्रतिपक्षी का प्रमाण इस प्रकार है—(१) सम्यक्त्व की उत्पत्ति (२) देशसयम (३) सयम (४) अनन्तानुबन्धी का विसयोजन (५) दर्शनमोह का क्षपण (६) चारित्र्य मोहनीय का उपगम (७) उपशान्तकपाय (८) चारित्र्यमोह क्षपण (९) क्षीण कपाय

(१०) सयोग केवली यह परिणाम मोक्ष के कारण भूत है, क्योंकि उनके द्वारा प्रतिसमय असख्यात गुण श्रृंणी रूप से कर्मों की निर्जरा पाई जाती है। किन्तु जीव, भव्य, अभव्य आदि जो पारिणामिक भाव हैं वे वध और मोक्ष दोनों में से किसी के भी कारण नहीं हैं।

(धवल पु० ७ पृ० १३ तथा १४)

(यह भाव आत्मश्रद्धान भूत ज्ञान का, एक का ही अवलम्बन लेने से प्रगट होता है)

परावलम्बन—निमित्त के अवलम्बन से कभी भी प्रगट नहीं होता। (ऐसा २३वें नम्बर में आ गया है।)

आत्मा के स्वभावभूत ज्ञान को परम पारिणामिक भाव कहते हैं। उसका अवलम्बन लेना अर्थात् धर्म स्वावलम्बन से प्रगट होता है, परावलम्बन से नहीं।

श्री समयसार गा० २१४ में “जीव को निरावलम्बन के कारण सवर पूर्वक निर्जरा हाती है” कहा है। इसी गा० २१४ में जयसेना-चार्य ने लिखा है कि “अनन्त ज्ञानादि गुण स्वरूप स्वस्वभाव का ही अवलम्बन होता है।

(२६) सयत के कितने गुणस्थान हैं ?

उत्तर—‘सयत’ कहते ही प्रमत्तसयत आदि आठ गुणस्थानों का ग्रहण है क्योंकि सयत भाव की अपेक्षा कोई भेद नहीं है अर्थात् छठे गुणस्थान से १३वें गुणस्थान तक का ग्रहण है। १४वा गुणस्थान नहीं लिया है, क्योंकि वहाँ बंधने का अभाव है। (धवल पु० ६ पृष्ठ ८०, ८२ तथा ८५ से ८८ तक, ९५, १०७, १०९, ११४, ११७)

(अ) प्रमत्तसयत—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, ७ नोक-पाय, यह ११ प्रकृतियों में चारित्र्य घातने की शक्ति का अभाव है इसलिए वह गुणस्थान क्षायोपशमिक भाव है।

(धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२०, २२१)

(आ) प्रमत्तसयत—चार सज्वलन और सात नोकपाय यथाख्यात

चारित्र को आवरण करने वाला है इसलिए उसके होने पर भी जीव इस गुणस्थान को प्राप्त होता है ।

(आधार धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२०, २२१ में ऊपर (अ) न० में दे चुके हैं)

कर्म का उदय होते हुए भी जो जीव का गुण खण्ड (अण) उपलब्ध रहता है वह क्षायोपशमिक भाव है ।

(धवल पुस्तक ५ पृष्ठ १८५)

शुद्धात्मप्रकाशक सर्व विरति, वह श्रमण है ।

(प्रवचनसार गा० २५४)

(इ) ५-६-७वे गुणस्थान में श्रावक और मुनि को निश्चय स्वभावभूत चारित्र का एक अण होता है । (धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २३३)

(ई) चारित्र दो प्रकार का है, देश चारित्र और सकल चारित्र ।

सकल चारित्र तीन प्रकार का है, (१) क्षायोपशमिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायिक । यह तीनों निश्चय स्वभावभूत चारित्र हैं ।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ २६८)

(उ) चारित्र विनाशक कषायों की अपेक्षा चारित्र में मल को उत्पन्न करने रूप फल वाले कर्मों की महत्ता नहीं बन सकती ।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४६)

(ऊ) प्रत्याख्यान को सयम कहते हैं ।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४३)

(ए) सयम—चारित्र का विनाश नहीं करने वाला सज्ज्वलन कषाय को चारित्रावरण इसलिए कहने में आता है । कषाय सयम में मल उत्पन्न करता है, इसलिए उसे यथाख्यात चारित्र का प्रतिबन्धक कहा है । चारित्र के साथ जलना ही इसका सम्यक्पना है ।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४४ ४५)

(ऐ) चारित्र मोहनीय की व्याख्या—घातियाँ कर्मों को पाप कहते हैं । मिथ्यात्व, असयम, कषाय ये पाप की क्रिया हैं । इन पाप क्रियाओं

के अभाव को चारित्र्य कहते हैं। यह पापरूप क्रियाओं की निवृत्ति को चारित्र्य कहते हैं। उसको जो मोहित करता है वह चारित्र्य मोहनीय है। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४०)

(ओ) अनन्तानुबन्धी चारित्र्य मोहनीय—अनन्त भवों का बँधना जिसका स्वरूप है वह अनन्तानुबन्धी है।

जीव अविनष्ट स्वरूपमय भाव के साथ अनन्त भवों में परिभ्रमण करता है, वह कषाय के उदय काल अन्तर्मूर्हत मात्र है और स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है, तो भी अनन्तानुबन्धी के अर्थ में दोष नहीं हैं।

क्योंकि इन कषायों द्वारा जीव में उत्पन्न होने वाला सस्कार अनन्त भवों में अवस्थान मानने में आया है।

(मिथ्यात्व के सस्कार में, प्रवचनसार गा० ६)

वृद्धिगत ससार अनन्त भवों में अनुबन्ध को नहीं छोड़ता है, इसलिए 'अनन्तानुबन्धी' यह नाम ससार का है। अनन्तानुबन्धी चार कषाय यह सम्यक्त्व और चारित्र्य का विरोधक है क्योंकि वे सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनों को घातने वाली दो प्रकार की शक्ति से संयुक्त है। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४२)

(औ) आप्त, आगम और पदार्थों में अश्रद्धा वह मिथ्यात्व है। (चारित्र्यमोहनीय की व्याख्या में पृष्ठ ६१ में मिथ्यात्व की परिभाषा आ गई है)। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ३८)

(अ) अन्तरंग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है ऐसा निश्चय करना।

सभी कार्य एकान्त से बाह्य अर्थ की अपेक्षा करके ही उत्पन्न नहीं होते। [देखो न० २३, २४]

—शालीधान के बीज से जौ के अकुर की उत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होगा, किन्तु उस प्रकार के द्रव्य तीनों ही कालों में, कोई भी क्षेत्र में नहीं है कि जिसके बल से शालीधान के बीज में जौ के अकुर को

उत्पन्न करने की शक्ति हो सके। इसलिए कही पर भी अन्तरग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है—ऐसा निश्चय करना।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ १६४]

(अ) मिथ्यात्व तथा कषाय कर्मों की स्थिति में अन्तर होने का कारण।

शका—मोहनीयत्व की अपेक्षा समान होने से मिथ्यात्व कर्म की स्थिति के समान ही कषायों की स्थिति क्यों नहीं हुई ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्व और चारित्र के भेद से भेद को प्राप्त हुए कर्मों के भी समानता होने का विरोध है।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ १६२]

(क) सयम के कारण भूत सम्यग्दर्शन की अपेक्षा तो इस गुणस्थान में क्षायोपशमिक, क्षायिक और औपशमिक भाव निमित्तक सम्यग्दर्शन होता है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७७]

(ख) मिथ्यादृष्टि जीवों को, सयत या देशसयत होय ही नहीं।

प्रश्न—कितने ही अज्ञानी संयमी जीव देखने में आते हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के बिना सयत और प्रत्याख्यान (चारित्र) होता ही नहीं।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३७८ तथा पृष्ठ १७५]

निश्चय चारित्र का कारणभूत ज्ञान-श्रद्धान है।

[समयसार गा० २७३ की टीका से]

(ग) भावसयम-द्रव्य सयम।

सयमन करने को सयम कहते हैं। सयम का इस प्रकार का लक्षण करने पर द्रव्यसयम अर्थात् भावचारित्र शून्य द्रव्यचारित्र सयम नहीं हो सकता, क्योंकि सयम शब्द में 'स' शब्द से उसका निराकरण हो जाता है। 'सम्' उपसर्ग सम्यक् शब्दवाची है। इसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्वक 'यता' अर्थात् अन्तरग और बहिरग आन्वयो से विरत है उसे सयम कहते हैं।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १४४ तथा पृष्ठ ३६६]

मिथ्यादृष्टियों के भी भावसयम रहित द्रव्यसयम होना सम्भव होता है। वह (द्रव्यसयम) सम्यक्त्व और सयम से रहित होता है द्रव्य सयम ने नव ग्रन्थों को मे उत्पन्न हो सकता है।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४६५-४७३]

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७५ तथा ३७८]

(घ) सिद्ध भगवान का सयम।

उनके बुद्धिपूर्वक निवृत्ति का अभाव होने से वह सयत, सयता-सयत और असयतरूप भी नहीं है क्योंकि उनको सम्पूर्ण पापरूप क्रियाये नष्ट हो चुकी है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३७८]

त्रण मूढता

१ देवमूढता, २ गुरुमूढता, ३ लोकमूढता।

(अ) आप्त, आगम आर पदार्थों में जिस जीव को श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई तथा उसका चित्त त्रण मूढताओं से व्याप्त है। जो त्रण मूढता से व्याप्त होय उसे सयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७७]

(आ) त्रण मूढताओं से रहित सम्यग्दर्शनरूप उन्नत तिलक में विराजमान है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ ६]

(इ) त्रण मूढताओं से रहित अमूढदृष्टि कहलाता है। उसकी व्याख्या—क्योंकि सम्यग्दृष्टि टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमयता के कारण सभी भावों में मोह का अभाव होने से, अमूढ दृष्टि है।

[समयसार गा० २३२ की टीका से]

(ई) अब तीन प्रकार मूढता है, वे सम्यक्त्व के घातक हैं याते तीन प्रकार की मूढता का स्वरूप जानि सम्यग्दर्शन को शुद्ध करना योग्य है।

[रत्नकरण्ड श्रावक/चार श्लोक २२ के ऊपर हैडिंग पृष्ठ ३०]

प्रश्न—लोकमूढता क्या है ?

उत्तर—जिन मूर्खनिनै तत्त्वनिज्ञा निश्चयरूप द्रव्य को देखा नहीं और ज्ञानरूप समुद्र नहीं देखा और समता नाम नदी नाही देखी। वह गंगादिक (सम्मोदशिखर, गिरनार) तीर्थाभासन मे दौडता फिरता है। अनेक प्रवृत्ति मे दया, दान, पूजा आदि मे धर्म होना, पवित्रता होना तथा कितने भेषधारी अनेक क्रिया-काण्ड, होम कराना आदि कर, कल्याण होना बतावे है। कितने ही स्नानकर रसोई करने मे स्नानकरि जीमने मे तथा आला वस्त्र पहिरि जीमने मे अपनी पवित्रता शुद्ध माने है परम धर्म माने हैं तो समस्त मिथ्यात्व के उदय से लोक-मूढता है। [रत्नकाण्ड श्रावकाचार गा० २२ की टीका से]

प्रश्न—देवमूढता क्या है ?

उत्तर—ससारी जीव इस लोक मे राज्य सम्पदा, स्त्री, पुत्र, आभरण, धन-ऐश्वर्य को वाछा सहित व्यन्तर क्षेत्रपालादिक कू अपना सहाई माने हैं तथा सासारिक सम्पदा के लिए सच्चे जिनेन्द्र की भक्ति से लौकिक पद की इच्छा करे हैं तथा पद्मावती देवी की पूजा करे हैं। ताते ऐसा निश्चय जानना कि जो अनेक देव-देवी को आराधै है, पूजै है सो देवमूढता है। (रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २३)

प्रश्न—गुरुमूढता क्या है ?

उत्तर—जिनेन्द्र के श्रद्धान ज्ञानकर रहित होय नाना प्रकार के खोटे भेष धारण करके आपको ऊँचा मान जगत के जीवो से अपनी पूजा वन्दना चाहता है। आपको आचार्य, पूज्य धर्मात्मा कहावता रागी-द्वेषी हुआ प्रवत है। शुभ भावो से, निमित्तो मे भला होता है, कर्म चक्कर कटाता है तथा शुभ भाव करो और शुभ भाव करते-करते धर्म हो जावेगा। मुनि साधु नाम धराके मन्त्र, जप, होम, निघ्न आचरण करे हैं, वह पाखण्डी है जो उन पाखण्डियो का वचन प्रमाण कर उनका सत्कार करते है। सो सब गुरुमूढता है। इसलिए मिथ्यादिक मलता का नाश करने वाला जो आपा-पर का भेद जानने रूप विवेक

है, उसका श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र रूप परिणमन करना चाहिए ।

[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २४ से]

कुगुरु सेवा, कुदेव सेवा तथा कुधर्म सेवा यह तीन भी सम्यक्त्व के मूढता नाम के दोष हैं ।

[छहढाला, तीसरी ढाल]

तत्त्वज्ञान से परम श्रेय होता है ।

(अ) जो श्रुत ज्ञान के प्रसिद्ध बारह अंगों से ग्रहण करने योग्य है अर्थात् बारह अंगों का समूह जिसका शरीर है । जो सर्व प्रकार के मल और तीन मूढताओं से रहित सम्यग्दर्शनरूप उन्नत तिलक से विराजमान है और विभिन्न प्रकार के निर्मल चारित्र ही जिसके आभूषण हैं, ऐसे भगवती श्रुत देवता चिरकाल तक प्रसन्न रहो ।

(धवल पुस्तक १ पृष्ठ ६)

(आ) शब्द से पद की सिद्धि होती है । पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है और अर्थ निर्णय से तत्त्वज्ञान अर्थात् हेय उपादेय के विवेक की प्राप्ति होती है और तत्त्वज्ञान से परम कल्याण होना है ।

(धवल पुस्तक १ पृष्ठ १०)

(इ) हेय-उपादेय के विवेक की प्राप्ति के लिये मनुष्य की उत्कृष्ट अर्थात् सूक्ष्म विचार आदि सातिशय उपयोग से युक्त है उसे मनुष्य कहते हैं ।

जिस कारण जो सदा हेय-उपादेय का विचार करते हैं अथवा जो मन से गुण-दोष आदि का विचार करने में निपुण हैं अथवा मन से जो उत्कट अर्थात् (दूरदर्शन) सूक्ष्म विचार चिरकाल धारण आदि रूप उपादेय सहित है, उसे मनुष्य कहते हैं ।

(धवल पुस्तक १ पृष्ठ २०२-२०३ संस्कृत श्लोक १३०)

(ई) हेय-उपादेय का ज्ञान और विवेक प्राप्त करने के लिये नय ज्ञान जरूरी है और वह सब नय है और उसका नाम द्रव्याधिक नय पर्यायाधिकनय । तीर्थंकरों के वचनों का सामान्य प्रस्तार का मूल

व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिकनय है और उसके वचनो का विशेष प्रस्तार का व्याख्यान करने वाला पर्यायार्थिकनय है ।

नय का विषय इस प्रकार है

अनेक गुण और पर्याय सहित, अथवा उसके द्वारा एक परिणाम से दूसरे परिणाम मे, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे, एक काल से दूसरे काल मे अविनाशी स्वभावरूप से रखने वाला द्रव्य को जो ले जाता है अर्थात् उसका ज्ञान कराता है, वह नय है ।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों के विषय मे निम्न प्रकार है

वाकी तमाम भेदो के दो नय है । (धवल पुस्तक १ पृष्ठ ११-१२)

(उ) जीवो को अनादि से पर्यायो के भेदो का ज्ञान होता है, परन्तु द्रव्य का ज्ञान नहीं होने से उनको तात्त्विक हेय-उपादेय का ज्ञान नहीं होता है । इसलिए इन दो नयों का ज्ञान ना हो तो, जो योग्य हो वह अयोग्य प्रतीत हो, और जो अयोग्य हो वह योग्य प्रतीत हो, और अज्ञान मिटे नहीं ।

(धवल पुस्तक १ पृष्ठ ७७)

(धवल पुस्तक ३ पृष्ठ १७)(धवल पुस्तक १३ पृष्ठ ४)

[त्रिलोकपरिणति भाग १ पृष्ठ ८२)

(परमात्मप्रकाश अध्याय दूसरा गा० ४३)

इन सब मे हेय-उपादेय के विवेक के लिये आदेश दिया है ।

(ऊ) उपदेश मे कोई उपादेय, कोई हेय तथा कोई ज्ञेय तत्वो का निरूपण किया जाता है, वहाँ उपादेय हेय तत्वो की तो परीक्षा कर लेना । क्योंकि इनमे अन्यथापना होने से अपना बुरा होता है । उपादेय को हेय मान ले तो बुरा होगा, हेय को उपादेय मान ले, तो बुरा होगा ।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६)

(ए) हेय-उपादेय के विवेक का फल सर्वज्ञ से स्वयं जाना हुआ होने से, सर्व प्रकार से अबाधित है । ऐसा शब्द प्रमाण को प्राप्त करके क्रीडा करने पर, उसके सस्कार से विशिष्ट सवेदन शक्तिरूप सम्पदा (सम्यक्दर्शन) प्रगट होता है । (प्रवचनसार गा० ८६ की टीका से)

(ऐ) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य रूप परिणित हुई, वही आत्मतत्त्व मे एकाग्रता है। (प्रवचनसार गा० २३२ की टीका से)

(ओ) यह अमूर्तिक आत्मा वह मैं हूँ और यह समान क्षेत्रावगाही शरीरादिक (द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म) वह पर है तथा यह उपयोग वह मैं हूँ और यह उपयोग मिश्रित मोह-राग द्वेष भाव, वह पर है। ऐसा स्व-पर का भेद विज्ञान होता है तथा आगम उपदेशपूर्वक स्वानुभव होने से 'मैं ज्ञान स्वभावी एक परमात्मा हूँ' ऐसा परमात्मा का ज्ञान होता है। (प्रवचनसार गा० २३३ के भावार्थ से)

(ओ) द्रव्याधिकनय तो एक सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट स्वभाव है वह सदाकाल स्थिति (कायमी) स्वभाव रहता है। ऐसा ज्ञान हुए बिना उस स्वभाव का अवलम्बन जीव नहीं ले सकता है। इसलिए हेय-उपादेय की विवेक दृष्टि होने पर उसका अवलम्बन लिया जा सकता है और पर्यायाधिकनय का विषय बाह्य स्थितरूप है इसलिए उसका अवलम्बन छोड़ता है।

(अ) द्वादशांग का नाम आत्मा है, क्योंकि वह आत्मा का परिणाम है और परिणाम परिणामी से भिन्न होता नहीं, क्योंकि मिट्टी द्रव्य से पृथग्भूत घटादि पर्याये पायी नहीं जाती।

शका—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दोनों ही आगम सामान्य की अपेक्षा समान हैं। अतएव जिस प्रकार भावस्वरूप द्वादशांगो को "आत्मा" माना है उसी प्रकार द्रव्यश्रुत को भी आत्मा मानने का प्रसंग आयेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह द्रव्यश्रुत आत्मा का धर्म नहीं है, उसे जो आगम सज्ञा प्राप्त है। वह उपचार से प्राप्न है। वास्तव मे वह आगम नहीं है। (धवल पुस्तक १३ पृष्ठ २८२-२८३)

(अ) श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है।

(समयसार गा० १५ की टीका पृष्ठ ४३)

(क) प्रथम तो आत्मा का परिणाम वास्तव मे स्वयं आत्मा ही है, क्योंकि परिणामी परिणाम से अभिन्न है ।

(प्रवचनसार गा० १२२ की टीका से)

(ख) पौद्गलिक शब्दब्रह्म, उसकी ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जानने वाली ज्ञानक्रिया) वह ज्ञान है । श्रुत (सूत्र) तो उसका (ज्ञान का) कारण होने से ज्ञान तरीके उपचार से कहा जाता है । जैसे अन्न को प्राण कहते हैं (वैसे शब्द ब्रह्म को ज्ञान कहा जाता है । वह है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा कथन है) ।

(प्रवचनसार गा० ३४ की टीका से)

इस प्रकार श्री समयसार श्री प्रवचनसार और धवल पुस्तक १३ मे द्रव्यश्रुत और भावश्रुत का स्वरूप एक ही प्रकार कहा है ।

(ग) सर्व जगह परमार्थ है, वही सत्यार्थ है । इसी प्रकार समयसार मे लिखा है, “व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है । द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है ।”

(समयसार गा० ६ का भावार्थ पृष्ठ १७)

(घ) व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है, इसलिये वह अविद्यमान, असत्य, अभूत, अर्थ को प्रकट करता है, शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है ।

(समयसार गा० ११ की टीका से)

(ङ) पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सम्पूर्ण छुड़ाया है और उस व्यवहार को हेय, त्याज्य कहा है तब फिर यह सत्पुरुष एक सम्यक् निश्चय को ही निश्चलतया अगीकार करके शुद्ध ज्ञानधन-स्वरूप निज महिमा मे (आत्मस्वरूप मे) स्थिरता क्यों धारण नहीं करते ?

(समयसार कलश १७३)

(ट) धवल पुस्तक १३ पृष्ठ २८२-२८३ मे कहा है, कि द्वादशांग भाव श्रुतज्ञान है, वह आत्मा का परिणाम है—ऐसा कहा । श्रुतज्ञान

घनस्वरूप निज स्वरूप का अवलम्बन, उसमें स्थिरता, करने के लिए कहा है ।

स्वभाव का अवलम्बन लेना और बाह्य का अवलम्बन छोड़ना ऐसा २३ नम्बर में कहा जा चुका है ।

(ठ) इसलिये जिसमें भेद दूर हुए हैं ऐसे आत्म स्वभावभूत एक ज्ञान का ही अवलम्बन करना चाहिए । उसके अवलम्बन से ही निजा पद की प्राप्ति होती है, भ्रान्ति का नाश होता है, आत्मा का (जीव का) लाभ होता है, और अनात्मा (अजीव) का परिहार होता है; (ऐसा होने से) कर्म बलवान नहीं होते, राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नहीं होते; (राग-द्वेष-मोह भाव के बिना) पुन कर्मास्त्रव नहीं होता, (आस्त्र के बिना) पुनः कर्म बन्ध नहीं होता, पूर्वबद्ध कर्म भुक्त होकर निर्जरा को प्राप्त हो जाता है, समस्त कर्मों का अभाव होने से साक्षात् मोक्ष होता है । ऐसे (आत्मा) के अवलम्बन का ऐसा महात्म्य है ।

(समयसार गा० २०४ टीका पृष्ठ ३१४)

प्रश्न—क्या सम्यग्दर्शन संयम का अंश है ?

उत्तर—हां है ।

(अ) देशावधि किसे कहते हैं ? उत्तर—देश अर्थात् सम्यग्दर्शन । क्योंकि वह सम्यग्दर्शन संयम का अवयव (अंश) है ।

(घवल पुस्तक १३ पृष्ठ ३२३)

(आ) कहूँ शुद्ध निश्चय कथा, कहूँ शुद्ध व्यवहार ।

मुक्ति पंथ कारन कहूँ, अनुभव का अधिकार ॥

अर्थ—शुद्ध पर्याय प्रगटी वह सद्भूत व्यवहार है । भूमिकानुसार राग असद्भूत व्यवहार है । त्रिकाली द्रव्य शुद्ध निश्चयनय है ।

(समयसार नाटक)

(इ) संयम का कारण सम्यग्दर्शन है । (दर्शनपाहुड गा० ३१)।

(ई) निश्चय चारित्र के कारणरूप ज्ञान-श्रद्धान है ।

(समयसार गा० २७३ की टीका से)।

प्रकरण तीसरा सम्यक्त्व की व्याख्या

(१)(क) तत्त्वार्थ श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। (ख) अथवा तत्वों से रुचि होना ही सम्यक्त्व है। (ग) अथवा प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है वही सम्यक्त्व है।

(धवल पुस्तक ७ पृष्ठ ७, धवल पुस्तक १० पृष्ठ ११५)

(I) प्रशम = अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव पूर्वक बाकी की कषायों का अशरूप से मद होना [पचाध्यायी गाथा ४२८] (II) सवेग—ससार से भय और धर्म तथा धर्म के कार्यों में परम उत्साह होना साधर्म्य और पचपरमेष्ठियों में प्रीति। (III) अनुकम्पा = प्राणी मात्र पर दया भाव। (IV) आस्तिक्य = पुण्य-पाप तथा परमात्मा का विश्वास।

(२) सम्यक्त्व की उत्पत्ति ही मोक्ष का कारण है—

वह गुणश्रेणी रूप निर्जरा का कारण है। बन्ध के कारण का प्रतिपक्षी है। [धवल पुस्तक ७ पृ० १४]

(३) सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व भाव, अत्यन्त अप्रशस्त है, और उसके निमित्त से बँधने वाला मिथ्यात्व कर्म अत्यन्त अप्रशस्त है।

(४) चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक सर्व जीवों को सम्यक्त्व समान है। [धवल पुस्तक ७ पृ० २२-२३, १०७]

(५) सम्यग्दर्शन में जीव के गुण स्वरूप श्रद्धान की उत्पत्ति पायी जाती है उससे आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है।

[धवल पुस्तक ५ पृ० २०८, २०९ तथा पृ० २३५]

(६) क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदक सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ है। [धवल पुस्तक ५ पृ० २६४]

(७) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमादि आदि को जीवत्व नहीं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद आदि में मगलपना सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें जीवत्व का अभाव है। मगल तो जीव ही है और वह जीव केवलज्ञानादि अनन्त धर्मात्मक है। [धवल पुस्तक १ पृ० ३६]

आस्रव अशुचि, अपवित्र, जड स्वभावी, दुःख का कारण, लाख के समान, अनित्य, अध्रुव, अशरण, वर्तमान मे दुःखरूप और आगामी दुःखस्वरूप है और भगवान् आत्मा तो सदा ही अति निर्मल, चैतन्य-स्वभावी, विज्ञानघन स्वभावी, निराकुल स्वभावी, नित्य, ध्रुव, शरण वर्तमान मे सुखस्वरूप और आगामी मे सुखस्वरूप है ।

[समयसार गा० ७२, ७४ की टीका से]

(८) सम्यक्त्व प्राप्त करने वालो ने सन्मार्ग ग्रहण किया है । देव तथा नारकी जीवो मे चतुर्थ गुणस्थान ही होता है, ऊपर के गुणस्थान वहाँ नहीं हो सकते हैं । देव नारकी अज्ञान दशा मे विभग ज्ञानी होते हैं और जब सम्यक्त्व प्रगट करते हैं, तब सन्मार्गी होते हैं ।

[धवल पुस्तक ७ पृ० २१६]

(९) सम्यक्त्व का फल निश्चय चारित्र है । और निश्चय चारित्र का फल केवलज्ञान तथा सिद्ध दशा है । जो जीव चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है, वह नियम से सिद्ध होगा ही । इससे वह भावि नैगमनय से सिद्ध है ।

(१०) अनादि होने से आस्रव नित्य नहीं हो जाता, क्योंकि कूटस्थ अनादि को छोड़कर प्रवाह अनादि मे नित्यत्व नहीं पाया जाता । यदि प्रवाह रूप से अनादि होय तो उसको (मिथ्यात्व) नित्य-पना प्राप्त नहीं होता है ।

[धवल पुस्तक ७ पृ० ७३]

(११) सम्यग्दृष्टि को आप्त, आगम तथा पदार्थों को श्रद्धा होती है मिथ्यादृष्टि को उसकी श्रद्धा नहीं होती । भले दया धर्म को जानने वाला (बातें करने वाला) ज्ञानी कहलाता हो उसका ज्ञान, श्रद्धा का कार्य करता नहीं, इसलिए मिथ्या है ।

[धवल पुस्तक ५ पृ० २२४]

(१२) चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करने से जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है वहाँ उस गुणस्थानी जीव को ४१ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता तथा और प्रकृतियों की स्थिति और अनुभाग अल्प बाँधता है,

तो भी वह ससार स्थिति का छेदक होता है। इसलिए मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा उसे अवन्धक कहने में आया है।

[समयसार पृ० १३३, ३०६, ३०७, २६१]

[गोमट्टसार कर्मकाण्ड गा० ६४]

(१३) द्रव्यानुयोग तथा करणानुयोग का तीनों काल सुमेल होता है। दोनों वीतरागी शास्त्र है। उनमें विरोध जरा भी नहीं। उनका समन्वय आगे इस प्रकार है—

सिद्धान्त में गुणस्थानों की परिपाटी में चारित्र मोह के उदय के निमित्त से सम्यग्दृष्टि के जो बन्ध होता है वह भी निर्जरारूप ही समझना चाहिए। क्योंकि सम्यग्दृष्टि के जैसे पूर्व में मिथ्यात्व के उदय के समय बंधा हुआ कर्म खिर जाता है, उसी प्रकार नवीन बंधा हुआ भी खिर जाता है। उसके उस कर्म के स्वामित्व का अभाव होने से वह आगामी वधरूप नहीं, किन्तु निर्जरारूप ही है। × × × ज्ञानी द्रव्य कर्म को पराया मानता है, इसलिए उसे उसके प्रति ममत्व नहीं होता अतः उसके रहते हुए भी वह निर्जरित हुए के समान ही है ऐसा जानना। [समयसार गाथा २३६ का भावार्थ पृ० ३५५]

सम्यग्दृष्टि को कर्म का उदय वर्तता होने पर भी, सम्यग्दृष्टि को पुनः कर्म का बंध किंचित मात्र भी नहीं होता, परन्तु जो कर्म पहिले बंधा था। उसके उदय को भोगने पर उसको नियम से उस कर्म की निर्जरा ही होती है। [समयसार कलश १६१ पृ० ३४६]

(१४) धवल में भी इस कथन से कोई विरोध नहीं आता। धवल में लिखा है—जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्म रूप परिणमाता है। परन्तु ज्ञान परिणत है, उसको जो अल्प स्थिति तथा अनुभागवाली कितनी कर्म प्रकृतियाँ बधने पर भी, उसका स्वामी न होने से वह कर्म को प्राप्त नहीं होता।

[धवल पुस्तक ६ पृ० १२]

(१५) सर्व सम्यग्दृष्टियों को चौथे गुणस्थान से १४वें गुणस्थान

तक स्वभाव भूत अवस्था प्राप्त होती हैं । [धवल पु० १ पृ० ३६६]

(१६) १४वें गुणस्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन ही होता है । चौथे गुणस्थान से स्वभावरूप अवस्था शुरू होती है, इसलिए सर्वत्र श्रद्धा गुण की स्वभावरूप अवस्था शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

[धवल पु० १ पृ० ३६६, ३६७]

(१७) मेरु समान निष्कम्प आठ मल रहित, तीन मूढताओं से रहित और अनुपम सम्यग्दर्शन परमागम के अभ्यास से होता है ।

[धवल पु० १ पृ० ५६]

(१८) सम्यग्दर्शन रत्नगिरि का शिखर है ।

[धवल पु० १ पृ० १६६]

(१९) जो पुरुष सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वही शुद्ध है । जिसका दर्शन शुद्ध होता है वही निर्वाण को प्राप्त करता है, दूसरा नहीं । निर्वाण प्राप्ति मे वह (सम्यग्दर्शन) प्रधान है । [मोक्षपाहुड गा० ३६]

(२०) यह श्रेष्ठतर सम्यग्दर्शन ही जन्म-जन्म का नाश करने वाला है । उसकी जो श्रद्धा करता है वह सम्यक्त्वी है । वह सम्यक्त्व मुनियो, श्रावको तथा चतुर्गति के भव्य सज्जी पचेन्द्रिय जीवों को ही होता है । [मोक्षपाहुड गाथा ४० महावीरजी से प्रकाशित हुआ

अष्टपाहुड पृ० ५२३]

(२१) जैसे तारों के समूह मे चन्द्रमा अधिक है, पशुओं के समूह मे सिंह अधिक है, उसी प्रकार मुनि और श्रावक दोनों प्रकार के धर्म मे सम्यक्त्व, वह अधिक है ।

[भावपाहुड गाथा १४४ जयचन्द्र वचनिका पृ० २६८]

(२२) प्रश्न—श्रावक को क्या करना ?

उत्तर—प्रथम श्रावक को सुनिर्मल मेरुवत् निष्कम्प अचल तथा चल मलिन अगाढ दोष रहित अत्यन्त निश्चल सम्यग्दर्शन को ग्रहण करके उसके ध्यान मे दे ख क्षय के लिए ध्यावना ।

[मोक्षपाहुड गा० ८६]

(२३) सम्यक्त्व अमूल्य माणिक्य समान है। जो जीव निरन्तर सम्यक्त्व का ध्यान करते हैं, चिंतवन करते हैं, वारम्बार भावना करते हैं, वह निकट भव्य जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है और सम्यक्त्व रूप परिणमित जीव दुःखदायी आठ कर्मों को क्षय करता है। कर्म के क्षय का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से ही होता है। इस पूर्ण प्रयत्न से सर्व प्रथम उसको ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

[मोक्षपाहुड गा० ८७ सस्कृत टीका हिन्दी महावीरजी से प्रकाशित अष्टपाहुड पृ० ५७५]

(२४) वारम्बार सम्यग्दर्शन के महात्म्य का वर्णन करते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि “अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? अतीतकाल में जितना भरत, सगर, राम, पांडव आदि श्रेष्ठ भव्य जीवों ने मोक्ष प्राप्त किया, तथा भविष्य काल में मोक्ष प्राप्त करेगा और वर्तमान में करता है वह सम्यग्दर्शन का महात्म्य है।”

[मोक्षपाहुड गाथा ८८ अष्टपाहुड प्रकाशित महावीरजी पृ ५७७]

(२५) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य और तप यह चारों आत्मा में स्थित है इसीलिए आत्मा हो मेरे शरण है।

[मोक्षपाहुड गा० १०४ अष्टपाहुड महावीरजी पृ ५६२]

(२६) आत्मा ही आत्मा की श्रद्धा करता है, आत्मा ही आत्मा का ज्ञान करता है, आत्मा ही आत्मा के साथ तत्पर्ययने का भाव करता है। आत्मा ही आत्मा में तपता है। आत्मा ही आत्मा में केवलज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करता, इसी प्रकार चार प्रकार से आत्मा ही आत्मा की आराधना करता है इसलिए आत्मा ही मेरे शरण है।

[मोक्षपाहुड गा० १०५, अष्टपाहुड महावीरजी से प्रकाशित पृ० ५६२]

(२७) आत्मा ही मेरा शरण है ऐसा निर्णय करने वाला जीव सदाकाल भूतार्थ का आश्रय करता है और उसके आश्रय से ही

सम्यग्दर्शन प्रगट होता है । “भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है ।” [समयसार गाथा ११]

२८. शुद्ध का अर्थ क्या है ?

नहि अप्रमत्त, प्रमत्त नहि जो एक ज्ञायक भाव है ।

इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञाक वो तो वो हि है ॥ ६ ॥

अर्थ—जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं है । इस प्रकार इसे शुद्ध कहने हैं और जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह तो वही है, अन्य कोई नहीं । ज्ञायक भाव अप्रमत्त भी नहीं, और प्रमत्त भी नहीं, वह तो समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्न रूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है । [समयसार गा० ६]

एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है । वहाँ द्रव्य अपेक्षा तो पर द्रव्य से भिन्नपना और अपने गुणों से अभिन्नपना उसका नाम शुद्धपना है और पर्याय अपेक्षा औपाधिक भावों का अभाव होना शुद्धपना है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १६६]

(२९) आत्मा ही शरण होने से आत्माश्रित निश्चयनय है पराश्रित व्यवहारनय है । ऐसा कहकर पराश्रित भाव छुड़ाया है और आत्माश्रित को ग्रहण कराया है । जीव को अनादि से जो पराश्रय से भेरा भला होगा ऐसी खोटी मान्यता को छुड़ाकर ध्रुव ज्ञायक त्रिकाली स्वभाव का आश्रय कराया है । अबन्धभाव आत्माश्रित है और बन्ध-भाव पराश्रित है ऐसा बताया है ।

[समयसार गा० २७२ सस्कृत टीका से]

(३०) आत्मा ही एकमात्र शरण होने से वह ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य आदि है अर्थात् उसके आश्रय से ही अबन्धदशा प्रगट होती है और पराश्रय से बन्ध होता है ।

[समयसार गा० २७६-२७७ की टीका से]

(३१) शुद्ध आत्मा ही दर्शन है, क्योंकि वह (आत्मा) दर्शन का

आश्रय है ऐसा जो समयसार गा० २७६-२७७ में कहा है उसी प्रकार जो सिद्धान्त समयसार की ११वीं गाथा में कहा है, वह ही बन्ध अधिकार में लगाना चाहिए।

(३२) शुद्ध आत्मा ही दर्शन (सम्यक्त्व) का आश्रय है, क्योंकि जीवादि नव पदार्थों के सद्भाव में या असद्भाव में उसके (शुद्ध आत्मा के) सद्भाव से ही सम्यग्दर्शन का सद्भाव है। अबन्ध आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है।

[समयसार गा० २७६-२७७ की टीका से]

(३३) क्योंकि दर्शनमोहनीय देशघाती प्रकृति का उदय रहने पर भी जीव को एकदेश स्वभावरूप रहने में कोई विरोध नहीं है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३६८]

यहाँ पर बतलाया है कि चौथे गुणस्थान से १४वें गुणस्थान तक जीवों को सम्यग्दर्शन स्वभावरूप अवस्था है उसी से आत्मा का ज्ञायक स्वभावपना प्रकट होता है।

ज्ञान वह अभेदनय से आत्मा ही होने से उपादेय है अन्य सब हेय है। इस प्रकार वीतरागी शास्त्रों में चाहे वह करणानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो कोई भी किसी में विरोध नहीं है।

(३४) कदो दसण मोहोदये सति जीव गुणीभूत सदहणस्स उधत्ति एउवल्लय”। अर्थ—क्योंकि दर्शनमोहनीय होने पर (सम्यक् प्रकृति का उदय होने पर भी) जीव को गुणीभूत श्रद्धा की उत्पत्ति की प्राप्ति होती है। (यहाँ पर श्रद्धा से जीव को गुणीभूत कहा—इसलिए सिद्ध हुआ कि जीव को त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से इस गुणीभूत की श्रद्धा उत्पन्न होती है पराश्रय से कभी नहीं। धवल पुस्तक ७ पृष्ठ २३८ में लिखा है कि बाह्य स्थिति ऊपर” अवलम्बित नहीं है।

(३५) चौथे गुणस्थान से १४वें गुणस्थान तक सम्यक्त्व का एकत्व है। इस सम्बन्ध में कहा है कि दर्शनमोहनीय के उपशम से

उपशम सम्यक्त्व होता है, क्षय से क्षायिक होता है और क्षयोपशम से क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व होता है । इन तीनों का एकत्व ही उसका नाम सम्यग्दृष्टि है, क्योंकि यह तीनों भाव सम्यग्दृष्टियों के ही होते हैं । [धवल पु० ७ पृ० १०७]

(३६) क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ है । [धवल पु० ५ पृ० २६४]

इस पचम काल में भरत क्षेत्र में जन्मा हुआ जीव क्षायिक-सम्यक्त्व प्रगट करे, ऐसी योग्यता किसी जीव को नहीं । ऐसा त्रिकाल सर्वज्ञदेव के ज्ञान में आया है । अहो सर्वज्ञ का अद्भुत सर्वज्ञपना ।

(३७) ज्ञान जीव को सारभूत है और ज्ञान की अपेक्षा सम्यक्त्व सारभूत है, क्योंकि सम्यक्त्व से ही चारित्र होता है और चारित्र से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है ।

[दर्शनपाहुड गा० ३१]

[धवल पु० १ पृ० १७७]

(३८) सम्यक्त्व से ज्ञान होता है और ज्ञान से समस्त पदार्थों की उपलब्धि होती है और वह जीव अपने कल्याण का और अकल्याण का विशेष अन्तर भेद जानता है ।

[दर्शनपाहुड गा० १५]

ज्ञान ज्योति प्रगट होती है ।

[पचास्तिकाय गा० ७०]

जैसी द्रव्यानुयोग और करणानुयोग में सम्यक्त्व की महिमा बतलायी है उसी तरह से चरणानुयोग के शास्त्रों में भी बतलायी है ।

(३९) तीन काल और तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान कोई हितकारी नहीं । और मिथ्यात्व के समान कोई अहितकारी नहीं ।

[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० ३४]

(४०) जिस पुरुष को सम्यक्त्वरूप जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है उसे कर्मबन्ध नहीं होता । उसको कर्मरज का आवरण लगता नहीं और पूर्व वैशा हुआ कर्म नाश को प्राप्त होता है ।

[दर्शनपाहुड, सूत्र ७]

दर्शन रत्न जो परिणति सम्यग्दर्शन को धारण करता है वह रत्न-त्रय में सार उत्तम गुण को धारण करता है वह मोक्ष का प्रथम सोपान है । [दर्शनपाहुड सूत्र २१]

जीव विशुद्ध सम्यग्दर्शन से कल्याण की परम्परा को प्राप्त होता है । [दर्शनपाहुड सूत्र ३१]

हेय-उपादेय सम्यग्दृष्टि ही जानता है । जिन प्रणीत जीव-अजीव आदि का बहुविध अर्थ है । उसमें जो हेय-उपादेय को जानता है वह ही सम्यग्दृष्टि है । [सूत्रपाहुड गा० ५]

(४१) केवली-सिद्ध भगवान् रागादि रूप नहीं परिणमते, ससार अवस्था की इच्छा नहीं करते यह श्रद्धान का बल जानना ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४]

(४२) सम्यक्त्व गुण, तिर्यंच आदिक और केवली सिद्ध भगवान् को सम्यक्त्व गुण समान ही कहा है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४]

(४३) सम्यग्दर्शन रत्न अर्घ है जिस जीव को विशुद्ध सम्यग्दर्शन है वह परम्परा कल्याण को प्राप्त करता है वह सम्यग्दर्शन रत्न लोक में सुर-असुर द्वारा पूज्य है ।

[दर्शनपाहुड तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार]

देव और दानवों से युक्त इस ससार में सम्यग्दर्शन सर्व द्वारा पूजने में आता है । इस रत्न का मूल्य कोई भी करने को समर्थ नहीं ।

[अष्टपाहुड महावीरजी से प्रकाशित पृ० ४४]

(४४) सम्यक्त्व परिणत जीव सम्यक्त्व है । अतः दानतराय जी कृत सम्यग्दर्शन की अष्टद्रव्य सहित पूजा, सम्यग्दृष्टि जीव को लागू होती है । तथा बनारसीदास जी ने समयसार नाटक में सम्यग्दृष्टि को वन्दन किया है ।

(४५) सम्यग्दृष्टि नमस्कार के योग्य है—

पद्मपुराण में लिखा है कि “निश्चित ही इसका यह शरीर अन्तिम शरीर है ऐसा जानकर उसने, हस्त-कमल शिर से लगा, तथा तीन

प्रदक्षिणाये देकर अपनी स्त्रियो के साथ बालक के उस चरम शरीर को नमस्कार किया ।”

इसमे राजा प्रतिसूर्य ने सम्यग्दृष्टि हनुमान बालक की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया, तब सम्यग्दृष्टि पूजने योग्य है ऐसा प्रथमानुयोग का शास्त्र बताता है ।

(४६) सम्यग्दृष्टि कैसा जानता है कि—

कहै विच्छन्न पुरुष सदा मैं एक हों ।

अपने रस सौ भर्यौ आपनी टेक हों ॥

मोह कर्म मम नाहि भ्रम कूप है ।

शुद्ध चेतना सिन्धु हमारी रूप है ॥३३॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं सदैव अकेला हूँ, अपने ज्ञान-दर्शन रस से भरपूर अपने ही आश्रय से हूँ । भ्रमजाल का कूप मोह कर्म मेरा स्वरूप नहीं है, नहीं है । मेरा स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य सिन्धु है ॥३३॥ [समयसार नाटक जीव द्वार]

समयसार द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग सनशास्त्र एक आवाज से सम्यग्दृष्टि की वदना करने को कहते हैं ।

प्रकरण चौथा—निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्पष्टीकरण

(१) सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है । वह परमात्मा नहीं और बहिरात्मा भी नहीं । परमात्मा और बहिरात्मा को व्यवहार नहीं होता है, क्योंकि वीतराग परमात्मा को राग नहीं, कुछ बाधकपना नहीं है ।

जिसको अशरूप से शुद्धि प्रगट हुई है उसे भूमिकानुसार बाधकपना होता है । यहाँ उस बाधकपने को व्यवहार कहा है और जो शुद्धि प्रगटी है उसे निश्चय कहा है । क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र्य गुण की पर्याय मे दो अश हो जाते हैं वहाँ जितनी शुद्धि होती है वह मोक्षमार्ग है और जो अशुद्धि है वह बन्धमार्ग है ।

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को सम्पूर्ण बाधकपना है इसलिए मिथ्या-

दृष्टि को व्यवहारपना होता ही नहीं, क्योंकि निश्चय हो तो व्यवहार-पना नाम पावे ।

(२) साधक अन्तरात्मा को एक साथ साधक-वाधक कहा है, क्योंकि उसको ज्ञानधारा और कर्म धारा एक साथ होती है ।

चौथे गुणस्थान मे प्रथम निर्विकल्पता आती है तब निश्चय सम्यक् दर्शन प्रगट होता है । सविकल्पदशा आने पर निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होते हुए, चारित्र मोह के उदय की कमजोरी के कारण सच्चदेव, गुरु, शास्त्र सम्बन्धी ही विकल्प होता है कुगुरु आदि का नहीं । इसलिए सम्यग्दृष्टि के देव-गुरु-शास्त्र के शुभोपयोग को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है, क्योंकि व्यवहार सम्यग्दर्शन-रूप राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है ।

पाँचवाँ गुणस्थान भी निर्विकल्प दशा मे प्राप्त होता है । सविकल्प दशा आने पर दो चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है उसके साथ बारह अणुव्रतों का विकल्प होता है अन्य प्रकार का नहीं । इसलिए देशचारित्र श्रावक के १२ अणुव्रतादि को व्यवहार श्रावकपना कहा है, क्योंकि अणुव्रतादि का राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है ।

पाँचवें गुणस्थान से प्रथम सातवें गुणस्थान मे आता है तब तो निर्विकल्पता होती है । छठे गुणस्थान मे सविकल्पदशा होती है वहाँ पर भावलिङ्गी मुनि को तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है और उसके साथ सज्वलन क्रोधादि का तीव्र उदय होने से अर्थात् अपनी कमजोरी से २८ मूलगुण सम्बन्धी ही विकल्प आता है, अन्य नहीं । इसलिए भावलिङ्गी मुनि के २८ मूलगुण आदि के विकल्प को व्यवहार मुनिपना कहा है क्योंकि व्यवहार मुनिपने का राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है । सातवें गुणस्थान से इस प्रकार का राग होता नहीं है अबुद्धि पूर्वक राग की बात यहाँ गौण है ।

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को निश्चय सम्यग्दर्शन; सच्चा श्रावकपना, सच्चा मुनिपना होता ही नहीं, इसलिए उसको व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार श्रावक, व्यवहार मुनिपना भी नहीं होता है। क्योंकि निश्चय के बिना व्यवहार कैसा ? अर्थात् निश्चय के बिना व्यवहार होता ही नहीं है।

(३) भूमिकानुसार साथ-साथ रहने वाला निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या—

“जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।

व्यवहारात्-निश्चयतः, आत्मैव भवति सम्यक्त्वम् ॥२०॥

अर्थ—जीव आदि कहे हुए जो पदार्थ उनकी श्रद्धा वह व्यवहार सम्यक्त्व जिनवर ने कहा है। निश्चय से अपना आत्मा वह ही सम्यक्त्व है। निश्चय सम्यक्त्व का विषय निज आत्मा है और व्यवहार सम्यक्त्व का विषय निज आत्मा नहीं, परन्तु उनसे जुदा विषय अर्थात् जीवादि नव पदार्थ हैं। [दर्शनपाहुड श्लोक २०]

स्वाश्रितो निश्चय-पराश्रितो व्यवहार। [समयसार गा० २७२]

(१) आत्मा के श्रद्धा गुण में सम्यक्त्व प्राप्ति के साथ एक चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय सम्यग्दर्शन, भूमिकानुसार देव गुरु, शास्त्र का राग व्यवहार सम्यग्दर्शन है। (२) दो चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय श्रावकपना है १२ और अणुव्रतादि का विकल्प व्यवहार श्रावकपना है। (३) तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुण का विकल्प व्यवहार मुनिपना है।

प्रश्न—व्यवहार कब कहा जावेगा ?

उत्तर—व्यवहार निश्चय को बताये तो व्यवहार है। जैसे—सोने में जो खोट है वह यह बताता है, मैं सोना नहीं हूँ, उसी प्रकार भूमिकानुसार जो राग है उस पर व्यवहार का आरोप आता है वह निश्चय को बतलाने मात्र है तब व्यवहार है।

(४) ज्ञानी को व्यवहार सम्यग्दर्शन में विपरीत अभिनिवेश होता

नही, क्योंकि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन होने पर विपरीत अभिनिवेश का अभाव ही होता है ।

जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है । उन पदार्थों में भूतार्थ द्वारा अभिगत पदार्थों में शुद्धात्मा का भिन्नरूप से सम्यक् अवलोकन करना सम्यग्दर्शन है ।

[समयसार जयसेनाचार्य गा० १५५]

(५) निज तत्त्व में जिसका मार्ग विशेषरूप से हुआ है ऐसे जीवों को व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है ।

“काल सहित पचास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ, वे वास्तव में “भाव” है । उन “भावों का” मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होने वाला जो अश्रद्धान उसके अभाव स्वभाव वाला जो भावान्तर (नव पदार्थों के श्रद्धान रूप भाव) श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है ।

[पचास्तिकाय गा० १०७ की टीका से]

यह छठे गुणस्थान धारी तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप परिणमे हुए भार्वाङ्गी मुनि के व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या है । यह चौथे, पाँचवे गुणस्थानधारी जीवों को भी निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ रहा हुआ व्यवहार सम्यग्दर्शन इसी प्रकार लागू पड़ता है ।

(६) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य सो मोक्षमार्ग है ऐसा निश्चय कहा तथा वहाँ छह द्रव्यरूप और नव पदार्थरूप जिनके भेद हैं ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप भाव जिसका स्वभाव है ऐसा ‘श्रद्धान’ नाम का भाव विशेष सो सम्यक्त्व है ।

[पचास्तिकाय गा० १६० की टीका से]

ऊपर गा० १६० की टीका में छठे गुणस्थानवर्ती को मिथ्यात्व तथा तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप परिणत भार्वाङ्गी मुनि की शुद्धि के साथ वर्तता हुआ व्यवहार सम्यक्त्व का वर्णन किया है ।

(७) पचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ को भी व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है । वहाँ व्यवहार मोक्षमार्ग के स्वरूप का निम्न वर्णन किया है—

“वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थों सम्बन्धी सम्यक्श्रद्धान तथा ज्ञान गृहस्थो और तपोधन को समान होता है । चारित्र्य तपोधनो को आचारादि चरणग्रन्थो मे विहित किये हुए मार्ग अनुसार प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थान योग्य पच महाव्रत-पच समिति-त्रिगुप्ति आदिरूप होता है और गृहस्थो को उपासकाध्ययन ग्रन्थ मे विहित किये हुए मार्ग अनुसार पचम गुणस्थान योग्य दान शील-पूजा आदिरूप होता है इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण है ।

[पचास्तिकाय गा० १६० जय सेनाचार्य कृत]

यहाँ श्रावक और मुनि को निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग साथ-साथ होता है ऐसा बताया है ।

वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थों का सम्यक्श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । यह व्यवहार सम्यक्त्व की व्याख्या जयसेनाचार्य जी ने की है । साथ-साथ व्यवहारज्ञान और व्यवहार चारित्र्य भी लिखा है ।

(८) “विपरीत अभिविनेश रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ।”

[नियमसार गा० ५१]

(९) प्रवचनसार गा० १५७ मे क्षायोपशमिकसम्यक्त्व और क्षायोपशमिक चारित्र्य, ५-६ गुणस्थान मे शुद्धरूप है उसके साथ उसी समय वर्तता व्यवहार श्रद्धा शुभोपयोग साथ रहता है ।

“वशिष्ट (खास प्रकार की) क्षायोपशम दशा मे रहा हुआ दर्शन मोहनीय और चारित्र्य मोहनीयरूप पुद्गलो के अनुसार परिणति मे लगा हुआ होने के कारण शुभ उपराग ग्रहण करने से जो उपयोग परम भट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वर ऐसे अरहत और सिद्ध की और साधु की श्रद्धा करने मे तथा समस्त जीव समूह की अनुकम्पा का होना वह शुभोपयोग है” (यहाँ पर देव-गुरु की श्रद्धा व्यवहार सम्यक्त्व है और इसे शुभोपयोग कहा है । क्योंकि वह चारित्र्य मोहनीय के उदय के साथ जुड़ा हुआ है । जो दर्शनमोह के क्षायोपशम के

अनुसार परिणति है वह निश्चय सम्यक्त्व है और चारित्र मोहनीय क्षयोपशम के अनुसार जो परिणति है वह निश्चय चारित्र है ।)

[प्रवचनसार गा० १५० की टीका]

(१०) जो सम्यक्त्व कहा है वह चौथे गुणस्थान से १४वे गुणस्थान तक का वर्णन होने से निश्चय सम्यग्दर्शन है । क्योंकि निश्चय सम्यक्त्व के साथ रहने वाला व्यवहार सम्यक्त्व सातवे गुणस्थान से आगे नहीं होता है ।

यहाँ पर निश्चय सम्यक्त्व को परमार्थ, भूतार्थ, शुद्ध, निर्मल, पवित्र, आभ्यन्तर, अनुपचार सत्यार्थ सम्यग्दर्शन कहा है और व्यवहार सम्यक्त्व को अपरमार्थ, अभूतार्थ, अशुद्ध, अपवित्र, अनिर्मल, बाह्य, उपचार, असत्यार्थ सम्यक्त्व कहा है ।

निश्चय सम्यग्दर्शन का आश्रय शुद्ध आत्मा है और व्यवहार सम्यक्त्व का आश्रय जीवादि नव पदार्थ है ।

[समयसार गा० २७६-२७७]

व्यवहार सम्यग्दर्शन पराश्रित होने से जिनवरो ने उसे हेय, त्याज्य, बध का कारण कहा है, क्योंकि वह दूसरे के आश्रय से होता है । ज्ञानियो को अस्थिरता सम्बन्धी विकलल्प छोड़ने का पुरुषार्थ वर्तता है ।

(११) प्रश्न—४-५वें गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को किसी-किसी समय अशुभभाव व्यक्तरूप होता है और शुभभाव भी सदा एक प्रकार का नहीं होता, तो उस काल सम्यग्दृष्टि के व्यवहार सम्यक्त्व का क्या हुआ ?

उत्तर—उस समय वह व्यक्तरूप ना होकर शक्तिरूप होता है और जब होता है तब व्यक्त रूप होता है ।

(शक्ति व्यक्त का स्वरूप पचास्ति काय गा० ४९ में ज्ञान पर्याय के सम्बन्ध में दिया है) और इष्टोपदेश के राग द्वेष की शक्ति, व्यक्ति के विषय में लिखा है ।

(१२) प्रश्न—सातवें गुणस्थान से लेकर बाद के गुणस्थानों में व्यवहार सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ?

उत्तर—व्यवहार सम्यक्त्व शुभराग है, अशुद्धता है। सातवें गुणस्थान से आगे के गुणस्थानों में निर्विकल्पता रहती हैं। अबुद्धिपूर्वक राग १०वें गुणस्थान तक रहता है। इसलिए सातवें गुणस्थान से आगे-आगे के गुणस्थानों में चारित्र्य गुण की पर्याय में शुद्धता बढ़ती जाती है, अशुद्धता का अभाव होता जाता है। इसलिए सातवें से लेकर आगे के गुणस्थानों में व्यवहार सम्यक्त्व नहीं है। निश्चय सम्यक्त्व चौथे से सिद्ध तक बराबर एक समान रहता है।

(१३) बहिरात्मा-अन्तरात्मा का स्वरूप —

त्रिकाली ज्ञायक परम पारिणामिक जीवतत्त्व को आत्मा कहते हैं। पर्याय की अपेक्षा बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा का भेद है। इन तीन अवस्थाओं से रहित द्रव्य रहता है। इस प्रकार द्रव्य और पर्याय रूप जीव पदार्थ को जानना चाहिए।

प्रश्न—मोक्ष का क्या कारण है ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व मोह-राग-द्वेषरूप बहिरात्म अवस्था है। वह तो अशुद्ध है दुःखरूप है वह तो मोक्ष का कारण नहीं है। (२) मोक्ष अवस्था तो फलस्वरूप है इसलिए यह भी मोक्ष का कारण नहीं है। (३) बहिरात्मा अवस्था तथा मोक्षपूर्ण अवस्था से भिन्न (अलग) जो अन्तरात्म अवस्था है वह मिथ्यात्व, रागद्वेष, मोह रहित होने के कारण शुद्ध है वह अन्तरात्म अवस्था सवर-निर्जरा अवस्था मोक्ष का कारण है।

चौथे गुणस्थान से जितनी शुद्धि है वह मोक्ष का कारण है, जो अशुद्धि है वह बन्ध का कारण है मोक्ष का कारण नहीं है।

[पुरुषार्थसिद्धि उपाय गा० २१२-२१३-२१४ में देखो, उसमें जो शुद्धि अश है वह मोक्षमार्ग है वह मोक्ष का कारण है और अशुद्धि अश है, बन्धरूप है, हेय त्याज्य है।]

प्रश्न—अन्तरात्म अवस्था में ध्यान करने योग्य कौन है ?

उत्तर—त्रिकाली परम पारिणामिक ज्ञायक स्वयं जीव ही (द्रव्य ही) ध्यान करने योग्य है। अपना त्रिकाली परमात्म द्रव्य, इस अन्तरात्म अवस्था से कथञ्चित् भिन्न है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० २३८ की टीका से]

अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित उत्कृष्ट शुद्धोपयोगी मुनि (१२वें गुणस्थानवर्ती) उत्तम अन्तरात्मा है। अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती) जघन्य अन्तरात्मा है। उक्त दोनों की मध्य दशावर्ती देशव्रती श्रावक और मुनिराज (पाँचवें से ११वें गुणस्थान तक) मध्य अन्तरात्मा हैं। [नियमसार गा० टीका १४६]

(१४) तात्पर्य यह है कि ४-५-६ गुणस्थानों में निश्चय सम्यग्दर्शन सहित व्यवहार सम्यक्त्व होता है। इन गुणस्थानों में जो जो शुद्धि है वह सवर-निर्जरारूप है और मोक्ष का कारण है और जो भूमिकानुसार राग है वह अल्प स्थिति अनुभागरूप घातिकर्म बंध का निमित्त कारण है, परन्तु अनन्त ससार का निमित्त कारण नहीं है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जुदा नव तत्वों का जानना मिथ्या-दृष्टिपना है। कलश ६ में नव पदार्थों का जानना मिथ्यात्व कहा है।

(१५) वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निज भाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने और शुद्धनय से आत्मा को न जाने तब तक पर्याय बुद्धि है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

[समयसार गा० १३ के भावार्थ में से पृष्ठ ३३]

(१६) इससे सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन लागू नहीं पड़ता है।

मिथ्यादृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान् आभासमात्र होता है और इसके श्रद्धान् में विपरीताभिनिवेश का अभाव नहीं होता

इसलिए यहाँ निश्चय सम्यक्त्व तो है नहीं और व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। क्योंकि इसके देव, गुरु, धर्मादिक का श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश के अभाव को साक्षात् कारण (निमित्त) नहीं हुआ। कारण हुए बिना उपचार सम्भव नहीं है; इसलिए साक्षात् कारण की अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी इसके सम्भव नहीं है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३३३]

विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम वह तो निश्चय सम्यक्त्व है क्योंकि यह सत्यार्थ सम्यक्त्व का स्वरूप है। सत्यार्थ ही का नाम निश्चय है। तथा विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान को कारणभूत (निमित्तभूत) श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है क्योंकि कारण मे (निमित्त मे) कार्य का उपचार किया है। सो उपचार ही का नाम व्यवहार है। सम्यग्दृष्टि जीव के देव, गुरु धर्मादिक का सच्चा श्रद्धान है उसी निमित्त से इसके श्रद्धान मे विपरीताभिनिवेश का अभाव है। यहाँ विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान निश्चय सम्यक्त्व है और देव-गुरु, धर्मादिक का श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है। इस प्रकार साधक को एक ही काल मे दोनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३३३]

जिसे स्व-पर का श्रद्धान नहीं है और जिनमत मे कहे, जो देव-गुरु-धर्म उन्ही को मानता है वा सप्त तत्वों को मानता है, अन्य मत मे कहे देवादि को नहीं मानता है, तो इस प्रकार केवल व्यवहार सम्यक्त्व से सम्यक्त्वी नाम नहीं पाता। (गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होने की अपेक्षा से व्यवहार सम्यक्त्व कहा है।)

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ २]

परन्तु व्यवहार तो उपचार का नाम है; सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयादि के कारणादिक हो।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

वास्तव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जितना ज्ञान है वह

मिथ्याज्ञान है, जितना चारित्र्य है मिथ्याचारित्र्य है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना व्यवहाराभासी, अनादिरूढ, मिथ्यादृष्टि, ससार तत्व ही कहलाता है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद शुभाशुभ भावरूप कार्य को करता हुआ तद्रूप परिणमित हो, तथापि अन्तरंग में ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नहीं है। यदि शरीराश्रित व्रत-सयम को अपना माने तो मिथ्यादृष्टि होता है। ज्ञानी को सविकल्प परिणाम होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ २]

सम्यक्त्वी के व्यवहार सम्यक्त्व में वा अन्य काल में अन्तरंग निश्चय-सम्यक्त्व गभित है। सदैव गमनरूप (परिणमनरूप) रहता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी में पृष्ठ ६]

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अन्तरात्मा बनकर और क्रम से स्वरूप की स्थिरता करके, श्रेणी माड कर अरहत, सिद्ध दशा प्राप्त कर लेता है।

४-५-६ गुणस्थान में निश्चय-व्यवहार नम्यक्त्व एक साथ होता है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

प्रकरण पांचवाँ

धर्म का मूल चारित्र्य है, वह (चारित्र्य) शुद्ध आत्मा में प्रवृत्ति, जहाँ राग का अवलम्बन नहीं है।

(१) धर्म का मूल

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। धर्म का अर्थ चारित्र्य होता है क्योंकि चारित्र्यधारी को ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

(अ) जैसे—बीज ही नहीं, तब वृक्ष कैसे उपजेगा ? और वृक्ष ही नहीं उपज्या, तब स्थिति किसकी होवे ? वृद्धि किसकी होय ? और फल का उदय कैसे होय ? वैसे ही सम्यग्दर्शन नहीं होवे तब ज्ञान-

चारित्र भी नहीं होय । सम्यक्त्व विना जो ज्ञान है वह कुज्ञान है और चारित्र है वह कुचारित्र है । तब सम्यक्त्व विना ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति ही नहीं, तब स्थिति कहाँ से होवे ? और ज्ञान-चारित्र की वृद्धि कैसे होवे ? और ज्ञान-चारित्र का फल सर्वज्ञ परमात्मापना कैसे होय ? इसलिए सम्यक्त्व विना सत्य श्रद्धान ज्ञान-चारित्र कभी भी नहीं होता है । [रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ३२ की टीका से]

(आ) सम्यक्त्व सहित अल्प हूँ शुभभाव, अल्पज्ञान, अल्प चारित्र, अल्प तप इस जीव को कल्पवासी इन्द्रादिकनि मे उपजाय जन्म-मरण के दुःख रहित परमात्मा कर देता है । और सम्यक्त्व विना बहुत शुभ-भाव हो, ११ अग ६ पूर्व का पाठी हो, शुल्कलेश्या हो, घोर तप करे, तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष मे तथा अल्प ऋद्धिधारी कल्पवासीनि मे उत्पन्न होकर फिर चारो गतियो मे भ्रमण करता हुआ निगोद को चला जाता है । इसलिए सम्यक्त्व सहित ही ज्ञान, चारित्र, तपःधारण करना जीव का कल्याण है । [आत्मानुशासन श्लोक १५ की टीका से]

तथा [रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ३२ पृष्ठ ६२]

(इ) सर्वज्ञदेव ने शिष्यो को ऐसा उपदेश दिया है कि जैसे—मन्दिर की नीव तथा वृक्ष की जड़ होती हैं वैसे चारित्र धर्म है । धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है । “दसण मूलो धम्मो” । (दशनपाहुड गाथा २)

(ई) सम्यग्दर्शन विना धर्मरूपी महल का वृक्ष होता ही नहीं । अर्थात् जैसे—जड़ के बिना वृक्ष नहीं, नीव के बिना मन्दिर नहीं, तैसे सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र धर्म नहीं है ।

द्रव्यानुयोग का यह कथन चरणानुयोग के साथ मेल वाला है ।

(उ) “दसण भूमिह वाहिरा, जिय वयरूक्खण हुन्ति”

अर्थ—हे जीव सम्यग्दर्शन भूमि के बिना, व्रतरूपी वृक्ष नहीं होता है । यहाँ पर भी चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन कहा है ।

(योगीन्द्र देवकृत श्रावकाचार) तथा (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३८)

(ऊ) सम्यग्दर्शन विना चारित्र होता है ऐसी बात नहीं है ।

और अज्ञानी सयमी देखने में आता है, ऐसी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि सयमरूपी कार्य का कारणभूत सम्यग्दर्शन है और जहाँ सम्यग्दर्शन का अभाव होता है वहाँ भानसयम कभी नहीं होता है और द्रव्यसयम हो तो वह अज्ञान की और बध की पद्धति में है।

(घवल पुस्तक १ पृष्ठ १७५, पृष्ठ ३७८)

(ए) श्रद्धान वह सम्यक्त्व है और सम्यक्त्व चारित्र्य का कारण है। जहाँ कारण न होय, तहाँ भाव चारित्र्य (भाव सयम) प्रकट होय ही कहाँ से। जीव ने अनन्तवार द्रव्य सयम धारण किया और नसार बढ़ाया और अब मनुष्यभव पा करके भी ऐसा ही करे, तो ससार वृद्धिगत होता है। सम्यग्दृष्टि सदा रागवर्जक है, जबकि मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा द्रव्य सयमी रागवर्धक है।

(समयसार, छहढाला, रत्नकरण्डश्रावकाचार)

इस प्रकार द्रव्यानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग के वीतरागी शास्त्रों में एक ही सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

प्रश्न—चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन होने पर जीव ने मोक्षमार्ग ग्रहण किया है, ऐसा कहलाया जाएगा या नहीं ?

उत्तर—कहलाया जायेगा, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर जीव को आत्मस्वरूप की प्राप्ति, आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति अथवा आत्मा के गुणीभूत स्वभाव की प्राप्ति होती है। इससे पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति १४वें गुणस्थान में परमात्मा की होती है—उसी जाति की प्राप्ति चौथे गुणस्थान में अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि की होती है।

(ए) भगवान का लघुनन्दन चौथा गुणस्थानधारी जीव शिवमार्ग में केली करता है। निज पर का विवेक होने से मोक्षमार्ग में आनन्द करता है, सुख भोगता है। अरहत देव का लघुपुत्र होने से थोड़े काल में ही अरहत पद प्राप्त करता है। मिथ्यादर्शन का नाश होने से निर्मल सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवों को आनन्दमय

अवस्था का निश्चय करके प० बनारसीदास जी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं ।

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन ।
केलि करें शिव मारग में, जगमाहिं जिनेश्वर के लघुनन्दन ॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन ।
शान्त दशा तिनकी पहिचान, करै कर जोरि बनारसि बन्दन ॥
[समयसार नाटक से]

(ऐ) सम्यग्दृष्टि को चारित्र मोहवश लेश भी समय ना होय, तो भी सुरनाथ पूजते हैं । [छहढाला]

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ३६, ३७, ३८, ३९, ४०-४१ देखो]

(ओ) सन्मार्ग ग्रहण करता है वह ही सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सन्मार्ग का अर्थ मोक्षमार्ग होता है । [धवल पुस्तक १]

इस प्रकार करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग का मेल जानना चाहिए, क्योंकि चारो अनुयोगो में एक ही बात है । सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरूआत नहीं होती है और सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र नहीं होता है । इसलिये पात्र जीव को प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है ।

(२) ननाक (अल्प) चारित्र धर्म

प्रश्न—(अ) चतुर्थ गुणस्थान में अल्पचारित्र की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर—होती है, क्योंकि चौथे गुणस्थान में मिथ्याचारित्र का अभाव होता है और उत्पादरूप आशिक शुद्धि प्रगट होती है, ऐसा सिद्ध होता है ।

(आ) "ऐसे दर्शन मोहनीय के अभावमें सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थ

ज्ञान प्रगट होय है और अनन्तानुबन्धी के अभावतः स्वरूपाचरण चारित्र्य सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है ।

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ पृष्ठ ६८]

प्रश्न—(६) स्वरूपाचरण चारित्र्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुद्धात्मानुभव से अविनाभावी चारित्र्य विशेष को स्वरूपाचरण चारित्र्य कहते हैं ।

[जैन सिद्धान्त प्रवेशिका गोपालदास जी पृष्ठ ५१ प्रश्न न० २२३ देखो]

प्रश्न—(६) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—दर्शन मोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार प्रकृतियाँ—इन सात प्रकृतियों के उपशम अथवा क्षय अथवा क्षयोपशम के सम्बन्ध से और अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय में युक्त होने वाले, ब्रह्मरहित तथा अशत स्वरूपाचरण चारित्र्य सहित निश्चय सम्यक्त्वधारी चौथे गुणस्थानवर्ती होते हैं । (अनादि मिथ्यादृष्टि को पाँच प्रकृतियों का उपशम होता है) ।

[जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला पृष्ठ ६८ प्रश्न न० २१३]

[जैन सिद्धान्त प्रवेशिका गोपालदासजी पृष्ठ १५८ प्रश्न न० ६११]

इसलिए चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र्य नियम से होता ही है ।

चारित्र्य की व्याख्या—घाति कर्मों को पाप कहते हैं और पाप क्रिया का नाम मिथ्यात्व असयम और कपाय कहा है ।

[देखियेगा मिथ्यात्व, असयम, कपाय के अभाव को चारित्र्य कहा है]

[धवल पु० ६ पृष्ठ ४०]

(अ) चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कपाय की निवृत्ति होती है तभी चारित्र्य की कणिका प्रगट होती है और चारित्र्य गुण से सिखा फूटती है तब वहाँ धारा प्रवाहरूप से मोक्षमार्ग की तरफ चलता है, चारित्र्य गुण की शुद्धता के द्वारा चारित्र्य गुण निर्मल होता है और

वह निर्मलता यथाख्यातचारित्र का अकुर है। सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जागृत होती है तब मोक्षमार्ग सच्चा होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान निमित्त चिट्ठी से]।

(आ) परिणति के स्वाद को चारित्र कहा है।

[प्रवचनसार गा० ११]

(इ) चारित्र की कणिका इतनी थोड़ी है कि समय चारित्र ऐसे नाम को प्राप्त नहीं होती है इसलिए सम्यग्दृष्टि को असयत सम्यग्दृष्टि कहा है।

(ई) दर्शन विशुद्धि मूल है। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ज्योति का मूल है। सम्यग्दर्शन वह सम्यग्ज्ञान मे उपयुक्त होने का मूल है।

(३) धर्म की व्याख्या

(अ) “चारित्त खलु धम्मो” चारित्र वह वास्तव मे धर्म है।

(आ) धर्म है सो साम्य है। (इ) स्वरूप मे चरना वह चारित्र है स्व-समय मे प्रवृत्ति ऐसा उसका अर्थ है। (ई) मोह क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम वह धर्म है। [प्रवचनसार गा० ७]

(उ) अहिंसा लक्षण धर्म, सागर-अनगाररूप धर्म, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, मोह-क्षोभ रहित आत्म परिणाम धर्म।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ११]

(ऊ) मिथ्यात्व रागादिसन्सरणरूप भाव ससार मे पडते प्राणियों को उद्धार कर निर्विकार शुद्ध चैतन्य को प्राप्त करे वह धर्म है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ७]

(ए) जो नरक, तिर्यचादिक गति मे परिभ्रमणरूप दुःख तै आत्मा को छुडाय उत्तम, आत्मिक, अविनाशी, अतीन्द्रिय मोक्ष सुख मे धारण करे सो धर्म है।

(ऐ) धर्म तो आत्मा का स्वभाव है जो पर मे आत्म बुद्धि छोड़

अपना ज्ञाता दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायक स्वभाव में ही प्रवर्तनरूप जो आचरण वह धर्म है ।

(ओ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र्य इन तीनों को धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव धर्म कहते हैं ।

[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २-३ पृष्ठ २ में तथा ७-८ ६ में धर्म की व्याख्या की है]

ऊपर की व्याख्याओं से ऐसा सिद्ध हुआ श्रावक-मुनि दोनों धर्म हैं, इसलिए वह चारित्र्य है साम्य है । चौथे गुणस्थानधारी जीवों को मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कपाय के अभावरूप स्वरूपाचरणचारित्र्य होता है इसलिए वह भी धर्म है, साम्य है, ऐसा जानना ।

(४) चारित्र्य की व्याख्या

(अ) स्वरूप में चरना वह चारित्र्य है । स्वसमय में प्रवृत्ति उसका अर्थ है । [प्रवचनसार गा० ७]

(आ) चरण वह स्वधर्म है । धर्म आत्म स्वभाव है और वह रागद्वेष रहित जीव के अनन्य परिणाम है । [मोक्षपाहुड सूत्र ५०]

(इ) जो जानता है वह ज्ञान और जो प्रतीति करता है वह दर्शन । दोनों के सहयोग (एकमेक) से चारित्र्य है ।

[चारित्र्यपाहुड सूत्र ३]

(ई) आत्मलीन जीव सम्यग्दृष्टि है । जो आत्मा को जानता है वह सम्यग्ज्ञान है और उसमें रक्त वह चारित्र्य है ।

[भावपाहुड गा० ३१]

(उ) शुद्धात्मा श्रद्धानरूप सम्यक्त्व का विनाश वह दर्शनमोह है । निर्विकार निश्चय चित्तवृत्ति विनाशक वह क्षोभ है ।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ७]

इस प्रकार में व्याख्या करता हुआ, धर्म, चारित्र्य, साम्य, मोह, क्षोभ रहित परिणाम ऐकार्थवाचक है ।

(ऊ) घातिया कर्मों को पाप कहा है। मिथ्यात्व, असयम, कषाय ये पाप क्रिया हैं। इन पाप क्रियाओं का अभाव होना वह चारित्र है।
[धवल पु० ६ पृष्ठ ४०]

(ए) सयमन करने को सयम कहते हैं। सयम शब्द का अर्थ सम्यक् होता है। इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक अन्तरंग और बहिरंग आत्माओं से विरत, वह सयम है।

[धवल पु० १ पृ० १४४, ३६६]

(ऐ) चारित्र दो प्रकार का है देशचारित्र, सकलचारित्र। श्रावक को पाँचवाँ गुणस्थान और मुनियों को छठा, सातवाँ गुणस्थान है। वहाँ निश्चय स्वभावभूत चारित्र का सच्चा अंश होता है।

[धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २३३]

(ओ) सयम कहने से छठे गुणस्थान से १३वें गुणस्थान तक का ग्रहण है क्योंकि सयम भाव की अपेक्षा कोई भेद नहीं है। इस प्रकार करणानुयोग के शास्त्रों का कथन स्पष्ट है। निश्चय चारित्र ५वें, ६वें गुणस्थानवर्ती श्रावक और मुनि को होता है। वह सच्चा चारित्र है।

इसलिए मुनि के योग्य स्वरूपाचरण चारित्र होवे, तब श्रावक को एकदेशस्वरूपाचरण चारित्र होता है। चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र का मूल ही होता है क्योंकि दर्शन धर्म का मूल है। स्वरूपाचरण चारित्र धर्म है। उसको मनाक् (अल्प) धर्म परिणति अथवा स्वरूपाचरण चारित्र की कणिका की शिक्षा फूटना कहो, एक ही बात है।

(औ) अनन्तानुबन्धी के अभावतः स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होता है। [रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ पृ० ६८]

(अ) चौथे गुणस्थान में 'सवर' शब्द को शुद्धोपयोग कहा है।

[वृहत्तद्वय संग्रह गा० ३४]

(अ) सम्यग्दर्शन स्वरूपाचरण चारित्र का मूल है। वहाँ अनन्तानुबन्धी का अभाव है। इसलिए चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण

चारित्र्य होता है ऐसा सिद्ध किया है। इस पर भी जो कहते हैं कि स्वरूपाचरण चारित्र्य नहीं होता, तो मिथ्याचारित्र्य होना चाहिए, परन्तु यह न्याय सगत नहीं है और जो कहते हैं कि चाँथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र्य नहीं होता है वह मिथ्यादृष्टि, जिनमत से बाहर, पापी और जिनशासन का विरोध करने वाले हैं।

(क) तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट ना भासै तब स्वयमेव क्रोधादिक उत्पन्न नहीं होते, तब सच्चा धर्म होता है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६].

(५) मोक्ष

जीव का हित मोक्ष है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए कहा है कि सम्यग्दर्शन का फल चारित्र्य है और चारित्र्य का फल मोक्ष है। चारित्र्य बिना कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए तीर्थंकर नाम कर्म सहित और तीन ज्ञान सहित जन्मे हुए जीवों को भी चारित्र्यदशा प्राप्त किए बिना अर्थात् भावलिंगी मुनिदशा पाये बिना मोक्ष नहीं होता। इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही सवर अर्थात् धर्म की शुरुआत होती है।

(अ) सवर की महिमा प० वनारसीदास जी ने गाई है :

वासववरूप राक्षस जगत के जीवों को अपने वश में करके अभिमानि हो रहा है वह अत्यन्त दुःखदायक और महाभयानक है। उसका वैभव नष्ट करने योग्य है। उसके वैभव को नष्ट करने के लिए जो उत्पन्न हुआ है वह धर्म का धारक है। कर्मरूप रोग को मेटने के लिए वैद्य समान है। जिसके प्रभाव से परद्रव्य जनित राग-द्वेष आदि विभावभाव भाग जाते हैं। जो अत्यन्त प्रवीण और अनादिकाल से प्राप्त नहीं हुआ था, इसलिए वह नवीन है। सुख समुद्र की सीमा को प्राप्त किया जिसने, ऐसे सवरूप को धारण किया है वह मोक्षमार्ग का साधक है ऐसे ज्ञानी बादशाह को मेरा प्रणाम। [४०७].

(आ) १३वे गुणस्थान में जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है और १४वे गुणस्थान में आयोगीदशा को प्राप्त होता है। १४वे गुणस्थान के अन्त में सिद्धदशा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्व गुणस्थान जीव को देह सहित अवस्था में होते हैं। मोक्षदशा गुणस्थानों की कल्पना से रहित है इसलिए गुणस्थान जीव का स्वरूप नहीं है, पर है, परजनित भाव है ऐसा जानकर गुणस्थानों के विकल्प रहित शुद्ध-बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिए।

[समयसार नाटक चतुर्दश गुणस्थान अधिकार अन्तिम]

(इ) आत्मा और बन्ध को अलग-अलग करना मोक्ष है। जो निर्विकार चैतन्य चमत्कार मात्र आत्म स्वभाव को और उस आत्मा के विकार करने वाले भाव बन्ध के स्वभाव को जानकर बन्धों से विरक्त होता है, वही समस्त कर्मों से मुक्त होता है।

[समयसार गाथा २६३]

(ई) बन्ध का स्वलक्षण तो आत्मद्रव्य से असाधारण ऐसे रागादि हैं। यह रागादि आत्मद्रव्य के साथ साधारणतः धारण करते हुए प्रतिभासित नहीं होते, क्योंकि वे सदा चैतन्य चमत्कार से भिन्न रूप प्रतिभासित होते हैं और जितना चैतन्य आत्मा की समस्त पर्यायों में व्याप्त होता हुआ प्रतिभासित होता है, उतने ही रागादिक प्रतिभासित नहीं होते, क्योंकि रागादि के बिना भी चैतन्य का आत्म-लाभ सम्भव है (अर्थात् जहाँ रागादि ना हो वहाँ भी चैतन्य होता है)।

[समयसार गा० २६४ टीका से]

(उ) जो पुरुष पहले समस्त परद्रव्य का त्याग करके निजद्रव्य में (आत्म स्वरूप में) लीन होता है, वह पुरुष समस्त रागादिक (महा-व्रतादि) अपराधों में रहित होकर आगामी बन्ध का नाश करता है और नित्य उदयरूप केवलज्ञान को प्राप्त करके शुद्ध होकर समस्त कर्मों का नाश करके, मोक्ष को प्राप्त करता है। यह मोक्ष होने का क्रम है।

[समयसार कलश १६१ का भावार्थ]

(ऊ) शुभोपयोग पुण्यभावों से कभी भी मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि व प्रशस्तराग है। वह (प्रगस्त राग) स्वर्ग सुख का कारण है और मोक्ष सुख का कारण वीतराग भाव है इसलिए कारणों में भी भेद है। परन्तु अज्ञानियों को प्रतिभासित नहीं होता।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २३४]

(ए) सम्पूर्णतया कर्ममल कलक रहित, शरीर रहित आत्मा के आत्यन्तिक स्वभाविक-अचिन्त्य-अद्भूत तथा अनुपम-सकल-विमल-केवलज्ञानादिक अनन्त गुणों का स्थानरूप जो अवस्थान्तर है वही मोक्ष है। [वृहत द्रव्य सग्रह गाथा ३७ की टीका पृ० १५३]

(ऐ) मुक्त आत्मा के सुख का वर्णन—

आत्मा उपादान कारण से सिद्ध, स्वयं अतिशय युक्त, बाधा से शून्य, विशाल, वृद्धि-ह्रास से रहित, विषयो से रहित, प्रतिद्वन्द (प्रतिपक्षता) से रहित, अन्य द्रव्यों से निरपेक्ष, उपमा रहित, अपार, नित्य, सर्वदा उत्कृष्ट तथा अनन्त सारभूत परमसुख उन सिद्धों को होता है।

[वृहत द्रव्य सग्रह गा० ३७ की टीका पृष्ठ १५३] तथा

[पूज्यपाद कृत सिद्ध भक्ति गा० ७]

(ओ) प्रश्न—कौनसा जीव मोक्ष है?

उत्तर—सँवर से युक्त है ऐसा जीव सर्व कर्म की निर्जरा करता हुआ वेदनीय और आयु रहित होकर भव को छोड़ता है इसलिए वह जीव मोक्ष है। [पचास्तिकाय मूल गाथा १५३]

(६) पुण्य अर्थात् शुभभाव

(अ) जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है कि पूजा आदिक (भगवान की भक्ति, वन्दना, शास्त्र स्वाध्याय) विषय व्रत सहित हो, तो पुण्य हो और मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम धर्म है। (पुण्य धर्म का विरोधी है पुण्य से धर्म नहीं होता, किन्तु आस्रव-बन्धरूप अधर्म होता है ऐसा स्पष्ट बताया है)। [भावपाहुड गा० ८३]

(आ) लौकिक जन तथा अन्यमती कोई ऐसा कहे कि, जो पूजा-
दिक शुभक्रिया और व्रतक्रिया सहित हो, वह जिन धर्म है किन्तु ऐसा
नहीं है उपवास व्रतादि जो शुभक्रिया है, जिनमे आत्मा के राग
सहित गुभ परिणाम हैं, उससे पुण्यकर्म उत्पन्न होता है इसलिए उसे
पुण्य कहते हैं, और उसका फल स्वर्गादिक भोग की प्राप्ति है। जो
विकार रहित शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप निश्चय हो वह आत्मा का धर्म है
उस धर्म से सवर होता है, सवर पूर्वक निर्जरा होते हुए मोक्ष होता है
इसलिए मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम धर्म है।

[भावपाहुड गा० ८३ का भावार्थ]

(इ) जो जैन पूजा व्रत दानादि शुभ क्रिया से धर्म माने, जिनमत
से बाहर हैं।

[भावपाहुड गा० ८४-८५ भावार्थ]

(ई) प्रश्न—पुण्य से सवर-निर्जरा मोक्ष कौन मानता है ?

उत्तर—श्वेताम्बर, “व्रतादिरूप शुभोपयोग ही से देवगति का वध
मानते हैं और उसी से मोक्षमार्ग मानते हैं, सो वधमार्ग और मोक्षमार्ग
को एक किया, परन्तु यह मिथ्या है।” [मोक्षमार्गप्रकाशक १५८]

(उ) व्यवहार कुछ तो मददगार है, व्यवहार को निमित्त कहा
है ना; ऐसे पुण्यकर्म के पक्षपाती को अर्थात् व्रत-शीलादि को मोक्ष के
कारणरूप में अगीकार करते हैं उन्हें नपुसक कहा है।

[समयसार गा० १५४]

(ऊ) निश्चय के विषय को छोड़कर विद्वान (मूर्ख) व्रतादि निमित्त
व्यवहार के द्वारा ही प्रवर्ते हैं उन पण्डितों का कर्म क्षय नहीं होता है।

[समयसार गा० १५६]

(ए) भगवान द्वारा कहे हुए व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप करता
हुआ भी अभव्य-अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि है। [समयसार गा० २७३]

(ऐ) सम्यग्दृष्टि के शुभभाव को मोक्ष का घातक कहा है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(ओ) जो शुभभावों से मोक्ष सवर निर्जरा मानते हैं उन्हें मिथ्या-

दृष्टि, पापी मोही दुष्ट, अनिष्ट, मोक्ष का घातक आदि अनेक नामों से कहा है । [समयसार कलश १०० से लेकर ११२ तक]

(औ) (मिथ्यादृष्टि के शुभभावों) “समस्त अनर्थ परम्पराओं का रागादि विकल्प ही मूल है ।” मिथ्यादृष्टि के शुभभावों को पापवध का कारण कहा है । [पचास्तिकाय जयसेनाचार्य गा० १६८]

[परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम गा० ६८]

(अ) देव-गुरु-शास्त्र पर है । इनके आश्रय से जो भाव है वह पराश्रित भाव है इसलिए वह भाव त्यागने योग्य और वध का कारण है, सवर-निर्जरा का कारण नहीं है पराश्रित भाव है, अतत्त्वश्रद्धान है, क्रोध, मान, अरति शोक, भय, जुगुप्सा यह छह द्वेष परिणति है और माया, लोभ, रति, हास्य, पुरुष, नपुंसक, स्त्री वेद ये सात राग परिणति है । इनके निमित्त से विकार सहित मोह-क्षोभरूप चकाचक व्याकुल परिणाम हैं ।

(अ.) जो परमात्मा की पूजा-भक्ति, शास्त्र-स्वाध्याय, दया-दान, यात्रादि शुभभावों से अपना हित होना माने, वह मिथ्यात्वलम्बी है । निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र्य गुण की पर्याय में दो अंग हो जाते हैं जितनी शुद्धि है वह मोक्षमार्ग है और जो अशुद्धि है वधमार्ग है । परन्तु ४-५-६ गुणस्थानों में भूमिकानुसार, शुभभावों को व्यवहार धर्म कहा है, परन्तु वह आस्रव-वध का कारण है उससे अल्प ससार का बन्ध होता है ऐसा बताया है । परन्तु जीव मात्र शुभभावों से ही धर्म मानते हैं उनको तो कभी धर्म की प्राप्ति का अवकाश ही नहीं ।

(क) मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण हैं ही नहीं । परन्तु सम्यग्दृष्टि को शुभोपयोग होने पर उसका अभाव करके नियम से शुद्ध में आ जाता है । इस अपेक्षा चरणानुयोग में कही-कही मोक्ष का कारण कहा है । उसका अर्थ ‘ऐसा है नहीं, निमित्त की अपेक्षा कथन किया है’ । वास्तव में तो शुभभाव किसी का भी हो, वह बन्ध का ही कारण है ऐसा जानना । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

एकदेश मोह-क्षोभ का अभाव होने पर जो-जो शुभ परिणाम होते हैं, उन्हें उपचार से धर्म कहा जाता है। वास्तव में तो वह वीतरागता का शत्रु है किन्तु निमित्त का ज्ञान कराने के लिए व्यवहारनय से ऐसा कथन आता है।

(ख) भगवान् कुन्द-कुन्द, अमृतचन्द्रादि आचार्यों ने शुभभाव को अपवित्र, जडस्वभावी, दुःखरूप, लाख के समान, अनित्य, अध्रुव, अशरण, वर्तमान में दुःखरूप, आगामी भी दुःखरूप कहा है तब कोई मूर्ख शुभभावों से मोक्ष या सत्वर-निर्जरा कहे, आश्चर्य है।

[समयसार गा० ७२ ७४]

चौथे गुणस्थान से शुरू होकर यथाख्यातचारित्र्य तक साथ रहने में विरोध नहीं है। जैसे अन्धकार और प्रकाश के तथा सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान के साथ रहने में विरोध हैं, वैसे ही चौथे गुणस्थान से लेकर यथाख्यातचारित्र्य तक ज्ञानधारा और कर्मधारा के साथ रहने में विरोध नहीं है। यथाख्यातचारित्र्य प्रगट होने पर कर्मधारा का अभाव हो जाता है।

(ग) जब तक पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री और परलक्षी-ज्ञान की मिठास रहेगी, तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव की श्रद्धा भी नहीं हो सकती अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी और जब तक पर्याय में शुभभाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

[समयसार गा० १६०]

(७) सोह और अनुभव

(अ) 'सोह' शब्द का तो अर्थ यह है 'सो मैं हूँ'। यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए कि—'सो' कौन? तब उसका निर्णय करना चाहिए। क्योंकि 'तत्' शब्द को और 'यत्' शब्द को नित्य सम्बन्ध है। इसलिए वस्तु का निर्णय करके उसमें अहंबुद्धि धारण करने में "सोह" शब्द बनता है। वहाँ भी आपको आपरूप अनुभव करे, वहाँ तो "सोह" शब्द

सम्भव नहीं है, परको अपने रूप बतलाने में “सोह” शब्द सम्भव है। जैसे—पुरुष आपको आप जाने, वहाँ “सो मैं हूँ” ऐसा किसलिए विचारेंगा ? कोई अन्य जीव जो अपने को न पहिचानता हो और कोई अपना लक्षण न जानता हो, तब उससे कहते हैं—‘जो ऐसा है सो मैं हूँ’ उसी प्रकार यहाँ जानना । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १२१]

(आ) ‘तत्’ शब्द है वह ‘यत्’ शब्द की अपेक्षा सहित है इसलिए जिसका प्रकरण हो उसे ‘तत्’ कहते हैं और जिसका जो भाव अर्थात् स्वरूप है उसे तत्त्व जानना, क्योंकि ‘तस्य भावस्तत्त्वम्’ ऐसा तत्त्व शब्द का समास होता है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

(इ) ४-५-६ गुणस्थान में शुद्ध के साथ शुभ से भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती है । परन्तु शुद्ध के साथ शुभ होने से (वह शुभ शत्रु है बध का कारण है आत्मा का नाश करने वाला है, घातक है) शत्रु को भी भूमिकानुसार आ पड़ने से सहचारी (निमित्त) व्यवहारनय कहा है । परन्तु ज्ञानी का शुभ भाव भी बन्ध का कारण है, हेय है, आत्मा के स्वभाव में विघ्नकारक है, इसलिए त्याज्य है ।

(ई) जो श्रद्धा में शुभ को मोक्ष का कारण माने वह मिथ्यादृष्टि ही होता है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६]

(उ) दिगम्बर नाम धराके अपने को शुभरूप का श्रद्धान-ज्ञान और आचरण करता है अर्थात् अपने को अणुव्रती, महाव्रती आदि मानता है उसे ‘सोह’ शब्द लागू नहीं हो सकता है ।

(द) (अ) आत्मा का अनुभव किस गुणस्थान में होता है ?

उत्तर—चौथे से ही होता है, परन्तु चौथे में तो बहुत काल के अन्तराल से होता है और ऊपर के गुणस्थानों में शीघ्रातिशीघ्र होता है ।

(आ) प्रश्न—अनुभव तो निर्विकल्प है, वहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थानों में भेद क्या है ?

उत्तर—परिणामों की मग्नता में विशेष है । जैसे दो पुरुष नाम

लेते हैं और दोनों ही के परिणाम नाम में हैं, वहाँ एक को तो मग्नता विशेष है और एक को थोड़ी है। उसी प्रकार यहाँ जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी में पृष्ठ ७]

(इ) प्रश्न—ऐसा अनुभव किस भाव में होता है ?

उत्तर—वह परिणमन आगम भाषा से औपशमिक, क्षायोपशमिक क्षायिक ऐसे तीन भावरूप कहलाता है और अध्यात्मभाषा से 'शुद्धात्म अभिमुख परिणाम शुद्धोपयोग' इत्यादि पर्याय-सज्ञा नाम पाते हैं। यह भावनारूप (एकाग्रतारूप) मोक्षकारणभूत पर्याय है।

चौथे गुणस्थान में यह तीनों भाव होते हैं इसलिए चौथे गुणस्थान से अनुभव होता है। [समयसार जयसेनाचार्य टीका गा० ३२०]

(ई) चौथे गुणस्थान में सिद्धसमान क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है इसलिए सम्यक्त्व तो केवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी में पृष्ठ ४)

(६) शुद्ध आत्मा में ही प्रवृत्ति करना योग्य है

मैं यह मोक्ष अधिकारी ज्ञायक स्वभावी आत्मतत्त्व के परिज्ञान-पूर्वक ममत्व के त्यागरूप और निर्ममत्व में ग्रहणरूप विधि के द्वारा सर्व उद्यम से शुद्ध आत्मा में प्रवर्तता हूँ। क्योंकि मेरे में अन्य कृत्य (महाव्रतादि) का अभाव है।

इस प्रकार से प्रथम तो मैं स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ। केवल ज्ञायक होने से मेरा विश्व के साथ भी सहज ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध ही है। परन्तु अन्य लक्षणादि सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मेरा किसी के भी प्रत्ये ममत्व नहीं, सर्वत्र निर्ममत्व ही हूँ।

“अब एक ज्ञायक भाव का सर्व ज्ञेयो को जानने का स्वभाव होने से” क्रम से प्रवर्तता अनन्त, भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय समूह वाला, अगाध स्वभाव और गम्भीर ऐसा समस्त द्रव्य मात्र को जानता हूँ। क्योंकि सब द्रव्य ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गए हो, चित्रित हो गए हो, भीतर घुस गए हो, कीलित हो गए हो, डूब गये हो, समा गये हो,

प्रतिविम्बित हुए हो, ऐसा एक क्षण में ही जो (शुद्ध आत्मा) प्रत्यक्ष करता है। ज्ञेय ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध की अनिवार्यता के कारण ज्ञेय-ज्ञायक को भिन्न करना अशक्य होने से, विश्व रूपता को प्राप्त होने पर भी जो (शुद्ध आत्मा) सहज शक्ति ज्ञायक स्वभाव द्वारा एक-रूपपने को छोड़ता नहीं है।

जो अनादि ससार से आज स्थिति तक (ज्ञायक स्वभाव रूप से ही) रहा है और जो मोह के द्वारा अन्यथा अवस्थित होता है (अर्थात् दूसरे प्रकार जानता मानता है) वह शुद्ध आत्मा को यह मैं मोह को जड़ मूल से उखाड़कर अति निष्कम्प वर्तता हुआ, यथास्थित ही (जैसा है वैसा ही) प्राप्त करता है।

इस प्रकार दर्शन विजुद्ध जिसका मूल है ऐसा जो सम्यग्ज्ञान में उपयुक्त रूप होने के कारण अव्यावाध लीनता होने से, साधु होने पर भी साक्षात् सिद्धभूत ऐसा निज आत्मा को, वैसे ही तथाभूत (सिद्ध-भूत) परमात्माओं को, वैसे ही एक परायणपणा जिसका लक्षण है, ऐसा भावनमस्कार सदा ही स्वयमेव हो।

[प्रवचनसार गाथा २०० की टीका से]

(१०) राग के अवलम्बन बिना चोतराग का मार्ग है।

(अ) निश्चय स्वभाव के आश्रित मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (आ) निज परमात्मा की भावना मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (इ) औपशमिकादि भाव वह मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (ई) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र वह मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (उ) शुद्ध उपादान कारण वह मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (ऊ) भावश्रुत ज्ञान वह मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (ए) शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम वह मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (ऐ) शुद्धात्मा का ध्यान रूप मोक्षमार्ग है—उसमें राग का अवलम्बन नहीं है। (ओ) शुद्धोपयोग

वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नहीं है । (ओ) वीतराग भाव वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नहीं है ।

प्रश्न—तीन बातें कौन-कौन सी याद रखनी चाहिए ?

(१) अपनी आत्मा के अलावा पर द्रव्यों से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है । (२) अपनी पर्याय मे एक समय की भूल है । (३) भूल रहित स्वभाव मैं हूँ, ऐसा जानकर भूतार्थ के आश्रय से अपने मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की प्राप्ति करना ही प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य है ।

प्रश्न—११—आत्महित के लिए प्रयोजनभूत कार्य क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है । उसका चतुष्टय स्वतन्त्र है इसलिए पर को अपना मानना छोड़ । (२) दूसरे, जब वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र है, तो तू उसमे क्या करेगा ? अगर वह तेरे द्वारा की हुयी परिणमेगी, तो उसका परिणमन स्वभाव व्यर्थ हो जायेगा और जो शक्ति जिसमे है ही नहीं, वह दूसरा देगा भी कहा से ? इसलिए मैं इसका ऐसा परिणमन करा दूँ या यह यूँ परिणमे तो ठीक । यह पर की कर्तृत्व बुद्धि छोड़ । (३) तीसरे जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छू भी नहीं सकता, सो भोगना क्या ? अतः यह जो पर के भोग की चाह है इसे छोड़ । यह तो नास्ति का उपदेश है, किन्तु इस कार्य की सिद्धि 'अस्ति' से होगी और वह इस प्रकार है कि जैसे कि तुझे मालूम है तेरी आत्मा मे दो स्वभाव हैं एक त्रिकाली स्वभाव-अवस्थित, दूसरा परिणाम पर्याय धर्म । अज्ञानी जगत तो अनादि से अपने को पर्याय बुद्धि से देखकर उसी मे रत है । तू तो ज्ञानी बनना चाहता है । अपने को त्रिकाली स्वभावरूप समझ । वैसा ही अपने को देखने का अभ्यास कर । यह जो तेरा उपयोग पर मे भटक रहा है । उसको पर की ओर न जाने दे, स्वभाव की ओर इसे मोड़ । जहाँ तेरी पर्याय ने पर के वजाये अपने घर को पकड़ा और निज समुद्र मे मिली तो स्वभाव-पर्याय प्रगट हुई । बस उस स्वभाव पर्याय प्रगट होने का नाम ही

सम्यग्दर्शन है । तीन काल और तीन लोक में इसकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है । इसके होने पर तेरा पूर्व का सब ज्ञान सम्यक् होगा । ज्ञान का झुकाव [पर से हटकर स्व में होने लगेगा । ये दोनों गुण जो अनादि से ससार के कारण बने हुए थे ये फिर मोक्षमार्ग के कारण होंगे । ज्यो-ज्यो ये पर से छूटकर, स्वघर में आते रहेंगे त्यो-त्यो उपयोग की स्थिरता आत्मा में होती रहेगी । स्व को स्थिरता का नाम ही चारित्र्य है और वह स्थिरता बनै शनै पूरी होकर, तू अपने स्वरूप में जा मिलेगा अर्थात् सिद्ध हो जाएगा ।

प्रश्न (१२)—कभी सम्यग्दर्शनादि को बंध का कारण और कभी शुभ-भावों को मोक्ष का कारण क्यों कहते हैं ?

उत्तर—(अ) शास्त्रों में कभी-कभी दर्शन-ज्ञान चारित्र्य को भी यदि वे परसमय-प्रवृत्ति (राग) युक्त हो तो, कथञ्चित् का कारण कहा जाता है और कभी ज्ञानी को वर्तते हुए शुभभावों को भी कथञ्चित् मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है । शास्त्रों में आने वाले ऐसे भिन्न-भिन्न, पद्धति के कथनों को सुलझाते हुए यह सारभूत वास्तविकता ध्यान में रखना चाहिए कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय वर्तती है तब वह मिश्र पर्याय एकान्त से सवर-निर्जरा मोक्ष का कारणभूत नहीं होती अथवा एकान्त से आस्रव-वध का कारणभूत नहीं होती परन्तु उस मिश्र पर्याय, का शुद्ध अश सवर-निर्जरा मोक्ष का कारणभूत होता है और अशुद्ध अश आस्रव वध का कारणभूत होता है ।

[पचास्तिकाय गा० १६४ टीका तथा फुटनोट]

(आ) ज्ञानी को शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय में जो भक्ति-आदि रूप शुभ अश वर्तता है वह तो मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो शुद्ध अश वर्तता है वह सवर निर्जरा का तथा (उत्तम अश में) मोक्ष का हेतु है । वास्तव में ऐसा होने पर भी शुद्ध अश में स्थित सवर-निर्जरा-मोक्ष हेतुत्व का

आरोप और उसके साथ के भक्ति आदि शुभ अश में उपचार करके उन शुभभावों को देवलोकादि के वलेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्ष प्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है। यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है ऐसा समझना। [ऐसा कथंचित् मोक्ष हेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तते हुए भक्ति आदिरूप शुभभावों में किया जा सकता है। अज्ञानी को तो शुद्धि का अशमात्र भी परिणमन ना होने से यथार्थ मोक्ष हेतु बिल्कुल प्रकट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभभावों में आरोप किसका किया जाये ?]

[पचस्तिकाय गा० १७० टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न १३—व्यवहार मोक्षमार्ग को कैसे प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर—यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जीव व्यवहार मोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है; अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चय नय के—द्रव्यार्थिक नय के—विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं होता अर्थात् चोथे गुणस्थान से पहले व्यवहार मोक्षमार्ग का प्रारम्भ भी नहीं होता।

[पचास्तिकाय गा० १६१ टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न १४—निश्चय व्यवहार का साध्य-साधनपना किस प्रकार है ?

उत्तर—“निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है” ऐसा जो कहा गया है वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि ‘छठे गुणस्थान में वर्तते हुए शुभ विकल्पो को नहीं, किन्तु छठे गुणस्थान में वर्तते हुए शुद्धि के अश को और सातवें गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग को वास्तव में साध्य-साधनपना है। छठे गुणस्थान में वर्तता हुआ शुद्धि का अश बढ़कर, जब और

जितने काल तक उग्रशुद्धि के कारण शुभ विकल्पो का भी अभाव वर्तता है, तब और उतने काल तक सातवे गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग होता है । [पचास्तिकाय गा० १६१ टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न (१५)—द्रव्यलिङ्गी मुनि को मोक्षमार्ग क्यों नहीं है ?

उत्तर—अज्ञानी द्रव्यलिङ्गी मुनि का अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात् उसे (द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं है अर्थात् अज्ञानी के नी पदार्थ का श्रद्धान, आचारादि के ज्ञान तथा पटकाय के जीवो की रक्षारूप चारित्र को व्यवहार मोक्षमार्ग की सज्ञा भी नहीं है । निश्चय के बिना व्यवहार कैसा ? पहले निश्चय हो तो व्यवहार पर आरोप दिया जाए ।

[पचास्तिकाय गा० १६० के भावार्थ में से]

प्रश्न १६—द्रव्यलिङ्गी मुनि के निश्चय रत्नत्रय क्यों प्रकट नहीं होता ?

उत्तर—(१) पहले दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप राग रहित जाने और उसी समय 'राग धर्म नहीं है या धर्म का साधन नहीं है' ऐसा माने । ऐसा मानने के बाद जब जीव राग को तोड़कर अपने ध्रुव स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प होता है तब निश्चय मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है और तभी शुभ विकल्पो पर व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप आता है । (२) द्रव्यलिङ्गी तो उपचरित धर्म को ही निश्चय धर्म मानकर उस ही का निश्चयवत् सेवन करता है उसका व्यय करके निर्विकल्प नहीं होता । व्यवहार करते-करते निश्चय कभी प्रकट नहीं होता, किन्तु व्यवहार का व्यय करके निश्चय प्रकट होता है । (३) व्यवहार होता परलक्ष से है, निश्चय होता स्वाश्रय से है बड़ा अन्तर है । लार्डन ही दोनों की भिन्न-भिन्न है । जब भव्य स्व सन्मुखता के बल से स्वरूप की तरफ झुकता है तब स्वयमेव सम्यग्दर्शनमय, सम्यक्-ज्ञानमय तथा सम्यक्चारित्रमय हो जाता है । इसलिए वह स्व से

अभेदरूप रत्नत्रय की दशा है और वह यथार्थ वीतराग दशा होने के कारण निश्चय रत्नत्रयरूप है । इससे यह बात माननी पड़ेगी कि जो व्यवहार रत्नत्रय है वह यथार्थ रत्नत्रय नहीं है । इसलिए उसे हेय कहा जाता है । (४) यह साधु मात्र उसी में ही लगा रहे तो उसका तो वह व्यवहार मार्ग, मिथ्यामार्ग है और निरूपयोगी है । यो कहना चाहिए कि उस साधु ने उसे हेयरूप न जानकर यथार्थरूप समझ रक्खा है । जो जिसे यथार्थ जानता और मानता है वह उसे कदापि नहीं छोड़ता । इसलिए उस साधु का व्यवहार मार्ग मिथ्यामार्ग है अथवा वह अज्ञानरूप ससार का कारण है उसे ससार तत्व कहा है ।

मुनिव्रत धार अनन्तवार श्रोवक उपजायो ।

पे निज आत्म ज्ञान बिना सुख लेश न पायो ॥

(१७) व्यवहार-निश्चय का सार

(१) निश्चय स्वद्रव्याश्रित है । जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है, इसलिए उसके कथन का जैसा का तैसा अर्थ करना ठीक है । (२) व्यवहार पर्यायाश्रित तथा पर द्रव्याश्रित वर्तता है । जीव के औपाधिक भाव, अपूर्ण भाव, परवस्तु अथवा निमित्त का अवलम्बन लेकर वर्तता है । इसलिए उसके कथन के अनुसार अर्थ करना ठीक नहीं है, असत्य है । जैसे—जीव पर्याप्त, जीव अपर्याप्त, जीव सूक्ष्म, जीव वादर, जीव पचेन्द्रिय, जीव रागी आदि यह सब व्यवहार कथन है । जीव चेतनमय है—पर्याप्त नहीं, जीव चेतनमय है—अपर्याप्त नहीं, जीव चेतनमय है—सूक्ष्म-वादर नहीं, जीव चेतनमय है—रागी नहीं, ये निश्चय कथन सत्यार्थ है ।

(१८) निश्चयनय स्वाश्रित है अनेकान्त और व्यवहारनय पराश्रित है—निमित्ताश्रित है । उन दोनों को जानकर निश्चय स्वभाव के आश्रय से पराश्रित व्यवहार का निषेध करना सो अनेकान्त है, परन्तु —(१) यह कहना कि कभी स्वभाव से धर्म होता है और कभी व्यव-

हार से भी धर्म होता है यह अनेकान्त नहीं, प्रत्युत एकान्त है। (२) स्वभाव से लाभ है और कोई देव शास्त्र-गुरु भी लाभ करा देते हैं यो मानने वाला दो तत्वों को एक मानता है, अर्थात् वह एकान्तवादी है। (३) यद्यपि व्यवहार और निश्चय दोनों नय हैं, परन्तु उनमें से एक व्यवहार को मात्र 'है' यो मानकर उसका आश्रय छोड़ना और दूसरे निश्चय को आदरणीय मानकर उसका आश्रय लेना, यह अनेकान्त है।

प्रकरण छठवाँ

निश्चय-व्यवहारनयाभाषावलम्बी का स्वरूप

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४८ से २५७ के अनुसार]

केऊ नर निहचै करि आतम को शुद्धिमान
भये हैं स्वच्छन्द न पिछाने निज शुद्धता ॥१॥
केऊ व्यवहार दान शील तप भाव ही को
आतम को हित जान छाडत न मुद्धता ॥२॥
केऊ नर व्यवहारनय निहचै के मारग
भिन्न-भिन्न जान यह बात करे उद्धता ॥३॥
जब जाने निहचै के भेद व्यवहार सब
कारन को उपचार माने तब बुद्धता ॥४॥
इस भव तरू का मूल इक जानहु मिथ्या भाव
ताको करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥५॥

प्रश्न १—निश्चय-व्यवहार को समझने-समझाने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—दुःख के अभाव और सुख की प्राप्ति के निमित्त निश्चय व्यवहार को समझने-समझाने की आवश्यकता है।

प्रश्न २—सातवाँ अधिकार लिखने का विकल्प किसके निमित्त हेय बुद्धि से आया है ?

उत्तर—(१) जो जीव दिगम्बर धर्मी है। (२) जिन आज्ञा को

मानते हैं। (३) निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करते हैं। (४) सच्चे देव गुरु और सच्चे शास्त्रों को ही मानते हैं अन्य को नहीं मानते हैं, फिर भी उनके मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता—ऐसे दिगम्बर धर्मियों के मिथ्यात्वादि के अभाव और सम्यक्त्वादि की प्राप्ति के निमित्त सातवाँ अधिकार लिखने का विकल्प हेय बुद्धि से आया है।

प्रश्न ३—सातवाँ अधिकार मात्र दिगम्बर धर्मियों के निमित्त है, अन्य के लिए नहीं। यह बात आपने कहाँ से निकाली ?

उत्तर—पाँचवे अधिकार में श्वेताम्बर, मुंहपट्टी आदि को अन्य-मतावलम्बी कहा है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १५८]

प्रश्न ४—सातवें अधिकार के दोहे में क्या बतलाया है ?

उत्तर—इस भवरूपी वृक्ष का मूल एक मात्र मिथ्यात्व भाव है। उसको निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्व भाव सात व्यसनों से भी भयकर महा पाप है।

प्रश्न ५—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिन आज्ञा को मानते हैं, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करते हैं, सच्चे देवादिको ही मानते हैं—फिर भी उनके मिथ्यात्वादि का अभाव क्यों नहीं होता है ?

उत्तर—जिन आज्ञा किस अपेक्षा से है, निश्चय-व्यवहार का स्वरूप कैसा है, सच्चे देवादि क्या कहते हैं—आदि बातों का यथार्थ ज्ञान न होने से मिथ्यात्वादि का अभाव नहीं होता है।

प्रश्न ६—हम दिगम्बर धर्मी अन्य कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को मानते ही नहीं हैं क्योंकि हम वीतरागी प्रतिमा को पूजते हैं, २८ मूलगुण धारी नग्न भार्वाङ्गी मुनि को पूजते हैं और उनके कहे हुए सच्चे शास्त्रों का अभ्यास करते हैं—तो हम किस प्रकार मिथ्यादृष्टि हैं ?

उत्तर—सत्तास्वरूप में प० भागचन्द्र छाजेड ने कहा है कि—दिगम्बर जैन कहते हैं कि हम तो सच्चे देवादि को मानते हैं इसलिए हमारा गृहीत मिथ्यात्व तो छूट गया है। तो उनसे कहते हैं कि नहीं तुम्हारा गृहीत मिथ्यात्व नहीं छूटा है, क्योंकि तुम गृहीत मिथ्या

को जानते ही नहीं। मात्र अन्य देवादि को मानना ही गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप नहीं है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा बाह्य में भी यथार्थ व्यवहार जानकर करना चाहिए। सच्चे व्यवहार को जाने बिना कोई देवादि की श्रद्धा करे, तो वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न ७—(१) स्थूल मिथ्यात्व और (२) सूक्ष्म मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—(१) देव-गुरु-शास्त्र के विषय में भूल स्थूल मिथ्यात्व है। (२) प्रयोजन भूत सात तत्त्वों में विपरीतता, निश्चय व्यवहार में विपरीतता और चारों अनुयोगों की कथन पद्धति का पता न होना—यह सूक्ष्म मिथ्यात्व है।

प्रश्न ८—जिनाज्ञा किस अपेक्षा से है—इसका ज्ञान करने के लिये क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर—निश्चय-व्यवहार का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि जिनागम में निश्चय-व्यवहार रूप वर्णन है।

(१) निश्चय व्यवहार का स्पष्टीकरण

प्रश्न ९—निश्चय-व्यवहार का लक्षण क्या है ?

उत्तर—यथार्थ (वास्तव) का नाम निश्चय है, उपचार (आरोप) का नाम व्यवहार है।

प्रश्न १०—यथार्थ का नाम निश्चय; उपचार का नाम व्यवहार; को किस-किस प्रकार जानना चाहिए ?

उत्तर—(अ) जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा निर्मल शुद्ध परिणति (पर्याय) को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (आ) जहाँ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ भूमिकानुसार शुभ भावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (इ) जहाँ जीव के विकारी भावों को यथार्थ का नाम

निश्चय कहा हो, उसकी अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है ।

प्रश्न ११—(१) शास्त्रो मे कहीं विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय, कहीं शुद्ध भावो को यथार्थ का नाम निश्चय तथा कहीं त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है और (२) कहीं द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार, कहीं शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार तथा कहीं शुद्ध भावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा है । इससे तो हमको भ्रान्ति होती है कि कियको निश्चय कहे और किसको व्यवहार कहे ?

उत्तर—अरे भाई ! यह भ्रान्ति मिटाने के लिए ही किस अपेक्षा यथार्थ का नाम निश्चय कहा है और किस अपेक्षा उपचार का नाम व्यवहार कहा है यह मर्म समझ ले तो मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति हो जावे ।

प्रश्न १२—जीव के विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—पर्याय मे दोष अपने अपराध मे है, द्रव्यकर्म-नोकर्म के कारण नहीं है—इसका ज्ञान कराने के लिये शास्त्रो मे विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है ।

प्रश्न १३—निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—एक मात्र प्रगट करने योग्य है—इसलिए निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है ।

प्रश्न १४—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—एक मात्र आश्रय करने योग्य की अपेक्षा अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है क्योंकि इसी के आश्रय से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है ।

प्रश्न १५—द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—जब-जब विभाव-भाव उत्पन्न होते हैं तब-तब द्रव्यकर्म नोकर्म निमित्त होता है—इस अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्रश्न १६—भूमिकानुसार शुभ भावों को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग में शुद्धि अश के साथ किस-किस प्रकार का राग होता है अन्य प्रकार का राग नहीं होता है । यह ज्ञान कराने के लिए भूमिकानुसार शुभ भावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्रश्न १७—निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—अनादिअनन्त न होने की अपेक्षा से तथा आश्रय करने योग्य न होने की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्रश्न १८—“निर्मल शुद्ध परिणति-यथार्थ का नाम निश्चय और भूमिकानुसार शुभ भावों को उपचार का नाम व्यवहार” इस वोल को चौथे, पाचवें और छठवें गुणस्थानों में लगाकर बताओ ?

उत्तर—(अ) चौथे गुणस्थान में श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी साथ में अनन्तानुबन्धी के अभाव स्वरूप स्वरूपाचरण चारित्र्य प्रगटी से निश्चय सम्यग्दर्शन-यथार्थ का नाम निश्चय है । सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग तथा सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा वध का कारण होने पर भी सम्यग्दर्शन का आरोप करना-उपचार का नाम व्यवहार है । (आ) पाँचवें गुणस्थान में दो चीकड़ी कषाय के अभावरूप देशचारित्र्य-रूप निर्मल शुद्ध परिणति, निश्चय श्रावकपन्था—यथार्थ का नाम निश्चय है । बारह अणुव्रतादि का राग, बन्धरूप होने पर भी श्रावक-पन्ते का आरोप करना—उपचार का नाम व्यवहार है । (इ) छठवें

गुणस्थान मे तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकल चारित्ररूप, शुद्ध परिणति, निश्चय मुनिपना—यथार्थ का नाम निश्चय है । २८ मूलगुण आदि पालने का भाव, बन्धरूप होने पर भी मुनिपने का आरोप करना—उपचार का नाम व्यवहार है ।

प्रश्न १६—शुद्धि और अशुद्धि मे निश्चय-व्यवहार क्यो बतलाया है ?

उत्तर—मोक्ष नही हुआ है मोक्षमार्ग हुआ है । मोक्षमार्ग की शुरूआत होने पर चारित्रगुण की पर्याय मे शुद्धि-अशुद्धिरूप दो अश हो जाते है । उसमे शुद्धि अश वीतराग है वह सवर (मोक्षमार्ग) है और जो अशुद्धि अश सराग है वह बन्ध है । इसलिए शुद्धि अश को निश्चय और अशुद्धि अश को व्यवहार बतलाया है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २८८]

नप्रश्न २०—उभयाभासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चयाभासी के समान निश्चय को मानता है और व्यवहाराभासी के समान व्यवहार को मानता है—उसे उभयाभासी कहते हैं ।

प्रश्न २१—उभयाभासी की मान्यतायें क्या-क्या हैं ?

उत्तर—(१) वास्तव मे वीतराग भाव एक ही मोक्षमार्ग है, परन्तु उभयाभासी दो मोक्षमार्ग मानता है । (२) निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट करने योग्य उपादेय है और व्यवहार हेय है, परन्तु उभयाभासी दोनो को उपादेय मानता है । (३) निश्चय के आश्रय से धर्म होता है और व्यवहार के आश्रय से वध होता है परन्तु उभयाभासी कहता है कि हम श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं । आदि उल्टी मान्यताये उभयाभासी मे पाई जाती हैं ।

प्रश्न २२—निश्चयाभासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—भगवान ने जो बात शक्तिरूप बतलाई है, उसे प्रगट पर्याय मे मान लेना और भगवान ने शुभ भावो को बन्ध का कारण

हेय बताया है, तब शुभ भावों को छोड़कर अशुभ भावों में प्रवृत्ति करने वाले को निश्चयाभासी कहते हैं ।

प्रश्न २३—भगवान ने शक्तिरूप क्या बात बतलाई है, जिसे निश्चयाभासी प्रगट पर्याय में मान लेता है ?

उत्तर—(१) मैं सिद्ध समान शुद्ध हूँ, (२) केवलज्ञानादि सहित हूँ, (३) द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित हूँ, (४) परमानन्दमय हूँ, (५) जन्म-मरणादि दुःख मेरे नहीं हैं । यह बात भगवान ने शक्ति अपेक्षा बतलाई है, परन्तु निश्चयाभासी प्रगट पर्याय में मान लेता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६६]

प्रश्न २४—सातवें अधिकार के प्रारम्भ में निश्चयाभासी की चार भूलें कौन-कौन सी बताई हैं ?

उत्तर—(१) वर्तमान में आत्मा की ससार पर्याय होने पर भी सिद्धदशा मानता है । (२) वर्तमान में अल्पज्ञ दशा होने पर भी केवल ज्ञान मानता है । (३) रागादि वर्तमान पर्याय में होते ही नहीं हैं । (४) विकार का उत्पन्न होना द्रव्यकर्म के कारण मानता है ।

प्रश्न २५—शुभ भावों को बन्ध का कारण हेय बताया है । तब निश्चयाभासी कैसे-कैसे शुभ भावों को छोड़कर अशुभ में प्रवर्तता है ?

उत्तर—(१) शास्त्राभ्यास करना निरर्थक बतलाता है, (२) द्रव्यादिक के तथा गुणस्थान मार्गणा, त्रिलोकादिक के विचारों को विकल्प ठहराता है, (३) तपश्चरण करने को बृथा क्लेश करना मानता है; (४) व्रतादिक धारण करने को बन्धन में पड़ना ठहराता है, (५) पूजनादि कार्यों को शुभास्रव जानकर हेय प्ररूपित करता है, इत्यादि सर्व साधनों को उठाकर प्रमादी होकर परिणमित होता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २००]

प्रश्न २६—निश्चयाभासी के जानने से पात्र भव्य जीवों को क्या जानना-मानना चाहिए ?

उत्तर—पात्र भव्य जीवो को यह जानना चाहिये कि मेरे में सिद्धपने, केवलज्ञानादिपने की शक्ति मौजूद है। मेरी पर्याय में दोष है वह मेरे अपराध से ही है—ऐसा जानकर शक्तिवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करनी चाहिए।

प्रश्न २७—व्यवहाराभासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनागम में जहाँ व्यवहार की मुख्यता से उपदेश है उसे मानकर बाह्य साधनादिक ही का श्रद्धानादिक करते हैं उसे व्यवहाराभासी कहते हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१३]

प्रश्न २८—व्यवहाराभासियों में किस-किस प्रकार की उल्टी मान्यतायें पाई जाती हैं ?

उत्तर—(१) कोई कुल अपेक्षा धर्म को मानते हैं, (२) कोई परीक्षारहित शास्त्रों की आज्ञा को धर्म मानते हैं, (३) कोई परीक्षा करके जैनी होते हैं, परन्तु मूल प्रयोजनभूत बातों की परीक्षा नहीं करते हैं, (४) कोई सगति से जैन धर्म धारण करते हैं, (५) कोई आजीविका के लिए बड़ाई के लिये, जैन धर्म धारण करते हैं, (६) अरहन्तभक्ति-गुरुभक्ति-शास्त्र भक्ति का अन्यथारूप श्रद्धान करते हैं, सच्चा श्रद्धान नहीं करते हैं, (७) जीव-अजीव, आस्रव-वध, सवर-निर्जरा और मोक्ष : तत्त्वों का अन्यथारूप श्रद्धान करते हैं, (८) सम्यग्ज्ञान का अन्यथारूप का विश्वास करते हैं, (९) सम्यक्चारित्र का अन्यथारूप आचरण करते हैं। इस प्रकार प्रथम व्यवहार चाहिए, व्यवहार करते-करते निश्चय धर्म प्रगट हो जावेगा। ऐसी-ऐसी उल्टी मान्यतायें व्यवहाराभासियों में पाई जाती हैं। जिसका फल चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए निगोद है।

प्रश्न २९—“(१) यद्यपि इस प्रकार अगीकार करने में दोनों नयों के परस्पर विरोध हैं, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत में दो नय कहे हैं, उनमें से किसी को छोड़ा नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रम सहित दोनों

साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना ।” इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) मैं निश्चय से सिद्ध समान शुद्ध हूँ—केवलज्ञानादि सहित हूँ और व्यवहार से ससारी हूँ, मति-श्रुतज्ञान सहित हूँ—यद्यपि इस प्रकार निश्चय-व्यवहार अंगीकार करने में दोनों नयों में परस्पर विरोध है। क्या विरोध है ? उत्तर—एक ही समय में पर्याय अपेक्षा सिद्ध भी हो और ससारी भी हो। एक ही समय में पर्याय अपेक्षा केवलज्ञान-केवलदर्शन भी हो और मति-श्रुतज्ञान चक्षु-अचक्षुदर्शन भी हो—ऐसा कभी भी नहीं हो सकता है। (२) तथापि करें क्या ? उन्मत्त जैसी दशा हो जाती है। उन्मत्त जैसी दशा क्यों हो जाती है ? उत्तर—सच्चा तो निश्चय व्यवहार दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं। (३) सच्चा निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का स्वरूप भासित न होने का क्या फल हुआ ? उत्तर—जिनमत में निश्चय-व्यवहार दो नय कहे हैं इनमें से (निश्चय-व्यवहार में से) किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, ऐसा मानकर दोनों नयों का साधन करता है। (४) १० टोडरमल जी क्या बतलाते हैं ? इसलिए भ्रमसहित निश्चय-व्यवहार दोनों का साधन साधने वाले जीवों को मिथ्यादृष्टि जानना ।

प्रश्न ३०—“(१) यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनों नयों के परस्पर विरोध हैं, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत में दो नय कहे हैं, उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रमसहित दोनों का साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना ।” इस वाक्य पर उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय व्यवहार मुनिपने को कैसा मानता है ?

उत्तर—(१) सकलचारित्र पर्याय में प्रगट न होने पर भी सकल-चारित्र मुझे है यह निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि का पालन

व्यवहार मुनिपना—इस प्रकार अंगीकार करने में निश्चय-व्यवहार मुनिपने के परस्पर विरोध है । (२) उभयाभासी क्या करे ? सच्चा तो निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप भासित हुआ नहीं । (३) सच्चा निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप भासित न होने का क्या फल हुआ ? उत्तर—जिनमत में निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का मुनिपना कहा है । उनमें से (निश्चय-व्यवहार मुनिपने में से) किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, ऐसा मानकर निश्चय-व्यवहार मुनिपने का साधन अपने को मानता है । (४) प० टोडरमल जी उभयाभासी के निश्चय व्यवहार मुनिपने के साधन को क्या बतलाते हैं ? इसलिए भ्रमसहित निश्चय-व्यवहार मुनिपने के साधन साधने वाले जीवों को मिथ्यादृष्टि जानना ।

प्रश्न ३१—“(१) यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनों नयों के परस्पर विरोध है, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत में दो नय कहे हैं, उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रम सहित दोनों का साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना ।” इस उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार श्रावकपने को कैसा मानता है ? स्पष्टता से समझाइए ।

उत्तर—प्रश्न ३० के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ३२—उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार सम्यक्दर्शन को कैसा मानता है—इस पर प्रश्न और उत्तर की स्पष्टता करो ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ३० के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ।

प्रश्न ३३—उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार इर्यासमिति को कैसा मानता है—इस पर प्रश्न और उत्तर की स्पष्टता करो ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ३० के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ।

(२) "वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है।"

प्रश्न ३४—क्या निश्चय-व्यवहार दो मोक्षमार्ग हैं ?

उत्तर—विल्कुल नहीं, क्योंकि मोक्षमार्ग तो एक वीतराग भाव ही है दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। परन्तु मोक्षमार्ग का कथन का दो प्रकार से है।

प्रश्न ३५—उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग क्यों मानता है ?

उत्तर—अपने ज्ञान की पर्याय में निर्णय करके यथावत निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को नहीं पहिचानने के कारण उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानता है।

प्रश्न ३६—उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानता है, उसे प० टोडरमल जी ने क्या बताया है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये तो निश्चय मोक्षमार्ग है। और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी हैं उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र (चारों अनुयोगों में) ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, इसलिए निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मोक्षमार्ग जानना। [किन्तु] एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है--इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

प्रश्न ३७—निमित्त व सहचारी हो, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जावे सो व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसमें निमित्त व सहचारी ऐसे दो शब्द कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग होने पर ज्ञानी का शुभभाव निमित्त है और सहचारी भी है। परन्तु अशुभ भाव सहचारी तो है परन्तु निमित्त नहीं है। अतः मोक्षमार्ग होने पर जिस भाव में निमित्त व सहचारीपना पाया जावे उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है। यह बतलाने के

लिए निमित्त व सहचारी दो शब्द आचार्यकल्प प० टोडरमल जी ने डाले हैं।

प्रश्न ३८—क्या निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन—ऐसे दो प्रकार के सम्यग्दर्शन हैं ?

उत्तर—नहीं, सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है दो प्रकार का नहीं है, किन्तु उसका कथन दो प्रकार से है। जहाँ श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय को सच्चा सम्यग्दर्शन निरूपण किया है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है, तथा देव-गुरु-शास्त्र का राग जो सम्यग्दर्शन तो नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन का निमित्त व सहचारी है उसे उपचार से सम्यग्दर्शन कहा जाता है। किन्तु व्यवहार सम्यग्दर्शन को सच्चा सम्यग्दर्शन माने तो वह श्रद्धा मिथ्या है, क्योंकि निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है अर्थात् सच्चा निरूपण वह निश्चय और उपचार निरूपण वह व्यवहार है। निरूपण की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो प्रकार कहे हैं, किन्तु एक निश्चय सम्यग्दर्शन है और एक व्यवहार सम्यग्दर्शन है—इस प्रकार दो सम्यग्दर्शन मानना वह यिथ्या है।

प्रश्न ३९—क्या निश्चय चारित्र और व्यवहारचारित्र—ऐसा दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४०—क्या निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना—ऐसा दो प्रकार का श्रावकपना है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४१—क्या निश्चय मुनिपना और व्यवहार मुनिपना—ऐसा दो प्रकार का मुनिपना है ?

उत्तर—प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४२—क्या निश्चय एषणा समिति और व्यवहार एषणा समिति—ऐसी दो प्रकार की एषणासमित हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४३—क्या निश्चय कायगुप्ति और व्यवहार कायगुप्ति—
ऐसी दो प्रकार की कायगुप्ति हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४४—क्या निश्चय उत्तमक्षमा और व्यवहार उत्तमक्षमा—
ऐसी दो प्रकार की उत्तमक्षमा है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४५—क्या निश्चय क्षुधापरिषहजय और व्यवहार क्षुधापरि-
षहजय—ऐसी दो प्रकार की क्षुधापरिषहजय हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४६—क्या निश्चय अनित्य भावना और व्यवहार अनित्य
भावना—ऐसी दो प्रकार की अनित्य भावना हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४७—निश्चय और व्यवहार के विषय में चरणानुयोग का
क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—(अ) एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावक
दशा मुनिदशा होती है, क्योंकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया
जाता है। ऐसा जानकर श्रावक-मुनिधर्म के विशेष पहिचानकर जैसा
अपना वीतराग भाव हुआ हो—वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं।
वहाँ जितने अश मे वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते हैं, जितने
अश मे राग रहता है, उसे हेय जानते हैं। सम्पूर्ण वीतरागता को परम
धर्म मानते हैं—ऐसा चरणानुयोग का प्रयोजन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७१]

(आ) धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है, उसके साधनादिक
उपचार से धर्म है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७]

(इ) निश्चय धर्म तो वीतरागभाव है, अन्य नाना विशेष बाह्य
साधन की अपेक्षा उपचार से किए हैं उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा
जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(ई) व्यवहार नाम उपचार का है। सो महाव्रतादि होने पर ही वीतरागचारित्र होता है—ऐसा सम्बन्ध जानकर महाव्रतादि में चारित्र का उपचार किया है, निश्चय से नि कषाय भाव है, वही सच्चा चारित्र है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३०]

(उ) वीतराग भावों के और व्रतादि के कदाचित् कार्य कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथन मात्र ही है, परमार्थ से बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

(ऊ) व्रत-तप आदि मोक्षमार्ग है नहीं (परन्तु जिनको निश्चय प्रगटा है उस जीव को) निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं। इसलिए इन्हे व्यवहार कहा है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

प्रश्न ४८—क्या वीतराग चारित्र और सराग चारित्र—ऐसा दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—नहीं, चारित्र तो मात्र वीतरागभाव रूप ही है, सराग चारित्र तो दोषरूप है। जैसे चावल दो प्रकार के हैं—एक तुष सहित है और एक तुष रहित हैं। वहाँ ऐसा जानना कि तुष है वह चावल का स्वरूप नहीं है, चावल में दोष है। कोई समझदार तुष सहित चावल का संग्रह करता था, उसे देखकर कोई भोला तुषों को ही चावल मानकर संग्रह करे तो वृथा खेदखिन्न ही होगा, वैसे ही चारित्र दो प्रकार का कहा है—एक वीतराग है, एक सराग है। वहाँ ऐसा जानना कि—जो राग है—वह चारित्र का स्वरूप नहीं है, चारित्र में दोष है। तथा कितने ही ज्ञानी प्रशस्त-राग सहित चारित्र धारण करते हैं, उन्हें देखकर कोई अज्ञानी प्रशस्त राग को ही चारित्र मान कर संग्रह करे तो वृथा खेदखिन्न ही होगा।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४५]

प्रश्न ४६—समयसार कलश ११० में मोक्षमार्ग में शुद्धिअंश अशुद्धिअंश के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—एक जीव में शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही पाल में होता है। परन्तु जितना अश शुद्धपना है—उतना अश कर्मक्षपण है। जितना अश अशुद्धपना है उतना अश कर्मवध होता है। एक ही काल में दोनों कार्य होते हैं ऐसा ही है, सन्देह नहीं करना। [द्रव्यसंग्रह गा० ४७ तथा पुरुषार्थ सिद्धि उपाय गा० २१३ से २१४ में ऐसा ही कहा है।]

(३) शुद्धि प्रगट करने योग्य उपादेय व्यवहार हेय है।

प्रश्न ५०—मोक्षमार्ग में हेय-उपादेय किस प्रकार है ?

उत्तर—शुद्धि अश प्रगट करने योग्य उपादेय है और अशुद्धि अश हेय है।

प्रश्न ५१—चौथे गुणस्थान में हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान में श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगट हो जाती है—वह निश्चय सम्यग्दर्शन है तथा अनन्तानुबन्धी क्रोधादि के अभावरूप स्वरूपाचरणचारित्र्य प्रगट हो जाता है—यह तो प्रगट करने योग्य उपादेय है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अस्थिरता का राग तथा सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा, यह हेय है।

प्रश्न ५२—पाँचवें गुणस्थान में हेय उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी कषाय के अभावरूप देशचारित्र्य रूप शुद्ध प्रगट करने योग्य उपादेय है। वारह अणुव्रतादिक का अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय है।

प्रश्न ५३—छठे गुणस्थान में हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—छठे गुणस्थान में तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकल चारित्र्यरूप शुद्धि प्रगट करने योग्य उपादेय है। २८ मूलगुणादि के पालन का अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय है।

प्रश्न ५४—उभयाभासी शुद्धि अंश और अशुद्धि अंश को क्या जानता है ?

उत्तर—शुद्धि अंश निश्चय और अशुद्धि अंश व्यवहार—इस प्रकार दोनों को उपादेय मानता है ।

प्रश्न ५५—उभयाभासी मोक्षमार्ग में निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है—इस विषय में प० जी ने क्या कहा है ?

उत्तर—निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है । समयसार ११वीं गाथा में कहा है कि व्यवहार अभूतार्थ है, सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता, किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है । इस प्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है ।

प्रश्न ५६—क्या निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि निश्चय सम्यक्दर्शन प्रगट करने योग्य उपादेय है और व्यवहार सम्यक्दर्शन हेय है । परन्तु जो निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन दोनों को उपादेय मानता है वह भी भ्रम है क्योंकि निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है । समयसार की ११वीं गाथा में कहा है कि व्यवहार सम्यक्दर्शन अभूतार्थ है क्योंकि वह निश्चय सम्यक्दर्शन का निरूपण नहीं करता, निमित्त की अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है । तथा निश्चय सम्यक्दर्शन है वह भूतार्थ है जैसा सम्यक्दर्शन का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है । इस प्रकार निश्चय-व्यवहार सम्यक्दर्शन का स्वरूप तो परस्पर विरुद्धता सहित है । इसलिए निश्चय सम्यक्दर्शन प्रगट करने योग्य उपादेय है और व्यवहार सम्यक्दर्शन हेय है ।

प्रश्न ५७—क्या निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ५८—क्या निश्चय मुनिपना और व्यवहार मुनिपना दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ५९—क्या निश्चय मनोगुप्ति और व्यवहार मनोगुप्ति दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ६०—क्या निश्चय भाषा समिति और व्यवहार भाषा समिति दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ६१—क्या निश्चय ब्रह्मचर्य और व्यवहार ब्रह्मचर्य दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ६२—क्या निश्चय तृषापारिषहजय और व्यवहार तृषापारिषहजय दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ६३—क्या निश्चय अशरण भावना और व्यवहार अशरण भावना दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ६४—क्या निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र दोनों उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो ।

(४) “उभयाभासी की खोटी मान्यता का स्पष्टीकरण”

प्रश्न ६५—(१) तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन तो निश्चय और व्रत-शील-संयमादिरूप प्रवृत्ति

सो व्यवहार; सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है । (२) क्योंकि किसी द्रव्यभाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है । (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है । (४) जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा निरूपित किया जाये सो निश्चय और घृत संयोग के उपचार से उसी को घृत का घड़ा कहा जाए सो व्यवहार । (५) ऐसे ही अन्यत्र जानना । इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) आचार्यकल्प प० टोडरमलजी उभयाभास मान्यता वाले शिष्य से कहते हैं कि—तू वर्तमान पर्याय में सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय मानता है और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति (शुभभाव) सो व्यवहार है, ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक नहीं है, (२) ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक क्यों नहीं है ? उत्तर—किसी द्रव्य की पर्याय का नाम निश्चय और किसी द्रव्य की पर्याय का नाम व्यवहार, ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप जिनागम में नहीं है, (३) जिनागम में निश्चय-व्यवहार का स्वरूप कैसा बताया है ? उत्तर—जिनागम में एक ही द्रव्य के कार्य को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के कार्य को दूसरे द्रव्य के कार्यरूप निरूपण करना सो व्यवहार है । (४) जैसे—मिट्टी में हर समय कार्य हो रहा है, कार्य में नय का प्रयोजन नहीं है । जैसे—दस नम्बर के कार्य का नाम घड़ा रक्खा तो उस घड़े को मिट्टी का घड़ा कहा जावे सो निश्चय है और उपचार से उस घड़े में घी का संयोग होने से उस घड़े को घी का घड़ा कहा जावे सो व्यवहार, (५) ऐसा ही सब स्थानों पर जान लेना ।

प्रश्न ६६—“तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय, और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति सो

व्यवहार; सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है; (२) क्योंकि किसी द्रव्य भाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है; (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है;” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) प० जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हैं कि तू पर्याय में प्रगट ना होने पर भी सकलचारित्र को निश्चय मुनिपना मानता है और २८ महाव्रतादि के पालन को व्यवहार मुनिपना मानता है—सो ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप मानना ठीक नहीं है, (२) क्यों ठीक नहीं है ? आत्मा के चारित्रगुण की शुद्ध पर्याय का नाम निश्चय मुनिपना और चारित्रगुण की विकारी पर्याय का नाम व्यवहार मुनिपना—ऐसा निश्चय व्यवहार मुनिपने का स्वरूप जिनागम में नहीं है, (३) जिनागम में निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप कैसा बताया है ? उत्तर—आत्मा के चारित्रगुण में प्रगट सकलचारित्र रूप शुद्धि को मुनिपना निरूपण करना सो निश्चय मुनिपना कहा है और प्रगट सकलचारित्र मुनिपने के साथ २८ महाव्रतादि का भाव होने से २८ महाव्रतादि को उपचार से मुनिपना निरूपण करना—सो व्यवहार मुनिपना कहा है ।

प्रश्न ६७—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६८—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६९—ईर्या समिति पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७०—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७१—क्षुधापरिवहजय पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७२—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७३—(१) “इसलिए तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है। (२) तथा तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर विरोध आया। (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है ? (४) यदि व्रतादिक के साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान में शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ। (५) इस प्रकार दोनों नयों के परस्पर विरोध हैं, (६) इसलिए दोनों नयों का उपादेयपना नहीं बनता।” इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) प० जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते हैं कि तू शुद्धि को निश्चय माने और अशुद्धि को व्यवहार माने—वह तेरा भ्रम है। (२) तेरी मान्यता के अनुसार भी निश्चय-व्यवहार में परस्पर विरोध आता है, (३) क्या विरोध आता है ? यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो तू व्रतादिक क्यों करता है ? (४) और यदि व्रतादिक साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो तेरा वर्तमान पर्याय में शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ, (५) इस प्रकार तेरी मान्यता के अनुसार निश्चय व्यवहार के मानने में परस्पर विरोध है, (६) इसलिए निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का उपादेयपना नहीं हो सकता है।

प्रश्न ७४—(१) “इसलिए तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है, (२) तथा तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार का परस्पर विरोध आया, (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है ? (४) यदि व्रतादिक साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान में शुद्ध

आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ; (५) इस प्रकार दोनों नयों के परस्पर विरोध हैं; (६) इसलिए दोनों नयों का उपादेयपना नहीं बनता ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझइये ?

उत्तर—(१) तू अपने को सकलचारित्ररूप शुद्धि को निश्चय मुनिपना माने और २८ महाव्रतादिरूप अशुद्धि को व्यवहार मुनिपना माने—वह भ्रम है, (२) तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार मुनिपने को परस्पर विरोध आता है; (३) क्या विरोध आता है ? उत्तर—यदि तू अपने को सकलचारित्ररूप शुद्ध मुनिपना मानता है तो २८ महाव्रतादि का साधन किसलिये करता है ? (४) यदि २८ महाव्रतादि के साधन द्वारा मुनिपने की सिद्धि चाहता है तो वर्तमान में सकल-चारित्ररूप मुनिपने का अनुभवन मिथ्या हुआ, (५) तेरी मान्यता के अनुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने में परस्पर विरोध है, (६) इसलिए निश्चय व्यवहार दोनों मुनिपने का उपादेयपना नहीं बनता है ।

प्रश्न ७५—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७६—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७७—ईर्यासमिति पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७८—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७९—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८०—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८१—उत्तमक्षमा पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८२—शुद्धपने के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—शुद्धपना दो अर्थों में प्रयुक्त होता है —(१) द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना । (२) पर्याय अपेक्षा शुद्धपना ।

प्रश्न ८३—द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना क्या है ?

उत्तर—पर द्रव्यों से भिन्नपना और अपने भावों से (गुणों से) अभिन्नपना—उसका नाम द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है ।

प्रश्न ८४—पर्याय अपेक्षा शुद्धपना क्या है ?

उत्तर—निर्मल दशा का प्रगट होना अर्थात् औपाधिक भावों का अभाव होना—उसका नाम पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है ।

प्रश्न ८५—उभयाभासी प्रश्न करता है कि (अ) समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है; (आ) व्रत-तप-संयमादि को व्यवहार कहा है; उसी प्रकार ही हम मानते हैं, परन्तु आप हमें झूठा क्यों कहते हो ?

उत्तर—(१) शुद्ध आत्मा का पर्याय में अनुभव (प्रगटपना) सच्चा मोक्षमार्ग है इसलिये उसे पर्याय अपेक्षा शुद्धपना कहा है । (२) स्वभाव से (अनन्त गुणों से) अभिन्न परभाव से (द्रव्यकर्म-नोकर्म-भाव-कर्म से) भिन्न—ऐसा द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना कहा है । [अ] तू उभयाभासी ससारी मिथ्यादृष्टि है । तुझे वर्तमान पर्याय में शुद्धता प्रगट नहीं है और द्रव्य अपेक्षा तू शुद्धता मानता नहीं है इसलिए ससारी को सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अथ शुद्ध का नहीं जानना । [आ] व्रत-तपादि मोक्षमार्ग है नहीं, परन्तु जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगटा है उस जीव के व्रत-तपादिक को निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से मोक्षमार्ग कहा है । परन्तु तुझे पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगटा नहीं है अतः तेरे व्रत-तपादि के भावों पर उपचार भी सम्भव नहीं है । इसलिये तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सब झूठा है ।

प्रश्न ८६—समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है; व्रत-तप संयमादि को व्यवहार कहा है—उसी प्रकार हम

मानते हैं । आप हमें झूठा पयो कहते हो—इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) तीन चीकड़ी कपाय के अभावपूर्वक सकलचारित्ररूप शुद्धि को पर्याय में निश्चय मुनिपना कहा है । (२) चारित्रादि अनन्त गुणों में अभिन्न तथा द्रव्य-कर्म-नोकर्म-भावकर्म में भिन्न—यह द्रव्य अपेक्षा मुनिपना कहा है । [अ] तू उभयाभासी ससारी मिथ्यादृष्टि है । तुझे वर्तमान पर्याय में सकलचारित्ररूप शुद्धि प्रगट नहीं है और द्रव्य अपेक्षा मुनिपना तू मानता नहीं है । इसलिए ससारी को सकल-चारित्ररूप शुद्ध मुनिपना मानना—ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध का नहीं जानना । [आ] २८ महाव्रतादि मुनिपना है नहीं परन्तु जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से पर्याय में सकलचारित्ररूप मुनिपना प्रगटा है उस जीव के २८ महाव्रतादि को निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से मुनिपना कहा है । परन्तु तुझे पर्याय में सकल-चारित्ररूप मुनिपना प्रगटा नहीं है । अतः तेरे २८ महाव्रतादि के भावों पर उपचार भी सम्भव नहीं है । इसलिए तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना सब झूठा है ।

प्रश्न ८७—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८८—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८९—ईर्यासमिति पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९०—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९१—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६२—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६४—(१)—इस प्रकार भृत्यार्थ-अमृत्यार्थ मोक्षमार्गपने में इनको (शुद्धि अंग और अशुद्धि अंग को) निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना । (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—यह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसको मेल कर समझाओ ?

उत्तर—(१) साधक दशा में जो शुद्धि अंग है वह भृत्यार्थ है सो निश्चय कहा है; अशुद्धि अंग है वह अमृत्यार्थ है सो व्यवहार कहा है—सो ऐसा ही मानना । (२) परन्तु शुद्धि अंग भृत्यार्थ निश्चय है और अशुद्धि अंग अमृत्यार्थ व्यवहार है, इन दोनों को ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है ।

प्रश्न ६५—(१) इस प्रकार भृत्यार्थ-अमृत्यार्थ मोक्षमार्गपने में इनको निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना । (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं इन दोनों को उपादेय मानना—यह तो मिथ्याबुद्धि ही है—इसे 'मुनिपना' पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—(१) मुनिदशा में तीन जीकड़ी कषाय के अमाव्यवृत्त सकलचारित्र्य रूप प्रगट शुद्धि भृत्यार्थ है सो निश्चय मुनिपना कहा है; २८ मूलगुण पानने आदि का विक्लव अमृत्यार्थ है सो व्यवहार मुनिपना कहा है; सो ऐसा ही मानना । (२) परन्तु सकलचारित्र्य रूप शुद्धि भृत्यार्थ निश्चय मुनिपना है और अस्थिरता सम्बन्धी राग अमृत्यार्थ सो व्यवहार मुनिपना है । इन दोनों को ही सच्चा मुनिपना है और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है ।

प्रश्न ६६—(१) इस प्रकार भृत्यार्थ-अमृत्यार्थ मोक्षमार्गपने में इनको निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना । (२) परन्तु

यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है। इसे सम्यग्दर्शन पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—(१) श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी भूतार्थ है सो निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अस्थिरता का राग तथा सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा अभूतार्थ है सो व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है। सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन इन दोनों को ही सच्चा सम्यग्दर्शन है और उपादेय है—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ६७—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसे 'श्रावकपने' पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) श्रावकपने में दो चौकड़ी कपाय के अभावपूर्वक देशचारित्र्यरूप प्रगट शुद्धि भूतार्थ है सो निश्चय श्रावकपना कहा है, बारह अणुव्रतादि का विकल्प अभूतार्थ है—सो व्यवहार श्रावकपना कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना इन दोनों को ही सच्चा श्रावकपना है और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ६८—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसे 'मनोगुप्ति' पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्न ६५ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६९—“इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना। परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं। इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है।” इसे आदान निक्षेपण समिति पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—प्रश्न ६५ के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न १००—इर्ष्या समिति पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १०१—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १०२—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १०३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

(५) तीसरी भूल का स्पष्टीकरण

प्रश्न १०४—श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार रूप रखते हैं—क्या उभयाभासी का इस प्रकार दोनो नयो को अंगीकार करना ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, क्योंकि उभयाभासी का यथार्थ निश्चय-व्यवहार का ज्ञान ही नहीं है, इसलिए उसका दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है, क्योंकि जिसका श्रद्धान हो उसी की प्रवृत्ति होनी चाहिये ।

प्रश्न १०५—बहुत से ऐसा कहते हैं कि भाई निश्चय में तो कुछ करना है ही नहीं, अब व्रतादिक करके शुद्ध हो जावो—क्या यह उनका कहना ठीक है ?

उत्तर—उनका कहना बिल्कुल गलत है, क्योंकि ऐसे महानुभाव तो उभयाभासी मे आ जाते हैं । इसलिए इनका भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है । इसी बात को समयसार गाथा १५६ मे कहा है कि—

विद्वानजन भूतार्थ तज, व्यवहार मे वर्तन करे ।

पर कर्मनाश विधान तो, परमार्थ आश्रित सत के ॥१५६॥

अर्थ—निश्चयनय के विषय को छोड़कर विद्वान व्यवहार के द्वारा प्रवर्तते हैं, परन्तु परमार्थ के (आत्मस्वरूप के) आश्रित यतीश्वरों के ही कर्मों का नाश आगम में कहा गया है। (केवल व्रत-तदापि में प्रवर्तन करने वाले पण्डितों के कर्मक्षय नहीं होता।)

प्रश्न १०६—निश्चय-व्यवहार के विषय में समयसार गाथा २७२ में क्या बताया है ?

उत्तर—जो निश्चयनय के आश्रय से प्रवर्तते हैं वे ही कर्मों से मुक्त होते हैं और जो एकान्त से व्यवहारनय के आश्रय से ही प्रवर्तते हैं वे कभी कर्मों से मुक्त नहीं होते हैं।

प्रश्न १०७—“निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप शुद्धान करना योग्य है।” इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—(१) निश्चयनय के आश्रय से धर्म होता है यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है। व्यवहार के आश्रय से वध होता है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (२) सवर-निर्जरा मोक्षमार्गरूप हैं यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है। आस्रव-बध ससार मार्गरूप हैं यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है।

प्रश्न १०८—“निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करने योग्य है।” इसके दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—(अ) चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरणचारित्र्य की प्राप्ति यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प तथा सात तत्वों की भेदरूप श्रद्धा वधरूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है (आ) पाँचवें गुणस्थान में देशचारित्र्यरूप शुद्धि श्रावकपना है यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और बारह अणुव्रतादि का विकल्प व्यवहार श्रावकपना वध रूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (इ) छठे गुणस्थान में सकलचारित्र्यरूप शुद्धि निश्चय मुनिपना है यह निश्चयनय का निश्चयरूप श्रद्धान है और २८ मूलगुण आदि

पालने का विकल्प व्यवहार मुनिपना बधरूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है ।

प्रश्न १०६—“एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है” इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर—आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान हुए बिना सर्वथा निश्चय की बात करे, सर्वथा व्यवहार की बात करे या सवथा उभयाभासी की बात करे—वह सब एकान्त मिथ्यात्व है ।

प्रश्न ११०—समयसार कलश १११ में सर्वथा एकान्त क्या बताया है, स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—(अ) व्यवहाराभासी परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा को तो जानते नहीं और व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप अनशनादि क्रिया-क्लाण्ड के आडम्बर को मोक्ष का कारण जानकर उसमें तत्पर रहते हैं—उसका पक्षपात करते हैं वे सर्वथा एकान्ती ससार में डूबते हैं ।
(आ) निश्चयाभासी आत्मस्वरूप को यथार्थ जानते नहीं तथा सर्वथा एकान्तवादी मिथ्यादृष्टियों के उपदेश से अथवा अपने आप ही शुद्ध दृष्टि हुये बिना अपने को सर्वथा अवन्ध मानते हैं । व्यवहार को निरर्थक जानकर छोड़कर स्वच्छन्दी होकर विषय-कषायों में वर्तते हैं वे सर्वथा एकान्ती ससार समुद्र में डूबते हैं ।

[समयसार कलश १११]

प्रश्न १११—एकान्त मिथ्यात्व के विषय में समयसार कलश १३७ के भावार्थ में क्या बताया है ?

उत्तर—“पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्म शास्त्र में प्रवेश ही नहीं है और यदि प्रवेश करता है तो विपरीत समझता है । निश्चयाभासी शुभभाव को सर्वथा छोड़कर भ्रष्ट होता है अथवा व्यवहाराभासी निश्चय को भली-भाँति जाने बिना शुभभाव से ही मोक्ष मानता है, परमार्थतत्त्व में मूढ़ रहता है ।” ऐसा बताया है ।

प्रश्न ११२—प्रवचनसार गाथा ६४ में सर्वथा एकान्त किसे बताया है ?

उत्तर—जिन्हें असमानजातीय द्रव्य पर्याय में निरगल एकान्त दृष्टि उछलती है कि मैं मनुष्य ही हूँ, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है—ऐसा अहंकार-ममकार द्वारा ठगता हुआ—जिसने समस्त क्रिया-कलाप को छाती से लगाया है—वे सर्वथा एकान्ती हैं।

प्रश्न ११३—नियमसार गाथा १६ की टीका में सर्वथा एकान्त किसे बताया है ?

उत्तर—एकनय का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश ग्रहण करने योग्य नहीं है।

प्रश्न ११४—“वहाँ वह कहता है कि (१) श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं—इस प्रकार हम दोनों की अंगीकार करते हैं। (२) सो ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करने योग्य है। (३) एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है।” इस वाक्य की मुनिपने पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि (१) हम सकलचारित्र्य मुनिपने का श्रद्धान रखते हैं और २८ महाव्रतादि प्रवृत्ति का व्यवहार पालते हैं—इस प्रकार हम निश्चय व्यवहार दोनों मुनिपनों की अंगीकार करते हैं। (२) आचार्यकल्प प० टोडरमल जी उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारी मान्यतानुसार निश्चय व्यवहार मुनिपना नहीं बनता, क्योंकि तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र्यमुनिपना (मोक्षमार्ग) प्रगट करने योग्य उपादेय है। यह निश्चय मुनिपने का निश्चयरूप श्रद्धान है और २८ महाव्रतादि व्यवहार मुनिपना वधरूप हेय है—यह व्यवहार मुनिपने का व्यवहार रूप श्रद्धान है। (३) एकमात्र २८ महाव्रतादि का पालन मुनिपना है

या सकलचारित्र मुनिपने की बातें करे और प्रगट ना करे—यह एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है।

प्रश्न ११५—निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहार-रूप श्रद्धान को तीन तरह से स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—(१) त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है अतः त्रिकाली स्वभाव आश्रय करने योग्य परम उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और शुद्ध पर्याय चाहे क्षायिक हो—वह अनादिअनन्त नहीं है, उसका आश्रय नहीं लिया जा सकता क्योंकि वह एक समय की है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (२) मोक्षमार्ग में शुद्ध पर्याय प्रगट करने योग्य उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और भूमिका-नुसार स्थिरता सम्बन्धी शुभभाव बधरूप है हेय है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (३) विकारी भाव अपनी पर्याय में है अतः अपने दोष का ज्ञान कराने की अपेक्षा विकारी भाव आत्मा का है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और जब पर्याय में दोष होता है तब वहाँ पर द्रव्यकर्म-नोकर्म निमित्त होता है। परन्तु द्रव्य-कर्म-नोकर्म विकार नहीं करता है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है।

प्रश्न ११६—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११७—ईर्या समिति पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११८ वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११९ क्षुधापरिहृजय पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२०—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२१—उत्तमक्षमा पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२२—“(१) तथा प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नहीं है; (२) प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है; (३) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और उस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय, (५) ऐसे अभिप्रायानुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दोनो नय बनते हैं; (६) कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं, (७) इसलिए इस प्रकार भी दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है।” इस वाक्य को स्पष्ट रूप से समझाइए ?

उत्तर—(१) प्रवृत्ति अर्थात् कार्य, चाहे वह कार्य जड का हो या चेतन का हो, विकारी कार्य हो या अविकारी हो उसमे नय का प्रयोजन ही नहीं है। (२) प्रवृत्ति अर्थात् कार्य वह तो द्रव्य की परिणति है। (३) वहाँ जिस द्रव्य का कार्य हो—परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित (कथन) करे सो निश्चयनय है। (४) और उस ही को उपचार से अन्य द्रव्य की प्ररूपित (कथन) करे सो व्यवहारनय है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण मे (कथन मे) उस प्रवृत्ति मे (कार्य मे) दोनो नय बनते हैं। (६) कुछ प्रवृत्ति ही तो (कार्य ही तो) नयरूप है नहीं। (७) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२३—(१) तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है। (२) प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। (३) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और उस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय, (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे दोनो नय बनते हैं, (६) प्रवृत्ति

ही तो नय रूप है नहीं । (७) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है । इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ।

उत्तर—(१) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है । (३) वीतराग सकलचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को मुनिपना निरूपित करे सो निश्चय मुनिपना है, (४) और उस मुनिपने के साथ २८ महाव्रतादि का विकल्प निमित्त व सहचारी होने से २८ महाव्रतादि के भाव को मुनिपना निरूपित करे सो व्यवहार मुनिपना है । (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (वीतराग सकलचारित्ररूप कार्य मे) दोनो नय बनते हैं । (६) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नहीं । (७) इस लिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना और २८ महाव्रतादि रूप प्रवृत्ति व्यवहार मुनिपना) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

प्रश्न १२४—प्रश्न १२३ के अनुसार श्रावकपने पर लगाकर समझाइये ।

उत्तर—(१) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है । (३) वीतराग देशचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को श्रावकपना निरूपित करे सो निश्चय श्रावकपना, (४) और उस श्रावकपने के साथ बारह अणुव्रतादि का विकल्प निमित्त व सहचारी, होने से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना निरूपित करना सो व्यवहार श्रावकपना है । (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (वीतराग देशचारित्र रूप कार्य मे) दोनो नय बनते हैं । (६) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नहीं । (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार वीतराग देशचारित्र निश्चय

श्रावकपना और १२ अणुव्रतादि रूप प्रवृत्ति व्यवहार श्रावकपना) दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

प्रश्न १२५—प्रश्न १२३ के अनुसार ईर्यासमिति पर लगाकर समझाइये ।

उत्तर—(१) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है । (३) वीतराग सकलचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को ईर्यासमिति निरूपित करे सो निश्चय ईर्यासमिति है । (४) और उस ईर्यासमिति के साथ अपने गुरु के पास जाने सम्बन्धी विकल्प होने से चार हाथ जमीन देखकर चलने आदि का विकल्प निमित्त व सहचारी होने से चार हाथ जमीन देखकर चलने आदि के भाव को ईर्यासमिति निरूपित करे सो व्यवहार ईर्यासमिति है । (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में (वीतराग सकलचारित्र कार्य में) दोनो नय बनते हैं । (६) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नहीं । (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार वीतराग सकलचारित्ररूप निश्चय ईर्यासमिति और चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव व्यवहार ईर्यासमिति) दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

नोट—जैसे छट्ठे गुणस्थान में वीतराग सकलचारित्ररूप शुद्ध दशा तो एक ही प्रकार की है । उसके साथ जैसा-जैसा विकल्प निमित्त व सहचारी होता है, तो वीतराग सकलचारित्ररूप शुद्धि को उस-उस नाम से निश्चय कहा जाता है और उस विकल्प को व्यवहार कहा जाता है ।

प्रश्न १२६—चारित्रमोहनीय द्रव्यकर्म के उदय से क्रोध आया—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न सामने रखकर उत्तर समझाइये ?

उत्तर—(१) विकाररूप प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है ।

(२) विकाररूप प्रवृत्ति आत्मा के चारित्र्यगुण की विकारी दशा है ।

(३) अपने दोष का ज्ञान कराने की अपेक्षा आत्मा की विकाररूप प्रवृत्ति को आत्मा ने क्रोध किया ऐसा निरूपित करे—सो निश्चयनय, है, (४) और उस क्रोध को ही चारित्र्यमोहनीय द्रव्य कर्म के उदय से हुआ—ऐसा निरूपित करे—सो व्यवहारनय है । (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में (विकाररूप प्रवृत्ति में) दोनों नय वनते हैं । (६) विकाररूप प्रवृत्ति है वह तो नयरूप है नहीं । (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार विकार आत्मा ने किया यह निश्चय और विकार कर्म ने कराया यह व्यवहार) दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

प्रश्न १२७—घड़ा पानी का है—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न बनाकर उत्तर दो ?

उत्तर—(१) आहारवर्गणारूप वर्तन में नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) वर्तन तो आहारवर्गणा का कार्य है । (३) आहारवर्गणारूप मिट्टी के वर्तन को घड़ा प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और पानी का संयोग होने पर उपचार से पानी का घड़ा प्ररूपित करे सो व्यवहारनय है । (५) ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से आहारवर्गणारूप वर्तन में दोनों नय वनते हैं । (६) आहारवर्गणारूप वर्तन ही तो नयरूप है नहीं । (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार घड़ा मिट्टी का यह निश्चय और घड़ा पानी का यह व्यवहार) दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

प्रश्न १२८—मैं मनुष्य हूँ—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न बनाकर उत्तर दो ?

उत्तर—(१) औदारिक शरीर में नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) औदारिक शरीर आहारवर्गणा का कार्य है (३) आहारवर्गणा के कार्य रूप औदारिक शरीर को यह मनुष्य है ऐसा निरूपित करे—सो निश्चयनय, (४) और मनुष्य शरीर के साथ जीव का एक क्षेत्रावगाही

सम्बन्ध होने से मनुष्य जीव-ऐसा निरूपित करे सो व्यवहारनय है ।
 (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से औदारिक शरीर रूप प्रवृत्ति में दोनों नय बनते हैं । (६) औदारिक शरीर रूप प्रवृत्ति ही तो नय रूप है नहीं । (७) इसलिए इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार मनुष्य शरीर यह निश्चय और मनुष्य जीव यह व्यवहार) दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।

प्रश्न १२६—(१) मैं चला, (२) मैं सोया, (३) मैं बोला, (४) मैं उठा, (५) मैंने दुकान खोली, इन पाँच वाक्यों पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३०—(१) सम्यग्दर्शन, (२) उत्तम क्षमा, (३) उत्तम ब्रह्मचर्य, (४) उत्तम मार्दव (५) भाषा समिति, (६) क्षुधापरिपक्षय (७) अनित्य भावना, इन सात वाक्यों पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३१—(१) मैं कैलाशचन्द्र हूँ, (२) मैं बहू हूँ, (३) मैं माता हूँ, (४) मैं सेठ हूँ, (५) मैं पति हूँ, इन पाँच वाक्यों पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३२—आठो कर्मों के अभाव से सिद्ध दशा की प्राप्ति हुई—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

उत्तर—(१) क्षायिक दशा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है । (२) क्षायिक दशा तो आत्मा के सर्व गुणों की परिणति है । (३) आत्मा के सर्व गुणों की परिपूर्ण क्षायिक दशा को सिद्ध दशा प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और सिद्ध दशा आठो कर्मों के अभाव से हुई—ऐसा प्ररूपित करे—सो व्यवहारनय । (५) ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से उस पूर्ण क्षायिक रूप प्रवृत्ति में दोनों नय बनते हैं । (६) पूर्ण क्षायिक रूप प्रवृत्ति ही तो नय रूप है नहीं । (७) इसलिए इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार सिद्धदशा निश्चय, और आठो कर्मों के अभाव से सिद्धदशा व्यवहार) दोनों नयों

का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १३३—केवलज्ञानावरणीय के अभाव से केवलज्ञान हुआ—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३४—स्त्री ने रोटी बनाई—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३५—उत्तम मार्दव धर्म पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३६—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३७—ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से ज्ञान का क्षयोपशम हुआ—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

(६) अवश्य याद रखने योग्य प्रश्न १३८ से १६२ तक

प्रश्न १३८—उभयभासी के दोनों नयो का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया, तो वह क्या करे ?

उत्तर—निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्रश्न १३९—निश्चयनय के निरूपण को सत्यार्थ मानकर श्रद्धान करना और व्यवहारनय के निरूपण को असत्यार्थ मानकर श्रद्धान छोड़ना ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ में कहा है कि “सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि में अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना” ऐसा जिनदेवो ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—“इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छोड़ा है तो फिर सन्त पुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानधनरूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ?” ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न १४०—समयसार नाटक में व्यवहार भाव को क्या कहा है ?

उत्तर—असख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्व भाव है वह व्यवहार भाव है ऐसा केवली भगवान कहते हैं ।” ऐसा कहा है ।

प्रश्न १४१—निश्चय व्यवहार के विषय में समयसार गाथा ११ में क्या बताया है ?

उत्तर—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है—ऐसा ऋषीश्वरो ने दर्शाया है, जो जीव भूतार्थ का आश्रय करता है वह जीव सम्यक्दृष्टि है ।

प्रश्न १४२—निश्चय व्यवहार के विषय में समयसार गाथा ५६ में क्या बताया है ?

उत्तर—“यह वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त जो २६ भाव कहे गये, वे व्यवहारनय से तो जीव के हैं, किन्तु निश्चयनय के मत में २६ बोलों में से कोई भी जीव के नहीं है” ऐसा कहा है ।

प्रश्न १४३—प्रवचनसार गाथा ६४ में किसको छोड़ने और किस का आचरण करने को बताया है ?

उत्तर—“मनुष्य व्यवहार को छोड़कर मात्र ज्ञायक अवलित चेतना वह ही मैं हूँ ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण” करने को बताया है ।

प्रश्न १४४—निश्चय व्यवहार के विषय में समयसार गाथा ६ और ७ में क्या बताया है ?

उत्तर—चार प्रकार के अध्यात्म व्यवहार को भी छोड़ा है और अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव करने को कहा है ।

प्रश्न १४५—नियमसार गाथा ५० में हेय-उपादेय किसे बताया है ?

उत्तर—पूर्वोक्त सर्वभाव पर स्वभाव हैं, पर द्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं, अन्तः तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य-आत्मा उपादेय है, ऐसा बताया है ।

प्रश्न १४६—शास्त्रों में जहाँ त्रिकाली स्वभाव निश्चय और शुद्ध पर्याय व्यवहार कहा हो—वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—त्रिकाली स्वभाव यथार्थ का नाम निश्चय—ऐसा निश्चय-नय से निरूपण किया हो उसे आश्रय करने योग्य सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और शुद्ध पर्याय उपचार का नाम व्यवहार—ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो वह अनादिअनन्त नहीं है और आश्रय करने योग्य नहीं है इस अपेक्षा असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्रश्न १४७—शास्त्रो मे जहाँ शुद्ध पर्याय निश्चय और भूमिकानुसार शुभभाव को व्यवहार कहा हो—वहाँ क्या जानना चाहिये ?

उत्तर—शुद्ध पर्याय यथार्थ का नाम निश्चय—ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे प्रगट करने योग्य सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो—उसे वध का कारण हेय जानकर असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्रश्न १४८—निश्चय और व्यवहार के विषय मे मोक्षपाट्टुड गाथा ३१ में कुन्द-कुन्द भगवान ने क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार मे सोता है अर्थात् जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर निश्चय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है । समाधितन्त्र गाथा ७८ मे भी यही बताया है ।

प्रश्न १४९—व्यवहार का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान क्यों करना योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय=स्वद्रव्य—परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है । सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिये । निश्चयनय=स्वद्रव्य—परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नहीं करता यथावत्

‘निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिये ।

(२) व्यवहारनय=द्रव्य के भावो—परद्रव्य के भावो को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना चाहिये । निश्चयनय=स्वद्रव्य के भावो—परद्रव्य के भावो को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता, यथावत् निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिए ।

(३) व्यवहारनय=कारण—कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है—सो ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए । निश्चयनय=कारण कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता, यथावत् निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिए ।

प्रश्न १५०—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना, परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयो का ग्रहण करना कहा है सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग में कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जानना तथा कही व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे “ऐसे ही नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा (भग-भेद-सहयोग-सहचारी की अपेक्षा) उपचार किया है”—ऐसा जानना । इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयो का ग्रहण है ।

प्रश्न १५१—इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयो का ग्रहण है, इसमें ‘इस प्रकार’ शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—व्यवहार कथन झूठा है निश्चय कथन सच्चा है इस

प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयो का ग्रहण है अर्थात् हेय-उपादेय-ज्ञेय को जानने के नाम से ही दोनों नयो का ग्रहण है ।

प्रश्न १५२—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं “ऐसे भी है” और “ऐसे भी है” इस प्रकार दोनों नयो का ग्रहण करना चाहिए, क्या उनका कहना गलत है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, उन्हें जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है । दोनों नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर “ऐसे भी है और ऐसे भी है”—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयो का ग्रहण करना नहीं कहा है ।

प्रश्न १५३—वृहत् द्रव्य संग्रह में हेय-उपादेय के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—“यद्यपि शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्म द्रव्य उपादेय है, (सदा आश्रय करने योग्य उपादेय है) तथापि हेयरूप अजीव द्रव्यों का भी कथन किया जाता है, क्योंकि हेय तत्त्व का परिज्ञान हुए बिना उसका आश्रय छोड़कर उपादेय तत्त्व का आश्रय नहीं किया जा सकता है” ऐसा बताया है ।

प्रश्न १५४—व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उनका उपदेश जिन-मार्ग में किसलिए दिया ?—एकमात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार में किया है । वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार में ससारी भाषा के बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिए व्यवहार का उपदेश है । इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिए व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं । व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है परन्तु अंगीकार करने योग्य नहीं है ।

उत्तर—“अहो ज्ञानी जनो ! वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यंत २६ भाव है, उन सबको एक पुद्गल की ही रचना जानो, इसलिए यह भाव पुद्गल ही हो, आत्मा न हो; क्योंकि आत्मा तो विज्ञानधन है, ज्ञान का पुज है इसलिए वह इन वर्णादिक भावों से अन्य ही है ।”

प्रश्न १६२—निश्चय-व्यवहार के विषय में समयसार कलश ४० में क्या बताया है ?

उत्तर—“घी से भरे हुए घड़े को व्यवहारनय से ‘घी का घड़ा’ कहा जाता है तथापि निश्चय से घड़ा घी स्वरूप नहीं है, घी घी स्वरूप है, घड़ा मिट्टी स्वरूप है; उसी प्रकार वर्ण, पर्याप्ति, इन्द्रियो इत्यादि के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध वाले जीव को सूत्र में व्यवहारनय से षचेन्द्रिय जीव, पर्याप्त जीव, बादर जीव, देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि कहा गया है तथापि निश्चय से जीव उस स्वरूप नहीं है; वर्ण-पर्याप्ति-इन्द्रियाँ आदि पुद्गल स्वरूप हैं, जीव ज्ञान स्वरूप है ।

(७) सयोगरूप निश्चय-व्यवहार का नौ बोलों द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न १६३—‘मनुष्य जीव’ पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—“शरीर रहित जीव है” ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मनुष्य जीव है ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना क्योंकि समयसार कलश १७३ में जितना पराश्रित व्यवहार है वह सब जिनेन्द्र देवों ने छुड़ाया है और निश्चयनय को अगीकार करके निज महिमा में प्रवर्तन का आदेश दिया है ।

प्रश्न १६४—निश्चय-व्यवहार “मनुष्य जीव” के विषय में मोक्ष-पाहुड़ गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—मनुष्य जीव—ऐसे व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर मैं आत्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा करता है वह योगी अपने कार्य में जागता है तथा मैं मनुष्य हूँ, मैं मनुष्य हूँ जो ऐसे व्यवहार में जागता है वह अपने कार्य में सोता है। इसलिए मैं मनुष्य ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न १६५—मैं मनुष्य हूँ ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय स्वद्रव्य (आत्मा) पर द्रव्यो (शरीर-मन-वाणी) को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है, इसलिए उसका त्याग करना। तथा निश्चयनय स्वद्रव्य (आत्मा) पर द्रव्यो (शरीर-मन-वाणी) को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता, यथावत् निरूपण करता है। 'सो मैं आत्मा हूँ, शरीर-मन-वाणी नहीं हूँ' ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न १६६—आप कहते हो 'मनुष्य जीव' ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करो और मैं शरीर-मन-वाणी रहित आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करो, परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग में जहाँ शरीर-मन-वाणी रहित मैं आत्मा ही हूँ ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"—ऐसा जानना। तथा "मैं मनुष्य हूँ" ऐसे व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे "ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। मैं शरीर-मन-वाणीरूप मनुष्य नहीं हूँ, आत्मा हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।

प्रश्न १६७—कोई-कोई विद्वान "निश्चय से मैं आत्मा हूँ और व्यव-

हारनय से मैं मनुष्य हूँ” दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर “ऐसे भी है, ऐसे भी है” ऐसा कहते हैं; क्या ऐसे मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—झूठे ही हैं, क्योंकि दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर “ऐसे भी है, ऐसे भी है, मैं आत्मा भी हूँ और मनुष्य भी हूँ”—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

प्रश्न १६८—यदि ‘मैं मनुष्य’ ऐसा व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? एक ‘मैं आत्मा ही हूँ’ ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था।

उत्तर—मनुष्य ऐसे व्यवहार के बिना परमार्थ आत्मा का उपदेश अशक्य है, इसलिए मनुष्य ऐसे व्यवहार का उपदेश है। निश्चय आत्मा को अंगीकार कराने के लिये—मनुष्य ऐसे व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं परन्तु व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न १६९—मैं मनुष्य ऐसे व्यवहार के बिना निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नहीं होता ? सो कहिये।

उत्तर—निश्चयनय से तो आत्मा पर द्रव्यों से भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है, उसे जो नहीं पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिए उनको व्यवहारनय से शरीर-मन-वाणी की सापेक्षता द्वारा मनुष्य जीव है, इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान कराई। इस प्रकार मनुष्य व्यवहार के बिना निश्चय आत्मा का उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न १७०—मैं मनुष्य ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना, सो कहिए ?

उत्तर—यहाँ व्यवहार से शरीर-मन-वाणी पुद्गल पर्याय ही को जीव कहा, सो शरीर-मन-वाणी पुद्गल पर्याय ही को जीव नहीं मान

लेना । वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोंगरूप है । वहाँ निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है, उसी को जीव मानना । जीव के सयोग से शरीर-मन-वाणी को भी उपचार से जीव कहा, सो कथनमात्र ही है । परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार मनुष्य जीव है ऐसे व्यवहारनय को अगीकार नहीं करना—ऐसा जान लेना ।

प्रश्न १७१—मैं मनुष्य हूँ—जो ऐसे व्यवहार को ही सच्चा मानता है उसे शास्त्रों में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

त्तर—(१) पुरुषार्थसिद्धयुपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है । (२) नाटक समयसार में 'मूर्ख' कहा है । (३) आत्मावलोकन में 'हरामजादीपना' कहा है । (४) समयसार कलश ५५ में कहा है—'यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है' । (५) प्रवचनसार में 'पद-पद पर धोखा खाता है' ऐसा कहा है । (६) समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक में मिथ्यादृष्टि आदि शब्दों से सम्बोधित किया है ।

(८) उभयाभासी की मान्यता अनुसार निश्चय से मैं परद्रव्यो से भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ और व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो के द्वारा स्पष्टीकरण ।

प्रश्न १७२—प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार की प्रवृत्ति रखता हूँ परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों नयो को भग्न बता दिया तो हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयो

को किस प्रकार समझें तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसा जो निश्चयनय से निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान् अंगीकार करना और मैं पंडित कैलाशचन्द्र हूँ—ऐसा जो व्यवहारनय से निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान् छोड़ना ।

प्रश्न १७३—मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के त्याग करने का और प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय के अंगीकार करने का आदेश कहीं जिन-वाणी में भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—मैं निश्चय से प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ और व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोड़ना क्योंकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय व्यवहार कुछ होता ही नहीं—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान् की दिव्य ध्वनि में आया है । स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—मैं ऐसा मानता हूँ, जानियो को जो मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है सो सर्व ही छुड़ाया है । तो फिर सन्तपुरुष प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध एक परम त्रिकाली निज ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानरूप धनरूप निज महिमा में स्थिति करके क्यों केवलज्ञान प्रगट नहीं करते हैं—ऐसा कहकर आचार्य भगवान् ने खेद प्रगट किया है ।

प्रश्न १७४—पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय को अंगीकार करने और मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्ष प्राभूत गाथा ३१ में कहा है कि—मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर, प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—जो ऐसे निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है तथा मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—जो ऐसे व्यवहार में जागता है वह अपने आत्मकार्य में सोता है। इसलिये मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान् छोड़कर, कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान् करना योग्य है।

प्रश्न १७५—मैं पं० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान् को छोड़कर, पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गलो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान् करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गलो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—यह स्वद्रव्य, प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल शरीर—यह परद्रव्य, इस प्रकार व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है सो मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान् से मिथ्यात्व होता है, इसीलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय—प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान्

आत्मा यह स्वद्रव्य, प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल गरीर यह परद्रव्य, इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य पर द्रव्य का यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है । प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—सो ऐसे ही निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न १७६—आप कहते हो कि मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना तथा प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना । यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है सो कैसे है ?

उत्तर—जिनमार्ग में कही तो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जानना । तथा कही मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे “ऐसे हैं नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना । मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नहीं हूँ, मैं तो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण है ।

प्रश्न १७७—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि “मैं प० कैलाशचन्द्र जैन भी हूँ और प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा भी हूँ ।”

इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करते हैं । क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ वित्कुल ही गलत है क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता ही नहीं है । तथा उन महानुभावों ने निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्रजैन भी हूँ और निश्चय से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा भी हूँ—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है ।

प्रश्न १७८—मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो व्यवहार का उपदेश जिनवाणी में किसलिये दिया ? प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—एकमात्र ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार में किया है । वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसा व्यवहार के बिना, प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है । इसलिए मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार का उपदेश है । (२) प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे निश्चय का ज्ञान कराने के लिए, मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं । व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, जानने योग्य है, परन्तु व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न १७६—में प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार के बिना प कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे समझाइए ?

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा है, उसे जो नहीं पहिचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये । इसलिए उनको व्यवहारनय से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप-शरीर-इन्द्रिय-मन-वाणी द्रव्यकर्मादिक परद्रव्यो की मापेक्षता द्वारा मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप मनुष्य-नारकी-देव-पृथ्वीकायादिक रूप हूँ । इस प्रकार जीव के विज्ञेय किए तब प० कैलाशचन्द्र जैन जीव है, वह जीव है, कुत्ता जीव है, मक्खी जीव है, पृथ्वीकाय जीव है इत्यादि चारो गतियों के शरीर सहित उन्हे जीव की पहिचान हुई ।

प्रश्न १८०—में प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय से जीव की पहिचान कराई, तब मैं प० कैलाशचन्द्र हूँ—ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—व्यवहारनय से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पर्याय को जीव कहा, सो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पर्याय को ही जीव नहीं मान लेना । प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप असमानजातीय वर्तमान पर्याय तो जीव पुद्गल के सयोग रूप है । वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है उस ही को जीव मानना । प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा के सयोग से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा—सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप शरीर-इन्द्रिय-मन-वाणी-द्रव्यकर्मादिक जीव होते ही नहीं—ऐसा श्रद्धान करना ।

प्रश्न १८१—मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है—उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुषार्थ सिद्धिद्विपाय के श्लोक ६ में कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति ।'

(२) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ में कहा है कि—'यह उसका अज्ञान मोह अधिकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है ।'

(३) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ में कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है ।"

(४) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे आत्मावलोकन में कहा है कि "यह उसका हरामजादीपना है ।

प्रश्न १८२—नारकी जीव—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८३—देव जीव—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८४—मैं सुबह उठता हूँ—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८५—मैंने भगवान की पूजा की—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८६—मेरे बाल बच्चे हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८७—मेरी दुकान है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८८—मानतुंग आचार्य ने भक्षतामर स्त्रोत से ताले तोड़े—इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८९—धर्म द्रव्य ने मुझे चलाया—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १९०—सीता के ब्रह्मचर्य से अग्नि पानी हो गई—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

१९१—मुझे भगवान् शन्तिनाथ शान्ति देते हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १९२—मुझे रोटी खाने से शान्ति मिलती है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १९३—काल द्रव्य मुझे परिणमन करता है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

(६) कारण कार्य का सात बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न—१९४—‘गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य’ इस पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना और ज्ञान आत्मा के ज्ञान गुण में से उस समय पर्याय की योग्यता से हुआ ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना, क्योंकि भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ में जितना भी पराश्रित कारण कार्य है वह सब जिनेन्द्रो ने छुड़ाया है और निश्चयनय से सच्चे कारण-कार्य को ग्रहण करके निज महिमा में प्रवर्तन का आदेश दिया है ।

प्रश्न १६५—गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य के विषय में मोक्ष पाहुड गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—जो पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोड़कर स्वाश्रित कारण—कार्य की श्रद्धा करता है, वह योगी आत्मकार्य में जागता है तथा जो पराश्रित कारण-कार्य से (गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य) लाभ मानता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है । इसलिये पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोड़कर, स्वाश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा करना योग्य है ।

प्रश्न १६६—गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोड़कर स्वाश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय=गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य, ऐसे पराश्रित कारण-कार्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना, तथा निश्चयनय=कारण-कार्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता है, यथावत् निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है । इसलिये उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न १६७—आप कहते हो पराश्रित कारण-कार्य के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करो और स्वाश्रित कारण-

कार्य के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करो परन्तु जिनमार्ग में स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्य का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग में आत्मा के ज्ञान गुण में से उस समय पर्याय की योग्यता से ज्ञान हुआ—ऐसा स्वाश्रित कारण-कार्य की मुख्यता लिये व्याख्यान हो, उसे तो 'सत्यार्थ, ऐसे ही है' ऐसा जानना । तथा गुरु कारण, ज्ञान कार्य ऐसा पराश्रित कारण-कार्य की मुख्यता लिये व्याख्यान हो उसे 'ऐसे है नहीं, पराश्रित कारण-कार्य की अपेक्षा उपचार से कथन किया है'—ऐसा जानना । इस प्रकार (स्वाश्रित कारण-कार्य सच्चा है और पराश्रित कारण कार्य झूठा है) जानने का नाम ही स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्यों का ज्ञान है ।

प्रश्न १९८—कोई विद्वान स्वाश्रित कारण-कार्य को और पराश्रित कारण-कार्य को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है; और ऐसे भी है, ऐसा कहते हैं, क्या ऐसे कहने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—झूठे ही हैं, क्योंकि स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्य को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है'—इस प्रकार भ्रमत्प प्रवर्तन से तो स्वाश्रित-पराश्रित कारण कार्यों का ग्रहण करना नहीं कहा है ।

प्रश्न १९९—यदि गुरु कारण और ज्ञान हुआ कार्य ऐसा पराश्रित कारण-कार्य असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ?—एक स्वाश्रित कारण-कार्य का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—गुरु कारण-ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य के बिना परमार्थ स्वाश्रित कारण-कार्य का उपदेश अशक्य है, निश्चय से स्वाश्रित कारण-कार्य को अगीकार कराने के लिये गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य द्वारा उपदेश देते हैं, परन्तु पराश्रित कारण-कार्य है सो अगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न २००—जो जीव पराश्रित कारण-कार्य को ही अर्थात् गुरु

कारण, ज्ञान हुआ कार्य को ही सच्चा मानता है उसे शास्त्रों में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में “तस्य देशना नास्ति” कहा है, (२) नाटक समयसार में ‘मूर्ख’ कहा है। (३) आत्मावलोकन में “हरामजादीपना” कहा है। (४) समयसार कलश ५५ में “अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है” ऐसा कहा है, (५) प्रवचनसार में ‘पद-गद पर धोखा खाता है’ ऐसा कहा है, (६) समयसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक में ‘मिथ्यादृष्टि’ आदि शब्दों से सम्बाधित किया है।

प्रश्न २०१—केवलज्ञानावरणीय कर्म का अभाव कारण, केवल-ज्ञान हुआ कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण-कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०२—शास्त्र कारण, ज्ञान हुआ कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०३—बाई कारण, रोटी कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण-कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०४—दर्शनमोहनीय का उपशम कारण, औपशमिक सध्यस्त्व कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०५—बढ़ई कारण, अलमारी कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०६—मानस्तम्भ कारण, गौतम की सम्यग्दर्शन हुआ कार्य—इस वाक्य पर कारण कार्य का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २०७—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान क्रोधादि द्रव्य कर्म का अभाव कारण, देशचारित्र्य कार्य—इस वाक्य पर कारण कार्य का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १६४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो ।

(१०) भेद-अभेद का स्पष्टीकरण

प्रश्न २०८—व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसको दूसरी तरह समझाइये ।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है । उसे जो नहीं पहि-
चानते, उनसे इसी तरह कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये । तब
उसको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप
जीव के विशेष किये, तब जानने वाला जीव है—देखने वाला जीव
है—इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान हुई । इस प्रकार व्यवहार
भेद बिना निश्चय अभेद के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २०९—व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद का उपदेश कैसे
नहीं होता—इस बात का उत्तर प्रश्न २०८ में दिया—अब इस प्रश्न
के उत्तर को और स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—प्रश्न २०८ के उत्तर में अभेद आत्मा की गुणभेद द्वारा
पहचान कराई है । समयसार गाथा सात के भावार्थ में अभेद को मुख्य
करके भेद को अवस्तु कहा है, क्योंकि भेद के लक्ष्य से रागी को राग
उत्पन्न होता है । यहाँ पर पंडित जी ने भेद से अभेद को समझाया
है । इस प्रकार व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद के उपदेश का न होना
जानना ।

प्रश्न २१०—ज्ञान-दर्शनादि के भेदों से जीव की पहिचान कराने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—एक क्षेत्रावगाही शरीर-इन्द्रियाँ-भाषा-मन और द्रव्य कर्मों से भी दृष्टि हट गई और अब ज्ञान-दर्शनादि के भेदों पर दृष्टि रह गई ।

प्रश्न २११—भेद से जीव की पहिचान कराई, तब भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं, निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसी को जीव वस्तु मानना । सज्ञा-सख्या आदि से भेद कहे, सो कथन मात्र ही हैं । परमार्थ से द्रव्य और गुण भिन्न-भिन्न नहीं हैं—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय का विषय है, जानने योग्य है परन्तु अगीकार करने योग्य नहीं है—ऐसा जानना ।

प्रश्न २१२—ज्ञान-दर्शनादि के भेदों से जीव को बताया तथा अभेद भेद से रहित है—ऐसा बताने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—वास्तव में भेद-अभेद बतलाकर इसमें द्रव्यानुयोग के शास्त्रों का अर्थ करने की बात समझाई है ।

प्रश्न २१३—भेद-अभेद के विषय में प्रवचनसार गाथा १०६ के भावार्थ में क्या स्पष्ट किया है ?

उत्तर—“द्रव्य में और सत्तादि गुणों में अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है, क्योंकि द्रव्य के और गुण के प्रदेश अभिन्न होने पर भी द्रव्य में और गुण में सज्ञा, सख्या, लक्षणादि भेद होने से (कथंचित) द्रव्य गुणरूप नहीं है और गुण द्रव्यरूप नहीं है ।”

प्रश्न २१४—द्रव्य-गुण भेदरूप हैं या अभेदरूप हैं ?

उत्तर—द्रव्य-गुण भेद-अभेद दोनों रूप हैं ।

प्रश्न २१५—द्रव्य-गुण भेदरूप कैसे हैं ?

उत्तर—संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेदरूप हैं ।

प्रश्न २१६—द्रव्यगुण अभेदरूप कैसे हैं ?

उत्तर—(१) प्रदेशों की अपेक्षा द्रव्य-गुण अभेदरूप हैं । (२) क्षेत्र की अपेक्षा द्रव्य-गुण अभेदरूप है और (३) काल की अपेक्षा से द्रव्य-गुण अभेदरूप हैं ।

प्रश्न २१७—द्रव्य-गुण में संज्ञा भेद कैसे हैं ?

उत्तर—एक का नाम द्रव्य है । दूसरे का नाम गुण है । यह संज्ञा अपेक्षा भेद है ।

प्रश्न २१८—द्रव्य-गुण संख्या अपेक्षा भेद कैसे हैं ?

उत्तर—द्रव्य एक है और गुण अनेक है—यह संख्या अपेक्षा भेद है ।

प्रश्न २१९—द्रव्य-गुण लक्षण की अपेक्षा भेदरूप कैसे हैं ?

उत्तर—(१) द्रव्य का लक्षण—गुणों का समूह है । (२) गुण का लक्षण—द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में और सम्पूर्ण अवस्थाओं में रहे—उसे गुण कहते हैं । यह लक्षण अपेक्षा भेद है ।

प्रश्न २२०—द्रव्य-गुण में प्रयोजन की अपेक्षा भेद कैसे हैं ?

उत्तर—द्रव्य अभेदरूप है और गुणों का प्रयोजन भिन्न-भिन्न है । यह प्रयोजन अपेक्षा भेद है ।

प्रश्न २२१—भेद-अभेद के विषय में मोक्षमार्ग प्रकाशक आठवें अधिकार पृष्ठ २८४ में क्या बताया है ?

उत्तर—“वहाँ जीवादि वस्तु अभेद है । तथापि उसमें भेद कल्पना द्वारा व्यवहार से द्रव्य-गुण-पर्यायादिक के भेदों का निरूपण करते हैं ।

(११) भेद-अभेद के निश्चय, व्यवहार का नौ बोलो
द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न २२२—‘ज्ञानवाला जीव है’—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार के विषय में क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—व्यवहारनय से ज्ञानवाला जीव है—ऐसा निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना और निश्चयनय से आत्मा अभेद है—ऐसा निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना । क्योंकि भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ में कहा है कि जितना भेदरूप व्यवहार है । वह सब जिनेन्द्र देवो ने छुड़ाया है और निश्चय को अगीकार करके निज महिमा में प्रवर्तन का आदेश दिया है ।

प्रश्न २२३—‘ज्ञानवाला जीव है’—ऐसे निश्चय-व्यवहार के विषय में कुन्द कुन्द भगवान् ने मोक्ष पाहुड गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—ज्ञानवाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार को श्रद्धा छोड़कर मैं अभेद आत्मा हूँ—जो ऐसी श्रद्धा करता है वह योगी अपने कार्य में जागता है तथा मैं ज्ञानवाला आत्मा हूँ—ऐसे व्यवहार में जागता है, वह अपने कार्य में सोता है इसलिए ज्ञानवाला जीव है ऐसे भेदरूप व्यवहार का श्रद्धान छोड़कर मैं अभेद आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है ।

प्रश्न २२४—‘ज्ञानवाला जीव है’ ऐसे भेदरूप व्यवहार का श्रद्धान छोड़कर मैं अभेद आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—(१) अभेदरूप आत्मा को ‘ज्ञानवाला जीव है’ ऐसा व्यवहारनय भेदरूप निरूपण करता है सो भेदरूप श्रद्धान से ही मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना । (२) तथा अभेदरूप आत्मा को निश्चयनय भेदरूप निरूपण नहीं करता है, यथावत् निरूपण करता है किसी को किसी में नहीं मिलता है । सो ऐसे अभेदरूप श्रद्धान से ही सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न २२५—आप कहते हो ‘ज्ञान वाला जीव है’—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग

करो और आत्मा अभेदरूप है—ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करो । परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग में आत्मा अभेदरूप है—ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना । तथा ज्ञानवाला जीव है—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे 'ऐसा है नहीं' भेदादि की अपेक्षा कथन किया है—ऐसा जानना । इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है ।

प्रश्न २२६—कोई-कोई विद्वान निश्चयनय से आत्मा अभेद है और व्यवहारनय से आत्मा भेदरूप है । इस प्रकार दोनों नयों के व्याख्यान को समान, सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है' ऐसा मानते हैं । क्या ऐसा मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—हाँ, झूठे ही हैं । क्योंकि दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है, इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है ।

प्रश्न २२७—यदि ज्ञान वाला जीव है—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? अभेदरूप आत्मा है—ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—ज्ञान वाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना अभेद आत्मा का उपदेश अशक्य है । इसलिए ज्ञानवाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय का उपदेश है । अभेदरूप आत्मा को अगीकार कराने के लिए भेदरूप व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं । भेदरूप व्यवहारनय है, उसका विषय भी है परन्तु भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न २२८—ज्ञान वाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना अभेदरूप निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा अभेदवस्तु है । उसे जो नहीं

पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब वे कुछ समझ नहो पाये । तब उनको अभेदरूप आत्मा मे भेद उत्पन्न करके ज्ञानगुण रूप जीव के विशेष किये, तब जानने वाला जीव है—इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान कराई । इस प्रकार भेदरूप व्यवहार बिना अभेद निश्चय का उपदेश न होना जानना ।

प्रश्न २२६—‘ज्ञान वाला जीव’—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान आदि भेद किये सो उसे भेदरूप ही नही मान लेना चाहिए, क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किए है । निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसी को जीव वस्तु मानना । सज्ञा-सख्या आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से द्रव्य और गुण भिन्न-भिन्न नही है ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार भेदरूप, व्यवहार बिना अभेद निश्चय के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २३०—जो भेदरूप व्यवहार को ही सच्चा मानता है उसे जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय गाथा ६ मे कहा है कि ‘तस्य-देशना नास्ति’ । (२) नाटक समयसार मे ‘मूर्ख’ कहा है । (३) आत्मा-वलोकन मे कहा है कि “यह उनका हरामजादीपना है ।” (४) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि “अज्ञान मोह अन्वकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है” । (५) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि ‘वह पद-पद पर घोखा खाता है’ । (६) समयसार व मोक्षमार्ग-प्रकाशक आदि सब ग्रन्थो मे मिथ्यादृष्टि, अभव्य, सम्यक्त्व से रहित अनीति आदि नामो से सम्बोधित किया है ।

(१२) “उभयाभासी को मान्यता अनुसार निश्चय से मैं द्रव्यकर्म नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु हूं और व्यवहार से मैं ज्ञान-

दर्शन वाला जीव हूँ। इस वाक्य पर भेद-अभेद के दस प्रश्नोत्तरो द्वारा स्पष्टीकरण।”

प्रश्न २३१—मुक्त निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसा अभेदरूप निश्चय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार की प्रवृत्ति रखता हूँ। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों को भूठा बता दिया, तो हम निश्चय व्यवहार को किस प्रकार समझें जो कि हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलाये ?

उत्तर—मुक्त निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसा अभेदरूप निश्चय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्रश्न २३२—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का त्याग करने का और मुक्त निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—निश्चय से मुक्त आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है और व्यवहार भेद से मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानों को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को भेद-अभेद निश्चय-व्यवहार

होता ही नहीं है—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि में आया है तथा स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो में—मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुड़ाया। तो फिर सन्तपुरुष द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु परम त्रिकाली निज ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन रूप निज महिमा में स्थिति करके क्यो केवलज्ञान प्रगट नहीं करते हैं—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न २३३—मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अंगीकार करने और मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्ष प्राभूत गाथा ३१ में कहा है “मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—जो ऐसे भेदरूप व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है। तथा मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—जो ऐसे भेदरूप व्यवहार में जागता है वह अपने आत्मकार्य में सोता है। इसलिए मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २३४—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप

परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय=मुक्त निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—यह स्वद्रव्य, मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—यह परद्रव्य, इस प्रकार अभेदरूप स्वद्रव्य और भेदरूप परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। मै ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—सो ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय=अभेदरूप स्वद्रव्य और भेदरूप परद्रव्य का यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। मुक्त निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु हूँ—सो ऐसे ही अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न २३५—आप कहते हो कि भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग में भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनो नयों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो मुक्त निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ, ऐसे ही है”—ऐसा जानना। तथा कही मै ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे “ऐमे है नही, भेदरूप व्यवहारनय की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना। मै ज्ञान दर्शन भेदरूप वाला जीव नही हूँ—मुक्त निज आत्मा तो द्रव्य कर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप

परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—इस प्रकार जानने का नाम ही भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण है ।

प्रश्न २३६—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव भी हूँ अर्थात् भेदरूप भी हूँ और मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु रूप भी हूँ—इस प्रकार हम अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करते हैं । क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ बिल्कुल ही गलत है क्योंकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है तथा उन महानुभावो ने अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर के व्यवहार से मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव भी हूँ और निश्चय से मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से भिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु भी हूँ—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नहीं कहा है ।

प्रश्न २३७—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—यदि ऐसा भेदरूप व्यवहारनय असत्यार्थ है तो भेदरूप व्यवहार का उपदेश जिनवाणी मे किसलिए दिया ? मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे एक मात्र अभेद निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है । वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म,

भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेद परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिए मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का उपदेश है। (२) मुझ निजआत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चय का ज्ञान कराने के लिए मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का उपदेश है। भेदरूप व्यवहारनय है, उसका उपदेश भी है, जानने योग्य है परन्तु भेदरूप व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २३८—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना, मुझ निजआत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेद निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चयनय मे मुझ निजआत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म-रूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है। उसे जो नहीं पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिये उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण पर्याय रूप जीव के विशेष किये तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है—इत्यादि गुणभेद सहित उनका जीव की पहिचान हुई। मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना अभेदरूप निश्चय का उपदेश न होना जानना।

प्रश्न २३९—मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय को कैसे अंगीकार नहीं करना, सो समझाइये ?

उत्तर—मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,

क्योंकि मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से मुझ निज आत्मा अभेद ही है। उसी को जीव वस्तु मानना। सज्ञा, सख्या, लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से भिन्न-भिन्न नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप व्यवहार अगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २४०—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उस जीव को जिनवाणी से किस-किस नाम से सम्बोधित किया है?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुषार्थ सिद्धियुगाय ग्लोक ६ में कहा है “तस्य देशना नास्ति।” (२) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ में कहा है कि “यह उसका अज्ञान मोह अधिकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।” (३) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को ही जो सच्चा मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ में कहा है कि “वह पद-पद पर धोखा खाता है।” (४) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार नय के कथन को ही जो सच्चा मानता है उसे आत्मावलोकन में कहा है कि “यह उसका हरामजादीपना है।”

प्रश्न २४१—चारित्र्य वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २४२—सुख वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २४३—श्रद्धा वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो ।

(१३) निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्पष्टीकरण

प्रश्न २४४—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसको तीसरी तरह से समझाइये ?

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नहीं पहिचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये, तब उनको तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय मे व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये, तब उन्हें वीतराग भाव की पहिचान हुई—इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २४५—व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता—इस बात का उत्तर प्रश्न २४४ के उत्तर मे दिया—अब इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—वीतराग भाव मोक्षमार्ग को व्रत-शील-सयमादि रूप शुभ-भावो के द्वारा समझाया है, क्योंकि अज्ञानी “मात्र वीतराग भाव मोक्षमार्ग” कहने से समझता नहीं है, जिसको अपने ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग प्रगटा है उसके व्रतादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है । अज्ञानी के व्रतादि की बात यहाँ पर नहीं है । जितना भी व्यवहार है वह सब धर्मद्रव्य के समान है ।

प्रश्न २४६—ज्ञानी के अस्थिरता सम्बन्धी व्रत-शीलादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—ज्ञानी को भूमिकानुसार इसी प्रकार का शुभभाव होगा, अन्य प्रकार का नहीं; ऐसा पता चल जाता है ।

प्रश्न २४७—(१) “तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के

निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा” इस वाक्य को चौथे गुणस्थान में लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन—ज्ञान स्वरूपाचरण-चारित्र्य की प्राप्ति हुई है उसके लिये “तत्त्व-श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक” कहा है। (२) कुदेव-कुगुरु और कुशास्त्र को न मानने तथा मद्य-मांस-मद्यु न खाते हुए की अपेक्षा “परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा” कहा है। (३) व्यवहारनय से सच्चे देवादि तथा सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा—इस प्रकार जानना।

प्रश्न २४८—(१) तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा”—इस वाक्य को छठे गुणस्थान में लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) पाँचवें गुणस्थान में देशचारित्र्य शुद्धि प्रगटी है—उसके लिए ‘तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक’ कहा है। (२) बारह अणुव्रतादि की विरुद्धता ना होने की अपेक्षा—“परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा” कहा है। (३) व्यवहारनय से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना कहा—इस प्रकार जानना।

प्रश्न २४९—(१) “तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से महाव्रतादि को मोक्षमार्ग कहा”—इस वाक्य को छठे गुण स्थान में लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) छठे गुणस्थान में सकलचारित्र्य शुद्धि प्रगटी है—उसके लिए “तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक” कहा है। (२) पीछी-कमडल के अलावा कुछ ना होने की, धरो में ना रहने की, किया कराया अनु-मोदित भोजन ना लेने की अपेक्षा—“परद्रव्य के निमित्त मिटने की

सापेक्षता द्वारा” कहा है । (३) व्यवहारनय से २८ महाव्रतादि रूप शुभभावो को मुनिपना कहा—इस प्रकार जानना ।

प्रश्न २५०—“तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक” किसको लागू पड़ता है और किसको नहीं ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से ज्ञानियो को ही लागू पड़ता है । द्रव्य-लिंगी मुनि-श्रावको को लागू नहीं पड़ता है ।

प्रश्न २५१—“परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा” से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—भूमिकानुसार अस्थिरता सम्बन्धी शुभभावो के विरुद्ध धर्म विरोधी कार्यों का अभाव होने की अपेक्षा ज्ञानियो को लागू पड़ता है, यह तात्पर्य है ।

प्रश्न २५२—किस जीव के व्रत-शीलादि को व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहा ?

उत्तर—जिसको अनुपचार हुआ है ऐसे ज्ञानियो के व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा है । द्रव्यलिंगी आदि के व्रत-शीलादि को नहीं कहा है ।

प्रश्न २५३—व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा, तब व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ? सो कहिये ।

उत्तर—(१) परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना । (२) क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता हो जाये; परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं । (३) इसलिए आत्मा अपने भाव रागादिक हैं, उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है, इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है । (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है । (५) इसलिए व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथन मात्र ही है ।

(६) परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है, ऐसा जानना ।

प्रश्न २५४—व्यवहारनय से ज्ञानों के व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा, तथा निश्चयनय से शुद्धि प्रगटी उसे ही मोक्षमार्ग कहा—ऐसा बताने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—वास्तव में वीतरागता ही मोक्षमार्ग है अस्थिरता सम्बन्धी राग मोक्षमार्ग नहीं है, बन्ध मार्ग है । इसमें चरणानुयोग के शास्त्रों का अर्थ करने की बात समझाई है ।

प्रश्न २५५—चौथे गुणस्थान की मिश्रदशा में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण-चारित्र नैमित्तिक है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग व सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा निमित्त है ।

प्रश्न २५६—(१) चौथे गुणस्थान में अशुद्धि अंश का किसके साथ तथा (२) शरीर की क्रिया का किसका किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर—(१) सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग व सात तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा नैमित्तिक है; चारित्र मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) हाथ जोड़ना आदि—शब्दरूप वचन नैमित्तिक है, सच्चे देवगुरु-शास्त्र के प्रति शुभराग निमित्त है ।

प्रश्न २५७—पाँचवें गुणस्थान की मिश्रदशा में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—देशचारित्ररूप वीतरागता नैमित्तिक है; बारह अणुव्रतादि का राग निमित्त है ।

प्रश्न २५८—(१) पाँचवें गुणस्थान में अशुद्धि अंश का किसके साथ (२) तथा अणुव्रतादि शरीर की क्रिया का किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर—(१) बारह अणुव्रतादि का राग नैमित्तिक है; चारित्र मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) बारह अणुव्रतादि रूप शरीर की क्रिया नैमित्तिक है, तो बारह अणुव्रतादि का भाव निमित्त है ।

प्रश्न २५६—छठे गुणस्थान की मिश्रदशा में निमित्त नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—सकलचारित्ररूप शुद्धि नैमित्तिक है; २८ मूलगुणादि का विकल्प निमित्त है ।

प्रश्न २६०—(१) छठे गुणस्थान में अशुद्धि अंश का किसके साथ तथा (२) २८ मूलगुणादिरूप शरीर की क्रिया का किसका किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर—(१) मूलगुणादि का विकल्प नैमित्तिक है, चारित्र-मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया नैमित्तिक है, तो भार्वाङ्गी मुनि का २८ मूलगुणादि भाव निमित्त है ।

प्रश्न २६१—प्रश्न २५५ से २६० तक निमित्त-नैमित्तिक बनाने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—(१) शरीर-मन-वाणी द्रव्यकर्म की क्रिया का कर्ता सर्वथा पुद्गल द्रव्य ही है । आत्मा का पुद्गल की क्रिया से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है । (२) अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर जो शुद्धि प्रगटी वह ही मोक्षमार्ग है । (३) ज्ञानियो को जो भूमिकानुसार अस्थिरता का राग होता है, उसे बध का कारण दु खरूप जानते हैं । (४) अस्थिरता का भाव=भाव्य और द्रव्यकर्म का उदय भावक है । ज्ञानी उसका तिरस्कार करके अपने में एकाग्र होकर परिपूर्ण दशा की प्राप्ति—यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जानने का फल है ।

प्रश्न २६२—“वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथन-

मात्र ही है; परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना ।” इस वाक्य को मुनिदशा में लगाकर बताओ ?

उत्तर—सकलचारित्र रूप मुनिदशा नैमित्तिक तथा २८ मूलगुणादि का विकल्प निमित्त है । २८ मूलगुणादि को मुनिपना कहा सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से २८ मूलगुणादिपना मुनिपना नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना ।

प्रश्न २६३—‘वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है”—ऐसा ही श्रद्धान करना—इस वाक्य को श्रावकपना और सम्यक्दृष्टिपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(इन दोनों प्रश्नों का उत्तर प्रश्न न० २६२ के अनुसार दो ।)

प्रश्न २६४—वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसमें ‘कदाचित्’ शब्द क्या सूचित करता है ?

उत्तर—४-५-६ वे गुणस्थान में ‘कदाचित्’ शब्द सविकल्प दशा में लागू पड़ता है । केवलज्ञानी को, अज्ञानी को तथा निर्विकल्प दशा में साधक को ‘कदाचित्’ शब्द लागू नहीं पड़ता है ।

प्रश्न २६५—नग्नपने आदि शरीर की क्रियाओं से मुनिपने की पहचान क्यों कराई है, जबकि बाहरी क्रिया मुनिपना नहीं है ?

उत्तर—आत्मा अरूपी, आत्मा के गुण अरूपि और आत्मा की सकलचारित्ररूप मुनिपना शुद्ध पर्याय अरूपी और २८ मूलगुणरूप व्यवहार मुनिपना अशुद्ध पर्याय भी अरूपी है । अब उसका ज्ञान कैसे कराया जावे—(१) तब वहाँ निश्चय की मुख्यता रखकर धर्म विरोधी कार्यों का अभाव होने से जो नग्न हो, पीछी-कमण्डल के अलावा कुछ न रखता हो, जगल में रहता हो, उद्दिष्ट आहार ना लेता हो—वह मुनि है । (२) यहाँ पर ऐसा समझना कि वीतरागरूप सकलचारित्र-

रूप निश्चय मुनिपने का २८ मूलगुण रूप व्यवहार मुनिपने में उपचार किया है; २८ मूलगुणरूप व्यवहार मुनिपने का बाहरी शरीरादि की क्रिया में उपचार का उपचार किया तो उसे मुनि कहा । (३) यहाँ ऐसा जानना—बाहरी क्रिया तो सर्वथा पुद्गल की ही है उससे मुनिपने का सम्बन्ध ही नहीं है । (४) परन्तु भूमिकानुसार २८ मूलगुणादि व्यवहार मुनिपना कहा—वह भी कहने मात्र का मुनिपना है वास्तव में मुनिपना नहीं है । मुनिपना तो सकलचारित्र शुद्धोपयोगरूप ही है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७३]

प्रश्न २६६—बारह अणुव्रतादिकरूप शरीर की क्रियाओं से श्रावकपने की पहिचान क्यों कराई ?

उत्तर—(प्रश्न २६५ के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न २६७—सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की बाहरी भक्ति देखकर सम्यक्दृष्टि की पहिचान क्यों कराई ?

उत्तर—(प्रश्न २६५ के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न २६८—निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग के सम्बन्ध में जिनवाणी ने क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) महाव्रतादि होने पर वीतराग चारित्र होता है—ऐसा सम्बन्ध जानकर महाव्रतादि में चारित्र का उपचार किया है, निश्चय से नि कषाय भाव है वही सच्चा चारित्र है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३०]

(२) मोक्षमार्ग दो नहीं है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है । जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग का निरूपित किया जाये सो निश्चय मोक्षमार्ग है और जो मोक्षमार्ग तो है नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है वह सहचारी है—उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जावे सो व्यवहार मोक्षमार्ग है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४८]

(३) व्रत-तप आदि मोक्षमार्ग है नहीं, निमित्त की अपेक्षा उपचार से बतादि को मोक्षमार्ग कहते हैं । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

(४) निचली दशा मे कितने ही जीवो के शुभोपयोग और शुद्धो-पयोग का युक्तपना पाया जाता है, इसलिए उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है, वस्तु का विचार करने पर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है; क्योंकि बध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है—ऐसा श्रद्धान करना । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(५) एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा-मुनिदशा होती है क्योंकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है । ऐसा जानकर श्रावक मुनिधर्म के विशेष पहचानकर जैसा अपना वीतरागभाव हुआ हो वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं । वहाँ जितने अश मे वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते हैं । जितने अश में राग रहता है उसे हेय जानते हैं । सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं—ऐसा चरणानुयोग का प्रयोजन है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७१]

(६) धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, वही है, उसके साधनादिक उपचार से धर्म है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७]

(७) निश्चयस्वरूप सो भूतार्थ है, व्यवहारस्वरूप है सो उपचार है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७६]

(८) चारित्र दो प्रकार का है—एक सराग है, एक वीतराग है । वहाँ ऐसा जानना कि जो राग है वह चारित्र का स्वरूप नहीं है, चारित्र मे दोष है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५४]

(९) कोई वीतराग भाव तप को न जाने और अनशनादि शुभ भावों को तप जानकर सग्रह करे तो ससार मे ही भ्रमण करेगा । बहुत क्या इतना समझ लेना कि निश्चय धर्म तो वीतराग भाव है, अन्य नाना विशेष बाह्य साधन की अपेक्षा उपचार से किए हैं, उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा जानना । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

इसलिए निर्णय करना चाहिये कि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप तथा फल विरुद्ध ही है ।

(१४) निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का नौ बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न २६६—‘बारह अणुव्रतादि श्रावकपना है’—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—बारह अणुव्रतादि श्रावकपना है—ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना और जहाँ देशचारित्ररूप श्रावकपना है—ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना, क्योंकि भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ में कहा है कि जितना भी पराश्रित व्यवहार है वह सर्व जिनेन्द्र देवों ने छुड़ाया है और निश्चय को प्रगट करके निज महिमा में प्रवर्तन का आदेश दिया है ।

प्रश्न २७०—निश्चय-व्यवहार श्रावकपने के विषय में मोक्षपाहुड़ गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—जो बारह अणुव्रतादि श्रावकपने की श्रद्धा छोड़कर देश-चारित्र शुद्धिरूप श्रावकपनेरूप अपने स्वभाव में रमता है वह योगी अपने कार्य में जागता है तथा जो बारह अणुव्रतादि श्रावकपने से लाभ मानता है वह अपने कार्य में सोता है । इसलिये बारह अणुव्रतादिरूप श्रावकपने का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनयरूप श्रावकपने का श्रद्धान कारना योग्य है ।

प्रश्न २७१—बारह अणुव्रतादि व्यवहाररूप श्रावकपने की श्रद्धा छोड़कर निश्चयनय देशचारित्र रूप श्रावकपने का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय स्वद्रव्य के भावों को (वीतराग देशचारित्र श्रावकपने को) परद्रव्य के भावों को (१२ अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपने को) किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना

तथा निश्चयनय स्वद्रव्य के भावो को (वीतरागरूप देशचारित्ररूप श्रावकपने को) परद्रव्य के भावो को (१२ अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपने को) किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता है, यथावत् निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न २७२—आप कहते हो कि १२ अणुव्रतादिरूप व्यवहार श्रावकपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करो और वीतराग देशचारित्ररूप निश्चय श्रावकपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करो । परन्तु जिनमार्ग में दोनों प्रकार के श्रावकपने का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना—जिनमार्ग में ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना । तथा १२ अणुव्रतादि विकल्प रूप श्रावकपना है—ऐसा व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे 'ऐसे हैं नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना । (वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना है और १२ अणुव्रतादि श्रावकपना नहीं है) इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय श्रावकपने और व्यवहार श्रावकपने का ग्रहण है ।

प्रश्न २७३—कोई-कोई विद्वान 'वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना भी है और बारह अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपना भी है' ऐसा कहते हैं—क्या ऐसा मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—झूठे ही हैं, क्योंकि दोनों श्रावकपने के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी हैं, ऐसे भी हैं'—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार श्रावकपने का ग्रहण करना नहीं कहा है ।

प्रश्न २७४—यदि व्यवहार श्रावकपना असत्यार्थ है, तो व्यवहार श्रावकपने का उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? एक वीतरागरूप निश्चय श्रावकपने का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—व्यवहार श्रावकपने के बिना परमार्थ श्रावकपने का उपदेश अशक्य है, इसलिये व्यवहार श्रावकपने का उपदेश है। निश्चय श्रावकपने को अंगीकार कराने के लिए व्यवहार श्रावकपने द्वारा उपदेश देते हैं, परन्तु व्यवहार श्रावकपना है, उसका विषय भी है, जानने योग्य है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २७५—व्यवहार श्रावकपने बिना निश्चय श्रावकपने का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चय से वीतराग देशचारित्र्य श्रावकपना है, उसे जो नहीं पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नहीं पाये। तब उनको तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक, पर-द्रव्य के निमित्त भिटाने की सापेक्षता द्वारा, व्यवहारनय से १२ अणुव्रतादि श्रावकपने को निश्चय श्रावकपने का विशेष बताया तब उन्हें निश्चय श्रावकपने की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार श्रावकपने के बिना निश्चय श्रावकपने के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २७६—बारह अणुव्रतादि विकल्परूप व्यवहार श्रावकपने को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) परद्रव्य का निमित्त भिटाने की अपेक्षा से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना कहा, सो इन्हीं को श्रावकपना नहीं मान लेना। (२) क्योंकि बारह अणुव्रतादि का ग्रहण-त्याग आत्मा के ही तो आत्मा पर द्रव्य का (बारह अणुव्रतादिरूप शरीर की क्रिया का) कर्त्ता हर्त्ता हो जाये; परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है ही नहीं। (३) इसलिए आत्मा अपने भाव जो बारह अणुव्रतादि शुभभाव रूप श्रावकपना है, उन्हें छोड़कर निश्चय देशचारित्र्यरूप श्रावकपना होता है, इसलिये निश्चय से वीतराग देशचारित्र्यरूप ही श्रावकपना है। (४) वीतराग देशचारित्र्यरूप श्रावकपने के और शुभभावरूप श्रावकपने के कदाचित् कार्य-कारणपना है। (५) इसलिये बारह अणुव्रतादि शुभभावों को श्रावकपना कहे सो कथन मात्र ही है। (६) परमार्थ से

१२ अणुव्रतादि शुभभावरूप श्रावकपना नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार व्यवहारनय को अगोकार नहीं करना—ऐसा जान लेना ।

प्रश्न २७७—जो अणुव्रतादिक विरूप व्यवहार श्रावकपने को ही सच्चा श्रावकपना मानता है उसे शास्त्रों में किस-किस नामों से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—जो व्यवहार श्रावकपने को ही श्रावकपना मानता है उसे (१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है । (२) नाटक समयसार में 'मूर्ख' कहा है । (३) आत्मावलोकन में 'हरामजादीपना' कहा है । (४) समयसार कलश ५५ में कहा है कि 'यह उसका अज्ञान मोह अधिकार है और उसका सुलटना दुर्निवार है ।' (५) प्रवचनसार गाथा ५५ में कहा है 'वह पद-पद पर धोखा खाता है ।' (६) समयसार में 'उसका फल ससार ही है ।' ऐसा कहा है । वह क्रम से चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है ।

(१५) 'उभयाभासों की मान्यता अनुसार निश्चय से सकलचारित्र-रूप मुनिपने का श्रद्धान रखता है और २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता है । इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार मुनिपने का दस प्रश्नोत्तरो द्वारा स्पष्टीकरण'

प्रश्न २७८—सकलचारित्र वीतरागभाव मुनिपना है ऐसे निश्चय मुनिपने का तो श्रद्धान रखता हूं और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है ऐसे व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता हूं । परन्तु आपने हमारी मान्यता अनुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने को झूठा बता दिया । तो हम निश्चय-व्यवहार को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र रूप वीतरागभाव मुनिपना है—ऐसे निश्चयनय से जो निरूपण किया हो

उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसे व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्रश्न २७८—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसे व्यवहार मुनिपने का त्याग करने का, तीन चौकड़ी कषाय के अभावत्प सकल-चारित्र्यरूप वीतरागभाव मुनिपना है—ऐसे निश्चय मुनिपने को अंगी-कार करने का आदेश कहीं भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयानार कलश १७३ में आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी की ऐसी मान्यता है कि वे निश्चय से सकलचारित्र्य वीत-रागभावत्प निश्चय मुनिपने की श्रद्धा रखता है और व्यवहार से २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति ऐसे व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता है—यह उसका मिथ्या-अव्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अव्यवसानों की छोड़ना क्योंकि मिथ्यादृष्टियों को निश्चय-व्यवहार कुछ होता ही नहीं है—ऐसा अनादि से जिनेंद्र भगवानों की दिव्यवृत्ति में आया है । तथा स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियों को जो २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति-ऐसा जो पराश्रित व्यवहार मुनिपना होता है—सो सर्व ही छोड़ा है । तो फिर सन्त पुरुष । एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय के आश्रय से सकलचारित्र्य वीतरागभाव-रूप मुनिपने को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति करके केवलज्ञान क्यों प्रगट नहीं करते । ऐसा कहकर आचार्य भगवान् ने खेद प्रगट किया है ।

प्रश्न २८०—सकलचारित्र्य वीतरागभावत्प निश्चय मुनिपने को अंगीकार करने और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के त्याग के विषय में भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्षप्राभूत गाथा ३१ में कहा है कि “जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र्य वीत-रागभावत्प निश्चय मुनिपने की श्रद्धा रखता है वह योगी अपने

आत्मकार्य में जागता है। तथा जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने में जागता है वह अपने आत्मकार्य में सोता है। इसलिये २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र्य वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २८१—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र्य वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय=सकलचारित्र्य वीतरागभाव रूप निश्चय मुनिपना—यह स्वद्रव्य के भाव, २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना—यह परद्रव्य के भाव है। निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भावों, २८ मूलगुणादि परद्रव्य के भावों को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति ही मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय=निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भावों को, २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप परद्रव्य के भावों को यथावत् निरूपण करता है तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता है। सकलचारित्र्यरूप वीतराग ही मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इसलिए श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न २८२—आप कहते हो कि २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव निश्चय मुनिपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग में निश्चय-व्यवहार दोनों मुनिपनों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग में कही तो सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे तो

“सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जानना तथा कही २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसा व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे “ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना । २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना नहीं है, सकलचारित्र्य रूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनों मुनिपना का ग्रहण है ।

प्रश्न २८३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति भी मुनिपना है और सकलचारिकरूप वीतराग भाव भी मुनिपना है—इस प्रकार निश्चय-व्यवहार दोनों मुनिपनों का ग्रहण करना चाहिए । क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल गलत है । क्योंकि उन महानुभावों को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है तथा निश्चय-व्यवहार दोनों मुनिपनों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर “२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति भी मुनिपना है और सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव भी मुनिपना है”—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है ।

प्रश्न २८४—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपना असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? सकल-चारित्र्यरूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—एकमात्र ऐसे निश्चय मुनिपने का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार में किया है । वहाँ उत्तर दिया है कि—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना, सकलचारित्र्य रूप वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने का उपदेश अशक्य है । इसलिए २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने का उपदेश है । इस प्रकार सकलचारित्र्य वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराने के लिए २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप

व्यवहार मुनिपने का उपदेश देते हैं। व्यवहार मुनिपना है, उसका विषय भी है परन्तु २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २८५—२८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र्य वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चय से सकलचारित्र्यरूप वीतरागभाव ही मुनिपना है। उसे जो नहीं पहिचानते, उनको ऐसे ही कहते रहे, तो वे समझ नहीं पाये। तब उनको सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव प्रगट हुआ—यह तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के धर्म विरोधी कार्य मिटने की अपेक्षा द्वारा व्यवहारनय से २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये। तब उन्हें निश्चय वीतराग मुनिपने की पहचान हुई। इस प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र्य वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २८६—२८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के धर्म-विरोधी कार्य मिटने की अपेक्षा द्वारा २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा, सो इन्ही को मुनिपना नहीं मान लेना। (२) क्योंकि २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया का ग्रहण-त्याग यदि आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नहीं है। (३) इसलिए आत्मा अपने भाव जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप रागादि हैं, उन्हें छोड़कर सकलचारित्र्य वीतराग भावरूप होता है। इसलिए निश्चय से सकलचारित्र्यरूप वीतराग भावरूप होता है। इसलिए निश्चय से सकलचारित्र्यरूप वीतराग भाव

ही मुनिपना है। (४) सकलचारित्र्यरूप वीतराग भावों के और २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति के साधक जीव के सविकल्प दशा में कार्य-कारणपना है। इसलिए २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा—सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से २८ मूलगुणादि रूप बाह्य क्रिया मुनिपना नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति (व्यवहार मुनिपना) अगीकार करने योग्य नहीं है—ऐसा जानना।

प्रश्न २८७—२८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति अर्थात् व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मानता है उसे जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुषार्थसिद्धियुपाय श्लोक ६ में कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति।' (२) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ में कहा है कि 'यह उसका अज्ञान मोह अधिकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।' (३) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मुनिपना मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ में कहा है कि, 'वह पद-पद पर धोखा खाता है।' (४) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मुनिपना मान लेता है उसे आत्मावलोकन में कहा है कि 'यह उसका हरामजादीपना है।'।

प्रश्न—२८८—'चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव ईर्ष्या-समिति है'—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २८९—'देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है' इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २६०—‘निश्चय सम्यग्ज्ञान’—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न—२६१—‘निश्चय-व्यवहारचारित्र्य’ में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २६१—‘निश्चय-व्यवहार वचनगुप्ति’ में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २६३—‘निश्चय-व्यवहार उत्तमक्षमा’ में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २६४—‘निश्चय-व्यवहार क्षुधापरिषहजय’ में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २६५—‘ज्ञानावरणीय कर्म के अभाव से केवल ज्ञान होता है’—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न २६६—‘दर्शनमोहनीय के अभाव से क्षायिक सम्यक्त्व होता है’—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो ।

(१६) व्यवहारनय कार्यकारी कब और कब नहीं का स्पष्टीकरण

प्रश्न २६७—व्यवहारनय अकार्यकारी कब और कैसे है ?

उत्तर—(अ) मनुष्य जीव कहने पर जीव को तो न समझे और मनुष्य शरीर को ही जीव मान ले—तो मिथ्या श्रद्धा दृढ़ हो जावेगी ।

(आ) व्रतादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहा, वहाँ राग को ही मोक्ष-मार्ग मान ले और वीतराग भाव को ना पहिचाने तो मिथ्या श्रद्धा दृढ़ हो जावेगी। (इ) गुण-गुणी के भेद से समझाया तो भेद में ही रुक जावे, अभेद का लक्ष्य न करे, तो मिथ्या श्रद्धा दृढ़ हो जावेगी। इस प्रकार जाने-माने तो व्यवहारनय अनर्थकारी हो जावेगा।

प्रश्न २६८—व्यवहारनय कार्यकारी कब और कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—(अ) मनुष्य जीव कहते ही देह से भिन्न में ज्ञानस्वरूप भगवान् आत्मा हूँ ऐसा लक्ष्य करे, (आ) आत्मा ज्ञानवाला, दर्शनवाला ऐसा सुनकर भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा पर दृष्टि दे। (इ) देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान् सम्यग्दर्शन है—यह सुनकर यह सम्यग्दर्शन नहीं है, श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी वह सम्यक्दर्शन है। इस प्रकार जाने माने तो व्यवहारनय कार्यकारी कहा जा सकता है।

प्रश्न २६९—निचली वशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—व्यवहार का आश्रय बधरूप होने से हेय है। ऐसा जानकर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति-वृद्धि करे तो व्यवहारनय कार्यकारी है ऐसा बोलने में आता है।

प्रश्न ३००—मुनिराज कैसे अज्ञानी को व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं ?

उत्तर—(१) अज्ञानी कहते ही—ज्ञानी नहीं है, भगडा करने वाला नहीं है, (२) परन्तु जैसा मुनिराज कहते हैं, वैसा ही चौबीस घण्टे विचार-मथन करता है, (३) वास्तव में सच्चा निश्चय मोक्षमार्ग है और व्यवहारनय मोक्षमार्ग नहीं है, किन्तु उपचार का कथन है—ऐसा बराबर जानकर केवल किसी एक की ही सत्ता मानकर स्वच्छन्द नहीं होता है, किन्तु उनके स्वरूप अनुसार यथायोग्य दोनों की सत्ता

को मानता है, ऐसे अज्ञानी को समझाने के लिए व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं।

प्रश्न ३०१—मुनिराज कैसे अज्ञानी को व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं, जरा स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) कार्य तो निश्चयकारण उपादान से ही मानता है और व्यवहार उपचार कारण निमित्त को भी मानता है। (२) त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति-वृद्धि और पूर्णता होती है, पर के, विकार के आश्रय से नहीं होता है। (३) जीव-पुद्गल का ठहरना, चलना, अवगाहन और परिणमन कार्य तो स्वतंत्र उपादान के गुणों की पर्यायों की योग्यता से मानता है और अधर्म-धर्म-आकाश और काल को उपचार कारण मानता है। (४) ज्ञान जानता तो स्वकाल की योग्यता में है और ज्ञेय तो उपचार मात्र निमित्त कारण है। (५) अज्ञान दशा में राग का कर्त्ता तो अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा को मानता है और द्रव्यकर्म को उपचार निमित्तकारण मानता है। इस प्रकार जो मानता है ऐसे अज्ञानी को मुनिराज ज्ञानी बनाने के लिये व्यवहारनय का उपदेश देते हैं।

प्रश्न ३०२—मुनिराज कैसे अज्ञानी को उपदेश देने के योग्य नहीं समझते ?

उत्तर—(१) जो निश्चय को तो बिल्कुल जानता ही नहीं है और ज्ञानियों की बात सुनते ही भगडा करने को तैयार रहता है। (२) सर्वथा एकान्त कथन को ही सच्चा मानता है। (३) ऐसे सर्वथा निश्चय पक्ष वालों को और (४) सर्वथा व्यवहार पक्ष वालों को मुनिराज उपदेश देने के योग्य नहीं समझते हैं।

प्रश्न ३०३—मुनिराज कैसे अज्ञानी को उपदेश देने के योग्य नहीं समझते—जरा स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—(१) समयसार में भूतार्थ वस्तु को पकड़ाने के लिए चार प्रकार का भेदरूप अभूतार्थ वस्तु का निरूपण किया है, परन्तु जो

अभूतार्थ वस्तु को ही भूतार्थ मान लेता है । (२) मोक्षशास्त्र मे 'गतिस्थित्युय-ग्रहौधर्माधर्मयो-रूपकारः' आया है—वहाँ मात्र इतना ही बताना है कि जब जीव-पुद्गल स्वय अपनी योग्यता से चलते है तो धर्मद्रव्य निमित्त होता है और जब स्वय अपनी योग्यता से ठहरते है तो अधर्म द्रव्य निमित्त होता है परन्तु जो व्यवहार कारण को ही निश्चय कारण मानकर धर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को चलाता है और अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को ठहराता है । (३) मोक्षशास्त्र मे "सुख-दुख जीवित मरणोपग्रहाश्च" तथा "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" सूत्र आये है यह सब निमित्तमात्र का कथन है किन्तु जो निमित्त के कथनों को ही सच्चा मान लेता है । (४) प्रवचनसार मे आया है कि जेय अपना स्वरूप ज्ञान को सौंप देते है, ज्ञान उन्हे पकड़ लेता है यह सब उपचार कथन है परन्तु इसे ही सच्चा मान लेता है । (५) जीव ने कर्मों को बाँधा आदि करणानुयोग का कथन निमित्त की अपेक्षा किया है परन्तु जो उस कथन को ही सच्चा मान लेता है—वह शिष्य उपदेश के योग्य नहीं है । इसलिए मुनिराज ऐसे शिष्य को उपदेश के योग्य नहीं समझते है ।

प्रश्न ३०४—किस-किस मान्यता वाले जीव जिनवाणी सुनने के और गुरु की देशना के लायक नहीं हैं—जरा सीधे-साधे शब्दों मे बताओ ?

उत्तर—(१) परमार्थ का ज्ञान कराने के लिए व्यवहार का कथन है उसके बदले व्यवहार के अवलम्बन से ही लाभ मान ले, (२) वचन गुप्ति रखना चाहिए ऐसा गुरु ने कहा, उसके बदले कहे, तुम क्यों बोलते हो, (३) प्रथम व्यवहार हो तो लाभ हो, (४) व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट हो जावेगा, (५) भेद को अभेद मान ले, (६) देव-गुरुशास्त्र के श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन मान ले, (७) बारह अणुव्रतादि को ही श्रावकपना मान ले, (८) २८ मूलगुणादि को ही मुनिपना मान ले, (९) निमित्त से ही उपादान मे कार्य होता है, (१०) मात्र त्रिकाली

स्वभाव को माने, पर्याय को न माने, (११) मात्र पर्याय को माने, त्रिकाली स्वभाव को न माने, (१२) शरीर की क्रिया में करता हूँ, यह हमारा कार्य है, (१३) आस्रव-बध को सवर निर्जरा मान ले, (१४) जीव को अजीव मान ले, (१५) अजीव को जीव मान ले । वे जीव जिनवाणी सुनने के और गुरु की देशना के भी लायक नहीं हैं ।

प्रश्न ३०५—जो व्यवहार के कथन को ही सच्चा मानते हैं, उन्हें जिनवाणी में किन-किन नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय में कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति ।' (२) समयसारनाटक में कहा है 'मूर्ख ।' (३) आत्मावलोकन में कहा है 'यह उसका हरामजादीपना है ।' (४) समयसार कलश ५५ में कहा है कि 'यह उनका अज्ञानमोह अधिकार है उसका सुलटना दुर्निवार है ।' (५) प्रवचनसार में कहा है कि वह पद-पद पर घोखा खाता है । (६) मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि उसके सब धर्म के अग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं तथा मिथ्यादृष्टि कहा है । (७) समयसार गाथा ११ के भावार्थ में कहा है कि उसका फल ससार है । (८) मोक्षमार्गप्रकाशक नौवें अधिकार में कहा कि यह अनीति है । तात्पर्य यह है कि चारों अनुयोगों में व्यवहार के कथन को सच्चा कथन मानने वालों को चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाने वाला बतलाया है । क्योंकि व्यवहार-निश्चय का प्रतिपादक है उसके बदले सच्चा मान लेता है । वह सम्यक्त्व से रहित पुरुषों का व्यवहार है ।

प्रश्न ३०६—(१) कोई निर्विचारी पुरुष कहे कि—तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो । (२) तो हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहार किस लिए करें ? हम व्रत, शील, संयमादि को छोड़ देंगे ?

उत्तर—(१) व्रत, शील संयमादि का नाम व्यवहार नहीं है । यह तो शुभ-भाव रूप प्रवृत्ति है और प्रवृत्ति में व्यवहार का प्रयोजन ही नहीं है । परन्तु जिनको अपने स्वभाव के आश्रय से एक देश शुद्ध दशा प्रगट हुई है उस व्रत, शील, संयमादि में मोक्षमार्ग का उपचार

करना—यह व्यवहार है। परन्तु व्रत, शील, सयमादि मोक्षमार्ग है—यह मान्यता छोड़ दे। व्रत, शील, सयमादि मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा श्रद्धान कर। इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, यह तो परद्रव्याश्रित है; तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है। इस प्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना। (२) व्रतादिक छोड़ने से तो व्यवहार का हेयपना नहीं होता है। पंडित पूछते हैं—व्रतादि छोड़कर क्या करेगा? यदि हिंसादि रूप प्रवर्तेंगा तो वहाँ मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भव नहीं है, अशुभ मे प्रवर्तने से क्या भला होगा? नरकादि प्राप्त करेगा। इसलिए शुभ-भावो को छोड़कर अशुभ मे प्रवर्तन करना निविचारीपना है। व्रतादि रूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है, वह निचली दशा मे हो नहीं सकता, इसलिए व्रतादि साधन छोड़कर स्वच्छन्द होना योग्य नहीं है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

प्रश्न ३०७—व्यवहार को (व्रत, शील संयमादि को) असत्यार्थ हेय जनना—इस बात को शास्त्रो मे कहीं और भी कहा है?

उत्तर—(१) मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६ मे कहा है कि अहिंसा-व्रत् सत्यादिक तो पुण्यबन्ध के कारण है और हिंसावत् असत्यादिक पाप बन्ध के कारण है। ये सर्व मिथ्या अध्यवसाय हैं और त्याज्य हैं। इसलिए हिंसादिवत् अहिंसादिक को भी बन्ध का कारण जानकर हेय ही मानना। (२) मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५० मे कहा है कि क्योंकि सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है।

प्रश्न ३०८—व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है, वह निचली दशा मे हो नहीं सकता। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५४] इसका अर्थ स्पष्ट करो?

उत्तर—मात्र वीतरागता तो १२वें गुणस्थान में है। व्रतादि रूप धरिणति को मिटाकर १२वा गुणस्थान होना वने तो अच्छा है। वह निचली दशा में (४-५-६ गुणस्थान तथा अबुद्धिपूर्वक राग १०वे तक) हो नहीं सकता।

प्रश्न ३०६—उदासीन भाव का क्या अर्थ है ?

उत्तर—वीतराग भाव रूप शुद्ध दशा का नाम उदासीन भाव है।

(अ) उदासीन होकर निश्चल वृत्ति को धारण करते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३]

(आ) सच्ची उदासीनता के अर्थ यथार्थ अनित्यत्वादिक का चिन्तन करना ही सच्ची अनुप्रेक्षा है, सकल कषाय रहित जो उदासीन भाव है उसी का नाम चारित्र है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६]

(इ) सच्ची उदासीनता तो उसका नाम है कि किसी द्रव्य का दोष या गुण भासित न हो स्व को स्व जाने, पर को पर जाने; पर में कुछ भी मेरा प्रयोजन नहीं है ऐसा मानकर सक्षीभूत रहे। सो ऐसी उदासीनता जानी के ही होती है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४४]

(ई) उदासीनता का अर्थ ज्ञाता-दृष्टामात्र, ज्ञान, भवनमात्र, सहज उदासीन कहा है।

[समयसार कर्त्ता कर्म अधिकार]

प्रश्न ३१०—शास्त्रों में जहाँ शुभभाव का निषेध किया हो और जहाँ शुभभाव को अच्छा कहा हो, वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—(१) जहाँ शास्त्र में शुभभाव का निषेध किया हो वहाँ शुद्ध में जाने के लिए जानना चाहिए। जहाँ शुभभाव को अच्छा कहा हो वह अशुभ की अपेक्षा जानना तथा दोनों ही बध के कारण और दुःख रूप है ऐसा जानना चाहिए। (२) आत्मानुभवनादि में लगाने

को व्रत-शील-सयमादि का हीनपना प्रगट करते हैं। वहाँ ऐसा नहीं जान लेना कि इनको छोड़कर पाप में लगना, क्योंकि उस उपदेश का प्रयोजन अशुभ में लगाने का नहीं है। शुद्धपयोग में लगाने को शुभोपयोग का निषेध करते हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २८४]

(२) “पुण्य पाप का श्रद्धान होने पर पुण्य को मोक्षमार्ग न माने या स्वच्छन्दी होकर पापरूप न प्रवर्त्ते।”

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१६]

(३) किसी शुभ क्रिया को जहाँ निन्दा की हो, वहाँ तो उससे ऊँची शुभ क्रिया या शुद्धभाव की अपेक्षा जानना और जहाँ प्रशंसा की हो वहाँ उससे नीची क्रिया व अशुभ क्रिया की अपेक्षा जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६६]

(४) व्यवहार धर्म की प्रवृत्ति से पुण्य बध होता है; इसलिए पाप-प्रवृत्ति की अपेक्षा तो इसका निषेध है नहीं, परन्तु जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति से ही सन्तुष्ट होकर सच्चे मोक्षमार्ग के उद्यमी नहीं होते हैं उन्हें मोक्षमार्ग में सन्मुख करने के लिए उस शुभरूप मिथ्या प्रवृत्ति का भी निषेध करते हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१३]

(५) जैसे—रोग तो थोड़ा या बहुत, बुरा ही है परन्तु बहुत रोग की अपेक्षा थोड़े रोग को भला ही कहते हैं। इसलिए शुद्धोपयोग न हो, तब अशुभ से छुटकर शुभ में प्रवर्तन योग्य है, शुभ को छोड़कर अशुभ में प्रवर्तन योग्य नहीं है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २०५]

(१७) मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५४ से २५७

तक का स्पष्टीकरण

प्रश्न ३११—उभयाभासी निश्चय-व्यवहार किसे मानता है ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय में तो आत्मा सिद्धसमान-केवलज्ञानादि सहित, द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से रहित है और वर्तमान पर्याय में

ही व्यवहारनय से ससारी मतिज्ञानादि सहित तथा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म सहित है—ऐसा मानना है ।

प्रश्न ३१२—क्या उभयाभासी का ऐसा निश्चय-व्यवहार मानना ठीक है ?

उत्तर—ठीक नहीं है, क्योंकि एक आत्मा के एक ही समय में ऐसे दो स्वरूप वर्तमान पर्याय में हो ही नहीं सकते हैं । पर्याय में ही सिद्ध-पना और पर्याय में ही ससारीपना, पर्याय में ही केवलज्ञानादि और पर्याय में ही मतिज्ञानादि एक आत्मा के एक साथ नहीं हो सकते हैं । जिस भाव का सहितपना उस भाव ही का रहितपना एक वस्तु में कैसे सम्भव हो ?—इसलिए उभयाभासी का ऐसा मानना भ्रम है ।

प्रश्न ३१३—उभयाभासी पूछता है कि सच्चा निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) सिद्ध और ससारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान है । पर्याय अपेक्षा सिद्ध को पर्याय में सिद्धपना प्रगट है और ससारी को पर्याय अपेक्षा ससार है । (२) ससारी की पर्याय में निश्चय से मति-ज्ञानादि है और सिद्ध की पर्याय में निश्चय से केवलज्ञानादि है । परन्तु ससारी में केवलज्ञानादि की स्वभाव अपेक्षा शक्ति है । (३) द्रव्यकर्म-नोकर्म पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए निश्चय से ससारी के भी इनका भिन्नपना है, परन्तु सिद्ध की भाँति इनका कार्य-कारण अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम भी है । (४) दोष अपना है, पर ने नहीं कराया है इसलिए भावकर्म निश्चय से आत्मा का कहा है । तथा सिद्ध की भाँति ससारी के भी रागादिक न मानना, उन्हें कर्म ही का मानना वह भी भ्रम है ।

प्रश्न ३१४—द्रव्यकर्म-नोकर्म का संसारी के कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध किस प्रकार है, सो समझाइये ?

उत्तर—(अ) ससारी ने इच्छा की—हाथ उठा, इसमें हाथ उठा नैमित्तिक, जीव की इच्छा निमित्त है । (आ) जीव ने विकार किया

तो कर्म बँधा, इसमें कर्म बंधा नैमित्तिक, जीव ने विकार किया निमित्त । (इ) बाई ने रोटी बनाई—इसमें रोटी बनी नैमित्तिक बाई का राग निमित्त है । इस प्रकार ससारी के द्रव्यकर्म-नोकर्म का कार्य-कारण सम्बन्ध है, परन्तु सिद्ध के साथ ऐसा कार्य-कारण सम्बन्ध भी नहीं है—ऐसा जानना ।

प्रश्न ३१५—संसारी के निश्चय से मतिज्ञानादिक ही है—इसमें मतिज्ञानादिक के लिए निश्चय क्यों लगाया है ?

उत्तर—‘उभयाभासी ने कहा था कि ‘पर्याय में निश्चय से सिद्ध समान और पर्याय में व्यवहार से मतिज्ञानादिक सहित हूँ’ उसकी बात झूठ है यह बताने के लिए मतिज्ञानादिक के लिए ‘निश्चय’ लगाया है ।

प्रश्न ३१६—‘आत्मा तो जैसा है वैसा ही है’—इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—(अ) निश्चय में आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, आत्मा में सिद्ध और केवलज्ञानादिक की शक्ति है । (आ) पर्याय में साधक ज्ञानियों को शुद्ध और अशुद्धिरूप मिश्र पर्याय है । (इ) मिथ्यादृष्टियों को पर्याय में मात्र अशुद्धि ही है । (ई) सिद्ध को पर्याय में सम्पूर्ण शुद्धता प्रगटी है । ज्ञानी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की अपेक्षा जैसा-जैसा है वैसा-वैसा मानता है, जानता है इसलिए ‘आत्मा तो जैसा है वैसा ही है’—कहा है ।

प्रश्न ३१७—कथन में भगड़ा क्यों पड़ता है ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा की अपेक्षा कथन हो, उसे ज्ञान या चारित्र की अपेक्षा समझने व मानने से भगड़ा पड़ता है । (२) जहाँ ज्ञान की अपेक्षा कथन हो उसे श्रद्धा या चारित्र की अपेक्षा समझने व मानने से भगड़ा पड़ता है । (३) जहाँ चारित्र की अपेक्षा कथन हो उसे श्रद्धा या ज्ञान की अपेक्षा समझने या मानने से भगड़ा पड़ता है । (४) जहाँ निमित्त की अपेक्षा कथन हो उसे उपादान की अपेक्षा मानने से भगड़ा पड़ता है । (५) जहाँ उपादान की अपेक्षा कथन हो,

वहाँ निमित्त की अपेक्षा मानने से भगडा पडता है । (६) जहाँ व्यवहार की अपेक्षा कथन हो, उसे निश्चय की अपेक्षा मानने से भगडा पडता है । (७) जहाँ निश्चय की अपेक्षा कथन हो, उसे व्यवहार की अपेक्षा समझने से भगडा पडता है । (८) हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मानने से भगडा पडता है । इसलिये पात्र जीवों को प्रथम सब अपेक्षायें समझ लेनी चाहिए । क्योंकि यदि ऐसा न हो तो कहीं अन्य प्रयोजन सहित व्याख्यान हो, उसका अन्य प्रयोजन प्रगट करने से विपरीत प्रवृत्ति होती है । अतः सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यान का अभिप्राय जानने पर भगडा नहीं पडता है ।

प्रश्न ३१८—“इस प्रकार नयो द्वारा एक ही वस्तु को एक भाव अपेक्षा ‘ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना’—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है” इसका क्या भाव है ?

उत्तर—उभयाभासी एक ही जीव को वर्तमान पर्याय में सिद्धपना और समारीपना, केवलज्ञानादि और मतिज्ञानादि मानता है—यह तो मिथ्याबुद्धि ही है ।

प्रश्न ३१९—“भिन्न-भिन्न भावों को अपेक्षा नयो की प्ररूपणा है—ऐसा मानकर यथासम्भव वस्तु को मानना, सो सच्चा श्रद्धान है” इसका क्या भाव है ?

उत्तर—(१) निश्चयनय से त्रिकाली स्वभाव एकरूप है । (२) पर्याय में अपने अपराध से दोष है उस दोष में द्रव्यकर्म निमित्त है । ऐसा जानकर पर्याय को गीण करके त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की गुरुभात करके, क्रम से वृद्धि करके, केवलज्ञानादि-सिद्धदशा को प्राप्ति होती है—यह सच्चा श्रद्धान है ।

प्रश्न ३२०—मिथ्यादृष्टि अनेकान्त किसे कहता है ?

उत्तर—पर्याय में निश्चय से केवलज्ञानादि हैं और व्यवहार से मतिज्ञानादि हैं—यह मिथ्यादृष्टि का अनेकान्त है ।

प्रश्न ३२१—उभयाभासी व्रत-शील सयमादि के विषय में क्या मानता है ?

उत्तर—(१) व्रत-शील-सयमादि का अंगीकार पाया जाता है, सो व्यवहार से “यह भी मोक्ष के कारण है”—ऐसा जानकर उन्हें उपादेय मानता है । (२) शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, निर्दोष आहार ले, शरीर से जरा भी हिंसा न हो, बाहरी महाव्रतादि को, णमोकार मंत्र के जाप को, मुँह से पाठ आदि बोलने रूप जड़ की क्रिया और व्रत-शील-सयमादि शुभभावों को मोक्ष का साधन मानता है । (३) तथा शरीरादिक की क्रिया करो, शुभभाव करो, परन्तु उसमें ममत्व नहीं करना—ऐसी मान्यता उभयाभासी में होती है ।

प्रश्न ३२२—उभयाभासी कहता है कि “यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है परन्तु उसमें ममत्व नहीं करना ।” इस विषय में पंडित जी ने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—(१) सो जिसका आप कर्त्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाय ? (२) आप कर्त्ता नहीं है तो “मुझको करने योग्य है”—ऐसा भाव कैसे किया ? (३) और यदि कर्त्ता है तो वह अपना कर्म हुआ तब कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ—सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है । (४) अभिप्राय से कर्त्ता होकर करे और ज्ञाता रहे—यह तो बनता नहीं है ।

प्रश्न ३२३—शरीरादिक जड़ क्रियाओं के विषय में जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभों का क्या आदेश है ?

उत्तर—रोटी छोड़ने-खाने की क्रिया, शरीर के उठने-बैठने की क्रिया, पद्मासन-खड्गासन की क्रिया-अनशनादि की क्रिया, स्तुति-मंत्र पाठ-पूजा बोलने आदि की क्रिया, शरीर-मन-वाणी की क्रिया और आठ कर्मों की १४८ प्रवृत्तियाँ हैं वे तो शरीरादि परद्रव्य के आश्रित हैं, परद्रव्य का आप कर्त्ता नहीं, इसलिये उसमें (शरीरादि की क्रिया में) कर्त्तृत्व बुद्धि (कर्त्तापने का ज्ञान) भी नहीं करना और उसमें ममत्व

भी नहीं करना—यह जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो का आदेश हैं ।

प्रश्न ३२४—अशुद्धोपयोग (विकारी भाव) शुद्ध पर्याय (अविकारी भाव) के विषय में जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो का क्या आदेश है ?

उत्तर—(१) अशुद्धोपयोग (विकारी भाव) का त्याग और शुद्धोपयोग (अविकारी भाव) का ग्रहण करना अपना शुभोपयोग है, वह अपने आश्रित है, उसका आप कर्त्ता है, इसलिए शुभभावो में कर्त्तृत्व बुद्धि भी मानना और ममत्व भी करना दोष का ज्ञान कराने की अपेक्षा कर्त्तृत्व बुद्धि कहा है, कर्त्तव्य नहीं कहा है । (२) परन्तु इस शुभोपयोग को वध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, क्योंकि वध और मोक्ष के तो प्रतिपक्षीपना है, इसलिए दोष-रूप एक ही भाव पुण्य वध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो—ऐसा मानना भ्रम है । (३) इसलिये व्रत-अव्रत दोनों विकल्प-रहित जहाँ पर द्रव्य के ग्रहण त्याग का कुछ भी प्रयोजन नहीं है—ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है—ऐसा जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो का आदेश है । [ऐसा ही समयसार कलण २३६ में आया है, समाधितत्र गा० ४७, त्याग-उपादान की १६वीं शक्ति, मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५८ देखो]

प्रश्न ३२५—व्रत-शील-सयमादिक शुभभावो को और शरीर की क्रियाओ को मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण कौन मानते हैं और उसका फल क्या है ?

उत्तर—अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानते हैं और जिसका फल चारों गतियों में घूमकर निगोद है ।

प्रश्न ३२६—व्रत-शील-सयमादि शुभभाव सत्कार का कारण है, मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण नहीं है क्या ऐसा कहीं मोक्षमार्ग-प्रकाशक में आया है ?

उत्तर—(१) व्रतादिरूप शुभोपयोग ही से देवगति का वध मानते हैं

आर उसी को मोक्षमार्ग मानते हैं, सो बधमार्ग-मोक्षमार्ग को एक किया, परन्तु यह मिथ्या है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५८]

(२) स्वर्गसुख का कारण प्रशस्तराग है और मोक्षसुख का कारण वीतराग भाव है, परन्तु ऐसा भाव इसे (मिथ्यादृष्टि को) भासित नहीं होता, इसलिए मोक्ष का भी इसको सूच्चा श्रद्धान नहीं है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३४]

(३) मिथ्यादृष्टि सरागभाव में सवर के भ्रम से प्रशस्तरागरूप कार्यो को उपादेयरूप श्रद्धा करता है । [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२८]

(४) शुभ-अशुभ भावों में घातिकर्मों का तो निरन्तर बध होता है, वे सर्व पापरूप ही हैं और वही आत्मगुण के घातक हैं । इसलिये अशुद्धभावों से कर्मबन्ध होता है, उसमें भला-बुरा जानना वही मिथ्या श्रद्धान है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२७]

(५) शुभयोग हो या अशुभ योग हो, सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना घातिकर्मों की तो सर्व-प्रकृतियों का निरन्तर बन्ध होता ही रहता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२७]

(६) द्रव्यलिंगी के योगों की प्रवृत्ति शुभरूप बहुत होती है और अघातिकर्मों में पुण्य-पाप बन्ध का विशेष शुभ-अशुभ योगों के अनुसार है, इसलिये वह अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पहुँचता है परन्तु वह कुछ कार्यकारी नहीं है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४७]

(७) द्रव्यलिंगी के शुभोपयोग तो (प्रथम गुणस्थान के योग्य) उत्कृष्ट होता है, शुद्धोपयोग होता ही नहीं; इसलिए परमार्थ से इनके कारण-कार्यपना नहीं है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

(८) कितने ही जीव अणुव्रत-महाव्रतादिरूप यथार्थ आचरण करते हैं और आचरण के अनुसार ही परिणाम है, कोई माया शोभादिक का अभिप्राय नहीं है, उन्हें धर्म जानकर मोक्ष के अर्थ उनका साधन करते हैं, किन्हीं स्वर्गादिक के भोगों की भी इच्छा नहीं रखते, परन्तु तत्त्वज्ञान पहले नहीं हुआ है, इसलिए आप तो जानते हैं कि मैं मोक्ष

का साधन कर रहा हूँ, परन्तु जो मोक्ष का साधन है उसे जानते भी नहीं, केवल स्वर्गादिक का साधन करते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४१]

(६) बाह्य में तो अणुव्रत-महाव्रतादि साधते हैं परन्तु अन्तरंग परिणाम नहीं है और स्वर्गादिक की वाछा से साधते हैं—सो इस प्रकार साधने से पाप बन्ध होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४२]

(१०) इन्द्रिय जनित सुख की इच्छा के प्रयोजन हेतु अरहतादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पाप बन्ध ही होता है—इसलिए पात्र जीवों को इस प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

इस प्रकार ही चारों अनुयोगों ने बताया है। शुभभाव किसी का भी हो, वह बंध का ही कारण है मोक्ष का कारण या मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा निश्चय करना।

प्रश्न ३२७—जब शुभभाव किसी के भी हो वह मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण नहीं है तो कहीं-कहीं शास्त्रों में उन्हें मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण क्यों कहा है ?

उत्तर—(१) वास्तव में किसी भी शास्त्र में शुभभावों को मोक्ष-मार्ग और मोक्ष का कारण नहीं कहा है और जहाँ कहीं कहा है उपचार मात्र व्यवहार कारण कहा है ऐसा जानना।

(२) निचली दशा में कितने ही जीवों के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है, इसलिए उपचार से व्रतादिक शुद्धोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है, वस्तु का विचार करने पर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है, क्योंकि बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है—ऐसा श्रद्धान करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(३) वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारण-

पना है इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से वाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

(४) व्रत-तपादि मोक्षमार्ग हैं नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं—इसलिए इन्हे व्यवहार कहा ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

प्रश्न ३२८—शुद्ध-अशुद्ध भावों में हेय-उपादेय के निषेध में जिनाज्ञा क्या है ?

उत्तर—(१) शुद्धोपयोग ही को प्रगट करने योग्य उपादेय मानकर उसका उपाय करना, (२) शुभोपयोग-अशुभोपयोग को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना, (३) जहाँ शुद्धोपयोग न हो सके, वहाँ अशुभोपयोग को छोड़कर शुभ में ही प्रवर्तन करना क्योंकि शुभोपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग में अशुद्धता की अधिकता है, (४) शुद्धोपयोग हो तब तो परद्रव्य का साक्षीभूत ही रहता है, वहाँ कुछ परद्रव्य का प्रयोजन ही नहीं है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

प्रश्न ३२९—अशुद्धोपयोग में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किस प्रकार है और इसका ज्ञान किसको होता है ?

उत्तर—शुभोपयोग नैमित्तिक और वाह्य व्रतादि की प्रवृत्ति निमित्त है । अशुभोपयोग नैमित्तिक ओर वाह्य अव्रतादिक की प्रवृत्ति निमित्त है । इसका ज्ञान मात्र ज्ञानियों को ही होता है ।

प्रश्न ३३०—“पहले अशुभोपयोग छूटकर शुभोपयोग हो फिर शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग हो—ऐसी क्रम परिपाटी” यह बात किसको लागू पड़ती है ?

उत्तर—४-५-६ गुणस्थान की अपेक्षा यह कथन है । ज्ञानी सीधा अशुभ में से शुद्ध में नहीं आता है । पहले अशुभ को छोड़कर शुभोपयोग होता है और शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है । इसलिए ऐसी क्रम परिपाटी ज्ञानी ही को लागू पड़ती है ।

प्रश्न ३३१—उभयाभासी कहता है कि शुभोपयोग है तो शुद्धोपयोग का कारण है” क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर—ठीक नहीं है, जैसे—अशुभभाव कारण व शुभभाव कार्य और शुभभाव कारण व शुद्धभाव कार्य ऐसा बनता नहीं है। यदि ऐसा हो तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरे और द्रव्यलिंगी के शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है, शुद्धोपयोग होता ही नहीं, इसलिए परमार्थ से इनके कारण—कार्यपना नहीं है।

प्रश्न २३२—मिथ्यादृष्टि क्या करे तो शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो और क्या करे तो परम्परा निगोद की प्राप्ति हो ?

उत्तर—जैसे—रोगी को बहुत रोग था, पश्चात् अल्प रोग रहा, तो वह अल्प रोग तो निरोग होने का कारण नहीं है। इतना है कि—अल्प रोग रहने पर निरोग होने का उपाय करे तो हो जाये, परन्तु यदि अल्प रोग को ही भला जानकर उसको रखने का यत्न करे तो निरोग कैसे हो, कभी ना होवे, उसी प्रकार कषायी के (मिथ्यादृष्टि के) तीव्र कषायरूप अशुभोपयोग था, पश्चात् मिथ्यादृष्टि के मन्द-कषायरूप शुभोपयोग हुआ परन्तु मिथ्यादृष्टि का वह शुभोपयोग तो नि कषाय शुद्धोपयोग होने का कारण है नहीं; इतना है कि तत्त्व के अभ्यासरूप शुभोपयोग होने पर शुद्धोपयोग होने का यत्न करे तो हो जाये। परन्तु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर उसका साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कैसे हो ? चारो गतियों में घूमकर परम्परा निगोद की प्राप्ति हो।

प्रश्न ३३३—शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—सम्यक्दृष्टि को शुभोपयोग होने पर निकट शुद्धोपयोग की प्राप्ति होती है—ऐसी ज्ञान की मुख्यता से चरणानुयोग में शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहते हैं। परन्तु मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है ही नहीं—ऐसा जानना।

प्रश्न ३३४—सम्यग्दृष्टि के शुभोपयोग पर परम्परा मोक्ष के कारण का आरोप क्यों आता है और मिथ्यादृष्टि के शुभोपयोग पर मोक्ष का आरोप क्यों नहीं आता है ?

उत्तर—(१) शुभोपयोगरूप व्यवहार व्रत शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहार व्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा है। वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को मुनि योग्य शुद्ध परिणति ही (शुद्धात्य द्रव्य का अवलम्बन करती है इसलिए) विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु होता है। इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में से हुये मोक्ष के परम्परा हेतुपने का आरोप उसके साथ रहने वाले शुभोपयोग में करके व्यवहार व्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है।

(२) मिथ्यादृष्टि के जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परम्परा हेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्परा हेतु प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जावे ? मिथ्यादृष्टि के शुभभावों पर तो कभी मोक्ष का आरोप आता ही नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि नियम से शुभभाव का अभाव करके शुद्ध दशा में आ ही जाता है—इसलिए सम्यग्दृष्टि के शुभभावों पर परम्परा मोक्ष का आरोप आता है, मिथ्यादृष्टि के शुभभावों पर परम्परा मोक्ष का आरोप नहीं आता है—ऐसा जानना।

प्रश्न ३३५—प्रवचनसार में शुद्धता और शुभभाव की मंत्री क्यों कही है ?

उत्तर—राग तो शुद्धता का शत्रु है परन्तु चरणानुयोग के शास्त्रों में ऐसा कथन करने की पद्धति है और व्यवहारनय का कथन है।

प्रश्न ३३६—उभयाभासी अपने को निश्चय रत्नत्रय हुआ कैसे मानता है ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय मे सिद्ध समान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ इत्यादि प्रकार से आत्मा को शुद्ध माना, सो तो सम्यग्दर्शन हुआ इत्यादि प्रकार से आत्मा को वैसा ही जाना सो सम्यग्ज्ञान हुआ इत्यादि प्रकार से आत्मा के वैसे ही विचार मे प्रवर्तन किया सो सम्यक्चारित्र हुआ—इस प्रकार अपने को निश्चय रत्नत्रय हुआ मानता है । [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५६]

प्रश्न ३३७—क्या उभयाभासी का इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय मानना ठीक है ?

उत्तर—मैं वर्तमान पर्याय मे प्रत्यक्ष अशुद्ध, सो शुद्ध कैसे मानता-जानता-विचारता हूँ इत्यादि विवेक रहित भ्रम से सन्तुष्ट होता है ॥ सो उसका इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय मानना ठीक नहीं है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

प्रश्न ३३८—उभयाभासी अपने को व्यवहार रत्नत्रय हुआ किस प्रकार मानता है ?

उत्तर—अरहतादिक के सिवाय अन्य देवादिक को नहीं मानता, व जैन शास्त्रानुसार जीवादिक के भेद सोख लिए हैं, उन्ही को मानता है, औरो को नहीं मानता है—वह तो सम्यग्दर्शन हुआ, जैन गास्त्रो के अभ्यास मे बहुत प्रवर्तता है—सो सम्यग्ज्ञान हुआ और व्रतादि क्रियाओ मे प्रवर्तता है—सो सम्यक्चारित्र हुआ । इस प्रकार अपने को व्यवहार रत्नत्रय हुआ मानता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

प्रश्न ३३९—क्या उभयाभासी का इस प्रकार व्यवहार रत्नत्रय मानना ठीक नहीं है ?

उत्तर—ठीक नहीं है, क्योंकि व्यवहार तो उपचार का नाम है । सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादि हो । सो उभयाभासी को निश्चय रत्नत्रय प्रगटा नहीं है इसलिए उसको व्यवहार रत्नत्रय की मान्यता भी खोटी है ।

प्रश्न ३४०—उभयाभासी का निश्चय-व्यवहार सब झूठा क्यों बताया है ?

उत्तर—पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्म शास्त्र में प्रवेश ही नहीं है और यदि वह प्रवेश करता है तो विपरीत समझा है—जैसे—
 (१) निश्चयाभासी व्यवहार को छोड़कर भ्रष्ट होता है अर्थात् अशुभ-भावों में प्रवर्तता है। (२) व्यवहारभासी निश्चय को भली-भाँति जाने बिना व्यवहार में ही मोक्ष मानता है, परमार्थ तत्त्व में मूढ़ रहता है। (३) उसी प्रकार उभयाभासी निश्चयाभास को जानता-मानता है परन्तु व्यवहार साधन को भी उपादेय मानता है, इसलिए उभयाभासी स्वच्छन्द होकर अशुभरूप नहीं प्रवर्तता है। मिथ्यादर्शन पूर्वक व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्तता है। इसलिए अन्तिम श्रव्यक पर्यन्त पद को प्राप्त करता है परन्तु ससार परिभ्रमण नहीं मिटता है। (४) यदि कोई विरला जीव यथार्थ स्याद्वाद न्याय से सत्यार्थ को समझ ले तो उसे अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

[समयसार कलश १३७ का भावार्थ]

प्रश्न ३४१—‘व्यवहार तो उपचार का नाम है ? सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादिक हों’—इसका रहस्य क्या है ?

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

उत्तर—(१) निज शुद्ध आत्मा में एकतारूप ध्यान करने से निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग प्रगट होता है ऐसा नियम है। [अ] चौथा गुणस्थान प्रथम निर्विकल्प ध्यान में प्रगट होता है। उस ध्यान से हटकर सविकल्प दशा में सच्चे देवादिक के प्रति अस्थिरता का राग होता है। [आ] पाँचवा गुणस्थान भी निर्विकल्प दशा में प्राप्त होता है और सविकल्प दशा में भूमिका के योग्य अणुव्रतादि का आचरण होता है। [इ] मुनि अवस्था में निर्विकल्प दशा साँतवें गुणस्थान में प्रगट होती है। छठे गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण रूप व्यवहार मोक्षमार्ग होता है। इसलिये जानियो को ही व्यवहार होता है, अज्ञानियो को

नहीं होता है। (२) जैसे—“कनस्तर मे तेल भरा हो तो तेल का कनस्तर कहा जाता है। परन्तु कनस्तर मे मिट्टी भरी हो तो तेल का कनस्तर नहीं कहा जाता है, उसी प्रकार जिसको निश्चय प्रगटा हो उसी के भूमिकानुसार राग को मोक्षमार्ग का उपचार आता है परन्तु जिसमे (मिथ्यादृष्टियो में) मोह, राग, द्वेष भरा हो--उन पर मोक्षमार्ग का आरोप कैसे आ सकता है, कभी भी नहीं आ सकता है। इसलिए व्यवहार तो उपचार का नाम है। सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादिक हो” इसलिए अनुपचार हुए बिना उपचार का आरोप नहीं आता है।

प्रश्न ३४२—निश्चयाभासी-व्यवहाराभासी और उभयाभासी के अज्ञान अन्धकार दूर करने मे कौन निमित्त हो सकता है ?

उत्तर—(१) जो सम्यग्दृष्टि हो, विद्याभ्यास करने से शास्त्र वाँचने योग्य बुद्धि प्रगट हुयी हो, सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार-निश्चयादिरूप व्याख्यान का अभिप्राय पहिचानता हो, जिसको शास्त्र वाँचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो, वह ही अज्ञानियो के अधकार मिटाने मे निमित्त हो सकता है। (२) भूले हुए को मार्ग कौन दिखा सकता है, जो स्वयं उसका जानकार हो। जो स्वयं अन्धा हो वह दूसरो को क्या मार्ग दिखायेगा ? नहीं दिखा सकता, उसी प्रकार मय्यग्ज्ञानी ही मोक्षमार्ग मे निमित्त हो सकता है। अज्ञानी कभी भी निमित्त नहीं हो सकता है क्योंकि उपादान-निमित्त का ऐसा स्वभाव है। (३) नियमसार गाथा ५३ मे कहा है कि ‘जो मुमुक्ष हैं उनको भी उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्व परिणाम का) अन्तरंग हेतु कहा है क्योंकि उनको दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

प्रश्न ३४३--शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी; व्रत शील-संयमादि व्यवहार मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण हैं, ऐसे

अज्ञानी जीवों के अज्ञान को दूर करने के लिये समयसार कलश टीका कलश १०० से लेकर ११२ तक से दया-दया बताया है ?

उत्तर—(१) किसी मिथ्यादृष्टि जीव का ऐसा अभिप्राय है जो दया, व्रत, तप-शील, सयम आदि भले हैं, जीव को सुखकारी हैं। परन्तु जैसे अशुभ कर्म जीव को दुःख करता है उसी प्रकार शुभ कर्म भी जीव को दुःख करता है। कर्म में तो भला कोई नहीं है। अपने मोह को लिए हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है। [समयसार कलश १००]

(२) शुभ कर्म भला, अशुभ कर्म बुरा सो ऐसे दोनों जीव मिथ्यादृष्टि हैं, दोनों जीव कर्म बन्ध कारणशील हैं। कोई जीव गुणोपयोगी होता हुआ, यतिक्रिया में मग्न होता हुआ शुद्धोपयोग को नहीं जानता है, केवल यतिक्रिया मात्र में मग्न है। वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है ऐसा जानकर विषय-कषाय सामग्री को छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है। सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है। [समयसार कलश १०१]

(३) शुभ कर्म के उदय में उत्तम पर्याय होती है वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है, उस धर्म की सामग्री से जीव मोक्ष जाता है इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभकर्म है। ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला कोई कर्म बुरा ऐसा तो नहीं, सब ही कर्म दुःखरूप है। कर्म निःसन्देह बन्ध को करता है, गणधर देव ने ऐसा कहा है। [समयसार कलश १०२]

(४) कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग मानकर पक्ष करता है सो निषेध किया, ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। निश्चय से शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है, अनादि-परम्परा ऐसा उपदेश है। [समयसार कलश १०३]

(५) अशुभ क्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभ क्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं,

शुभ-अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुःखी है। क्रिया सस्कार छूटकर शुद्ध स्वरूप का अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है। [समयसार कलश १०४]

(६) शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके बिना जो कुछ है शुभ क्रियारूप-अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार वह सब बन्ध का मार्ग है। [समयसार कलश १०४]

(७) जिस प्रकार कामला का नाहर कहने के लिए नाहर (सिंह) है, उसी प्रकार आचरणरूप चारित्र्य कहने के लिये चारित्र्य है, परन्तु चारित्र्य नहीं है। नि सन्देह रूप से जानो। [समयसार कलश १०७]

(८) व्यवहार चारित्र्य होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है इसलिए विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र्य निषिद्ध है। [समयसार कलश १०८]

(९) समस्त कर्म जाति हेय है, पुण्य-पाप के विवरण की क्या बात रही, ऐसी बात निश्चय से जानो, पुण्य कर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। [समयसार कलश १०९]

(१०) पापरूप अथवा पुण्यरूप जितनी क्रिया है वह सब मोक्षमार्ग नहीं हैं ऐसा जानकर समस्त क्रिया में समत्व का त्याग कर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है—ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ। [समयसार कलश ११२]

प्रश्न ३४४—आत्मज्ञान बिना अणुव्रत-महाव्रतादि क्या बिल्कुल व्यर्थ है ?

उत्तर—जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित हैं, बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उसके बाह्य परिग्रह का त्याग है वह निरर्थक है। पर्वत, पर्वत की गुफा, नदी के पास, पर्वत के जल से चोरा हुआ स्थान इत्यादि स्थानों में रहना निरर्थक है। ध्यान, माला जपना, मन-वचन-काय को रोकना, ११ अंग ६ पूर्व का पढ़ना, महाव्रत, उपवासादि ये

सब निरर्थक हैं । वाह्य भेष लोक रजन का कारण है इसलिए यह उप-
देश है इस महाव्रतादि से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है ।

[मोक्षपाहुड गाथा ८६-६०]

प्रश्न ३४५—जिसे जानने से मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति हो वंसा अवश्य
जानने योग्य—प्रयोजनभूत क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) हेय-उपादेय तत्त्वों की परीक्षा करना । (२) जीवादि
द्रव्य, सात तत्त्व तथा सुदेव-गुरु-धर्म को पहिचानना । (३) त्यागने
योग्य मिथ्यात्व-रागादिक तथा ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञानादिक
का स्वरूप जानना । (४) निमित्त-नैमित्तिक आदि को जैसे हैं वंसा
ही जानना । इत्यादि जिनके जानने से मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति हो उन्हें
अवश्य जानना चाहिए; क्योंकि वे प्रयोजनभूत तत्त्व हैं ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

प्रश्न ३४६—सम्यक्त्व का अधिकारी कौन और कब हो सकता
है ?

उत्तर—देखो, तत्त्वविचार की महिमा । तत्त्व विचार रहित
देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक
पाले, तपश्चरणादि करे, उसको सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं और
तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है ।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३४७—इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार समझाने से क्या
लाभ है ?

उत्तर—उन-उन प्रकारों को पहचान कर अपने में ऐसा दोष हो तो
उसे दूर करके सम्यक्श्रद्धानी होना, औरों के ही ऐसे दोष देख-देखकर
कषायी नहीं होना, क्योंकि अपना भला-बुरा तो अपने परिणामों से
है । औरों को रुचिवान देखे तो कुछ उपदेश देकर उनको भी भला
करे । इसलिए अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है,
सर्व प्रकार के मिथ्यात्व भाव छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है,

ससार का मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के समान अन्य कोई पाप नहीं है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६६]।

(१८) श्री पंचास्तिकाय से एकान्त व्यवहाराभासी का

११ प्रश्नो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न १—एकान्त व्यवहाराभासी किसका अवलम्बन करते हैं ?

उत्तर—एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन करते हैं।

प्रश्न २—एकान्त व्यवहाराभासी एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन क्यों करते हैं ?

उत्तर—“वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं, उसका अनुभव-ज्ञान ना होने से वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा।” ऐसी खोटी श्रद्धा और खोटा ज्ञान होने से ही एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन करते हैं।

प्रश्न ३—एकान्त व्यवहाराभासी श्रद्धा के लिये क्या करते हैं और क्या नहीं करते हैं ?

उत्तर—धर्मादि पर द्रव्यो की श्रद्धा करते हैं, आत्मा की श्रद्धा नहीं करते हैं।

प्रश्न ४—एकान्त व्यवहाराभासी ज्ञान के लिये क्या करते हैं, क्या नहीं करते हैं ?

उत्तर—द्रव्यश्रुत के पठन-पाठनादि सस्कारो से अनेक प्रकार के विकल्प जाल से चैतन्य वृत्ति को धारण करते हैं, आत्मा का ज्ञान नहीं करते हैं।

प्रश्न ५—एकान्त व्यवहाराभासी चारित्र के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—यति के समस्त व्रत समुदायरूप तपादि प्रवृत्तिरूप कर्म-काण्डो की धमार में पागल बने रहते हैं किसी पुण्य की रुचि करते हैं, कभी दयावन्त होते हैं।

प्रश्न ६—एकान्त व्यवहाराभासी दर्शनाचार के लिए क्या करते हैं ?

उत्तर—बिसी समय प्रथमता (कोव मानादि सम्बन्धी राग द्वेष की मन्दता) किसी समय सवेग (विकारी भावों का भय) किसी समय अनुकम्पा, दया (सर्व प्राणियों पर दया का प्रादुर्भाव) और किसी समय आस्तिवय मे (जीवादि तत्त्वों का जैसा अस्तित्व है वैसा ही आगम-युक्ति से मानना) वर्तते हैं तथा शका, काछा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि आदि भाव उत्पन्न ना हो ऐसी शुभोपयोगरूप सावधानी रखते है, मात्र व्यवहारनयरूप उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना इन अंगों की भावना विचारते है और इस सम्बन्धी उत्साह को बार-बार बढ़ाते है ।

प्रश्न ७—एकान्त व्यवहाराभासी ज्ञानाचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—स्वाध्याय का काल विचारते हैं, अनेक प्रकार की विनय मे प्रवृत्ति करते है, शास्त्र की भक्ति के लिए विनय का विस्तार करते है दुर्धर उपधान करते हैं—आरम्भ करते हैं । शास्त्रों का भले प्रकार से बहुमान करते हैं । गुरु आदि मे उपकार प्रवृत्ति को नही भूलते, अर्थ-व्यजन और इन दोनों की शुद्धता मे सावधान रहते हैं ।

प्रश्न ८—एकान्त व्यवहाराभासी चारित्र्याचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री-सेवन और परिग्रह इन सबसे विन्तरूप पच-महाव्रतों मे स्थिर वृत्ति धारण करते है, योग (मन-वचन-काय) के निग्रहरूप गुणित्यों के अवलम्बन का उद्योग करते है, ईर्ष्या-भाषा-ऐपणा-आदान निक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियों मे सर्वथा प्रयत्नवन्त वर्तते है ।

प्रश्न ९—एकान्त व्यवहाराभासी तपाचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसर्यान, रसपरित्याग,

विविक्त शय्यामन और काय क्लेश मे निरन्तर उत्साह रखते हैं, प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय और ध्यान के लिये चित्त को वश मे करते हैं ।

प्रश्न १०—एकान्त व्यवहाराभासी वीर्यचार के लिए क्या करते हैं ?

उत्तर—कर्मकाण्ड मे सर्वशक्ति पूर्वक वर्तते हैं ।

प्रश्न ११—एकान्त व्यवहाराभासी इन सबमे सावधानी रखता है इसका फल क्या होगा और क्या नहीं होगा ?

उत्तर—ऐसा करते हुये कर्म चेतना की प्रधानतापूर्वक अशुभभाव की प्रवृत्ति छोड़ते हैं, किन्तु शुभभाव की प्रवृत्ति को आदरने योग्य मानकर अगीकार करते है, इसलिये सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड के आडम्बर से अतिक्रान्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ऐक्य परिणतिरूप ज्ञान चेतना को वे किसी भी समय प्राप्त नही होते है । वे बहुत पुण्य के भार से मन्थर (मन्द, सुस्त) हुई चित्तवृत्ति वाले वर्तते है इसलिये स्वर्गलोकादि क्लेश प्राप्त करके परम्परा से दीर्घकाल तक ससार मे परिभ्रमण करते हैं ।

(१६) उभयाभासी की प्रवृत्ति का विशेष स्पष्टीकरण

प्रश्न १—“(१) अंतरंग मे आपने तो निर्धार करके यथावत् निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं (२) जिनाज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दो प्रकार मानते हैं ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर सज्जाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाले गिण्य ने अपनी ज्ञान की पर्याय मे निर्णय करके यथावत् निश्चय-व्यवहार मुनिपने को पहिचाना नही । (२) तो फिर क्या हुआ ? जिन आज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मुनिपना दो प्रकार मानते हैं ।

प्रश्न २—“(१) तो मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण

दो प्रकार है। (२) जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये सो निश्चय मोक्षमार्ग है। (३) और जहाँ पर जो मोक्षमार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त व सहचारी है—उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है। (४) क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। (५) सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचारनिरूपण सो व्यवहार—इसलिए निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मोक्षमार्ग जानना। (६) किन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) सो मुनिपना दो प्रकार का नहीं है, मुनिपने का निरूपण दो प्रकार का है। (२) जहाँ पर तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकलचारित्ररूप शुद्धि को मुनिपना निरूपित किया जाये सो निश्चय मुनिपना है। (३) और जहाँ पर २८ मूलगुणरूप अशुद्धि मुनिपना तो है नहीं, परन्तु सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने का निमित्त है व सहचारी है। उस २८ मूलगुणरूप अशुद्धि को उपचार से मुनिपना कहा जाये सो व्यवहार मुनिपना है। (४) क्योंकि निश्चय-व्यवहार मुनिपने का चारो अनुयोगो मे ऐसा ही लक्षण है। (५) सकलचारित्ररूप शुद्धि मुनिपने का सच्चा निरूपण है—सो निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुणरूप अशुद्धि मुनिपने का उपचार निरूपण है सो व्यवहार मुनिपना है। इसलिये निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मुनिपना जानना। (६) किन्तु एक सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना है और एक २८ मूलगुण अशुद्धिरूप व्यवहार मुनिपना है। इस प्रकार दो मुनिपना मानना मिथ्या है।

प्रश्न ३—“(१) तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है। (२) क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। (३) कारण कि समयसार मे ऐसा कहा है। (४) व्यवहार अभूतार्थ है सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता, किसी

अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। (५) तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है। (६) इस प्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये।

उत्तर—(१) सकलचारित्ररूप शुद्धि को निश्चय मुनिपना कहा है, वह प्रगट करने योग्य उपादेय है और २८ मूलगुणादि अशुद्धि को व्यवहार मुनिपना कहा है, वह हेय है। परन्तु उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य निश्चय व्यवहार दोनों मुनिपने को उपादेय मानता है। इस पर प० टोडरमल जी कहते हैं कि वह भी उसका भ्रम है। (२) क्यो भ्रम है ? क्योंकि निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। (३) क्योंकि समयसार मे निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप ऐसा बताया है कि—(४) व्यवहारनय मुनिपने का २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप निरूपण करता है वह अभूतार्थ है। क्यो अभूतार्थ है ? क्योंकि वह मुनिपने का सकलचारित्र शुद्धि रूप निरूपण नहीं करता है। निमित्त की अपेक्षा उपचार से मुनिपने का अन्यथा निरूपण करता है। (५) तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह मुनिपने को सकलचारित्र शुद्धिरूप निरूपण करता है वह भूतार्थ है। वह भूतार्थ क्यो है ? क्योंकि जैसा मुनिपने को सकलचारित्र शुद्धिरूप स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है। (६) इस प्रकार निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है।

प्रश्न ४—“(१) तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार—सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है। (२) क्योंकि किसी द्रव्य भाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है। (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है। उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। (४) जैसे मिट्टी के घड़े को

मिट्टी का घड़ा निरूपित किया जाये सो निश्चयनय और घृत संयोग के उपचार से उसी को घृत का घड़ा कहा जाये सो व्यवहार ।
(५) ऐसे ही अन्यत्र जानना"—इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) पंडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते हैं कि—तू ऐसा मानता है कि सकलचारित्र्यरूप शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार मुनिपना—सो ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक नहीं है । (२) क्योंकि चारित्र्यगुण की शुद्ध पर्याय का नाम निश्चय मुनिपना और चारित्र्यगुण की २८ मूलगुणादिरूप अशुद्ध पर्याय का नाम व्यवहार मुनिपना—ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप नहीं है, क्योंकि प्रवृत्ति में निश्चय-व्यवहार नहीं होता है, प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है, प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है । इसलिये प्रवृत्ति में निश्चय-व्यवहार नहीं होता है । (३) यदि प्रवृत्ति में निश्चय-व्यवहार नहीं होता है तो निश्चय-व्यवहार किसमें है ? उत्तर—अभिप्रायपूर्वक किसी वस्तु के प्ररूपण में निश्चय-व्यवहार होता है । मुनिपने को चारित्र्यगुण को सकलचारित्र्य शुद्धिरूप निरूपण करना सो निश्चयनय है और मुनिपने को २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप निरूपण करना सो व्यवहार है । (४) जैसे—[अ] मिट्टी में अनादिकाल से प्रवृत्ति (पर्याय) का प्रवाह चला आ रहा है, वह प्रवृत्ति है । अतः प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है । [आ] प्रवृत्ति तो मिट्टी का परिणमन है । [इ] मानो मिट्टी की १० नम्बर की पर्याय को ध्यान में लिया और उस १० नम्बर की पर्याय का नाम आपने घड़ा रखा । तो उस घड़ा रूप प्रवृत्ति को मिट्टी का घड़ा कहना सो निश्चयनय है और घी के संयोग के उपचार से उसी घड़े को घी का घड़ा कहना सो व्यवहारनय है, उसी प्रकार [अ] सम्यग्दर्शन होने के साथ ही आत्मा के चारित्र्य गुण में पर्याय का प्रवाह चला आ

रहा है। वह प्रवृत्ति शुद्धि और अशुद्धि रूप है। उस शुद्धि और अशुद्धि रूप प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है। [आ] शुद्धि और अशुद्धि आत्मा के चारित्र्य गुण का परिणामन है। [इ] मानो आपने चारित्र्यगुण की सकलचारित्र्य रूप शुद्धि जो १० नम्बर की प्रवृत्ति है उसको ध्यान में लिया और उस सकलचारित्र्यरूप शुद्धि का नाम मुनिपना रखा तो उस मुनिपने को सकलचारित्र्यरूप शुद्धिरूप निरूपण करना सो निश्चय-नय है और २८ मूलगुणादि अशुद्धि के संयोग से उस मुनिपने को उपचार से २८ मूलगुणादि रूप निरूपण करना सो व्यवहारनय है। (५) मिट्टी के दृष्टान्त के अनुसार कथन में निश्चय-व्यवहार जानना मानना और प्रवृत्ति में निश्चय-व्यवहार नहीं जानना मानना।

प्रश्न ५—“(१) इसलिये तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है। (२) तथा तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर विरोध आया। (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है? (४) यदि व्रतादिक के साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान में शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ। (५) इस प्रकार दोनों नयों के परस्पर विरोध है। (६) इसलिये दोनों नयों का उपादेयपना नहीं बनता।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये?

उत्तर—(१) इसलिए तू सकलचारित्र्य शुद्धिरूप आत्मा के अनुभवन को निश्चय मुनिपना माने और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना माने—ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार मानना भी, वह तेरा भ्रम है। (२) तथा तेरे सकलचारित्र्य शुद्धिरूप आत्मा के अनुभवन को निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि अशुद्धि रूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मानने में भी परस्पर विरोध आया। (३) क्या विरोध आया? यदि तू अपने को सकलचारित्र्य शुद्धिरूप प्रगट मुनिपना मानता है तो २८ मूलगुणादि अशुद्धि का पालन क्यों करता है? (४) यदि वह कहे कि—मैं २८ मूलगुणादि

रूप व्यवहार साधन द्वारा सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने की सिद्धि करना चाहता हूँ तो वर्तमान मे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने का अनुभवन प्रगटपना मानना—तेरा मिथ्या हुआ । (५) इस प्रकार निश्चय-व्यवहार दोनों प्रकार का मुनिपना मानने मे परस्पर विरोध है । (६) सकलचारित्र शुद्धिरूप आत्मा का अनुभवन निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार मुनिपना है—इस प्रकार तेरी मान्यतानुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने मे भी उपादेयपना नहीं बनता ।

प्रश्न ६—“(१) यहाँ प्रश्न है कि समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है । व्रत-तप-संयमादि को व्यवहार कहा है—उस प्रकार ही हम मानते हैं ? (२) समाधान-शुद्ध आत्मा का अनुभव सच्चा मोक्षमार्ग है इसलिये उसे निश्चय कहा । यहाँ स्वभाव से अभिन्नपरभाव से भिन्न ऐसा शुद्ध शब्द का अर्थ जानना । (३) संसारी को सिद्ध मानना—ऐसा भ्रम रूप अर्थ शुद्ध शब्द का नहीं जानना । (४) तथा व्रत-तपादि मोक्षमार्ग हैं नहीं, निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं—इसलिये इन्हें व्यवहार कहा है । (५) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना । (६) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना वह तो मिथ्याबुद्धि ही है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि हमने समयसारादि शास्त्रों का अभ्यास किया है । उसमे बताया है कि शुद्ध आत्मा का सकलचारित्र वीतराग दशा रूप अनुभव को निश्चय मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि शुभभावों को व्यवहार मुनिपना कहा है । समयसारादि के अनुसार ही हम मानते हैं—आप हम झूठा क्यों कहते हो ? (२) समाधान किया है कि शुद्ध के दो अर्थ हैं एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धिपना है दूसरा पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है । वहाँ

द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना—द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मों से भिन्नपना और ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनन्त गुणों से अभिन्नपना उसे शक्तिरूप मुनिपना कहा है और पर्याय अपेक्षा शुद्धपना—आत्मा के आश्रय से सकलचारित्ररूप शुद्धि पर्याय में प्रगट होना उसे पर्याय में प्रगट मुनिपना कहा है । (३) फिर पंडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते हैं कि तू शक्तिरूप मुनिपना मानता नहीं है और पर्याय में सकलचारित्ररूप शुद्धिरूप मुनिपना तुझे प्रगटा नहीं है । फिर भी तू अपने को वर्तमान पर्याय में सकलचारित्ररूप मुनिपना माने—यह भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्द का नहीं जानना । (४) तथा २८ मूलगुणादि का शुभ भाव मुनिपना नहीं है । परन्तु जिसको अपने निज ज्ञायक भगवान के आश्रय से सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगटा है उस जीव के २८ मूलगुणादि शुभभावों को उपचार से व्यवहार मुनिपना कहा है । परन्तु तुझे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगटा नहीं है इसलिये तेरे २८ मूलगुणादि के शुभभावों में मुनिपने का उपचार भी सम्भव नहीं है । अतः तेरी मान्यतानुसार तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना झूठा है । (५) इस प्रकार सकलचारित्ररूप शुद्धि को भूतार्थ मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि के शुभभावों को अभूतार्थ मुनिपना कहा है—सो ऐसा ही मानना । (६) परन्तु सकल-चारित्ररूप शुद्धि निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि के शुभ भाव व्यवहार मुनिपना है । परन्तु ये दोनों ही सच्चा मुनिपना है और इन दोनों को ही उपादेय मानना—यह तो मिथ्यादृष्टिपना ही है ।

प्रश्न ७—“(१) वहाँ वह कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार रूप रखते हैं । इस प्रकार हम दोनों को अंगीकार करते हैं । (२) सो ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है । (३) एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है । (४) तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है । (५) प्रवृत्ति तो

द्रव्य की परिणति है । (६) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय; (७) और उसी को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय । (८) ऐसे अभिप्रायानुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दोनो नय बनते हैं । (९) कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं । (१०) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य तीसरी भूल क्या करता है उसका स्पष्टीकरण—(१) वह कहता है कि हम सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने का तो श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि व्यवहार मुनिपने रूप प्रवृत्ति रखते हैं—इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपनों को अंगीकार करते हैं । (२) पंडित जी ने समझाया है कि ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि यदि सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय-मुनिपने का श्रद्धान रखते हो तो प्रवृत्ति भी सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने की होनी चाहिये । इसलिये सकलचारित्र शुद्धि-रूप जो निश्चय मुनिपना कहा है वह प्रगट करने योग्य उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और २९ मूलगुणादि अशुद्धि रूप जो व्यवहार मुनिपना कहा है वह बध रूप होने से हेय है—यह व्यवहार का व्यवहार रूप श्रद्धान है । (३) [अ] सकलचारित्र पर्याय से प्रगट हुये बिना सकलचारित्र रूप शुद्धि मान ले—यह एकान्त मिथ्यात्व है । [आ] अनुपचार अर्थात् निश्चय मुनिपना प्रगट हुये बिना २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मान ले—यह भी एकान्त मिथ्यात्व है । [इ] और हम सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति का पालन करते हैं यह भी एकान्त मिथ्यात्व है । [ई] निश्चयाभासीपना, व्यवहारभासीपना और उभयाभासीपना—यह तीनों एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है । (४) यथार्थ मुनिपना होने पर आत्मा के चारित्रगुण के परिगमन में शुद्धि-अशुद्धि रूप मिश्र

दशा की प्रवृत्ति हो जाती है। उस मिश्र दशा की प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है। (५) शुद्धि-अशुद्धि रूप मिश्र दशा आत्मा के चारित्रगुण का कार्य है इसलिये कहा है कि प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। (६) वहाँ सकलचारित्र रूप शुद्धि को मुनिपना प्ररूपित करे सो निश्चयनय है। (७) और वही पर २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि को मुनिपना प्ररूपित करे सो व्यवहारनय है। (८) ऐसे अभिप्रायानुसार कथन से सकलचारित्र रूप शुद्धि में और २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि में निश्चय-व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। (९) सकलचारित्र रूप शुद्धि और २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि ही तो नय रूप है नहीं। (१०) सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय-मुनिपने का श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि व्यवहार रूप प्रवृत्ति का पालन करते हैं इसलिए इस प्रकार भी उभयाभासी शिष्य का निश्चय-व्यवहार मुनिपना मानना मिथ्या है।

प्रश्न ८—“(१) तो क्या करें ? सो कहते हैं। (२) निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना। (३) और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना। (४) यही समयसार कलश १७३ में कहा है। अर्थ—क्योंकि सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि में अध्यवसाय है वह समस्त ही छोड़ना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है। (५) इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छोड़ा है। (६) सन्त पुरुष एक परम निश्चय ही को भले प्रकार निष्कम्परूप से अंगीकार करके शुद्धज्ञानधनरूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ? (७) भावार्थ—यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है। इसलिये निश्चय को अंगीकार करके निज महिमा रूप प्रवर्तना युक्त है।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—“(१) उभयाभासी निश्चय मुनिपने का श्रद्धान रखता है और व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता है और इस प्रकार उसके

निश्चय-व्यवहार मुनिपने का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह किस प्रकार जाने-माने तो उसका निश्चय-व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान सच्चा कहलावे ? (२) निश्चयनय से जहाँ शास्त्रो मे सकलचारित्र-रूप शुद्धि को मुनिपना निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मुनिपना मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना । (३) व्यवहारनय से जहाँ शास्त्रो मे २८ मूलगुणादिरूप अशुद्धि को मुनिपना निरूपित किया हो उसे असत्यार्थ मुनिपना मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना । (४) भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ मे कहा है कि सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगट पर्याय मे ना होने पर भी मुझे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगट है—ऐसा मानना और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मानना—यह तो उभयाभासी मिथ्यादृष्टि का मिथ्या अध्यवसाय है तथा ऐसे-ऐसे और समस्त मिथ्या अध्यवसायो को छोड़ने का आदेश समस्त जिनेन्द्र भगवान् की दिव्य ध्वनि मे आया है । (५) अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं कि इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि २८ मूलगुणादि का विकल्प जो पराश्रित व्यवहार कहा है सो सर्व ही छुड़ाया है । (६) तो फिर सन्तपुरुष एक परम निज त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय करके सकलचारित्र रूप शुद्धि को प्रगट करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यों नहीं करते ? अर्थात् श्रेणी माडकर केवलज्ञान क्यों प्रगट नहीं करते ?—ऐसा कहकर आचार्य भगवान् ने खेद प्रगट किया है । (७) भावार्थ मे बताया है कि २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने का त्याग करके, निज त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से सकलचारित्ररूप शुद्धि प्रगट करके निज महिमा मे प्रवर्तन करके श्रेणी माडकर केवलज्ञान प्रगट करना युक्त है ।

प्रश्न ६—“(१) तथा षडपाहुड़ के मोक्ष पाहुड़ गाथा ३१ में कुन्द-कुन्द भगवान् ने कहा है कि (२) जो व्यवहार में सोता है वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है । (३) तथा जो व्यवहार में

जागता है वह अपने कार्य में सोता है । (४) इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने को अगीकार करने और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप व्यवहार मुनिपने के त्याग के विषय में मोक्षपाहुड गाथा ३१ में भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ? (२) जो २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र रूप निश्चय मुनिपने की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है । (३) तथा जो २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने में जागता है, इसी को सच्चा मुनिपना मानता है—वह अपने आत्मकार्य में सोता है । (४) इसलिए २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान छोड़कर सकलचारित्र रूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना योग्य है, क्योंकि यथार्थ में सकलचारित्ररूप शुद्धोपयोग ही मुनिपना है ।

प्रश्न १०—“(१) व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना । (२) निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना”—इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान छोड़कर सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान क्यों करना योग्य है ? इस प्रश्न का उत्तर इस वाक्य में है । सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना—यह स्वद्रव्य का भाव है और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपना—यह परद्रव्य का भाव है । व्यवहारनय=सकल-चारित्ररूप स्वद्रव्य के भाव को और २८ मूलगुणादि रूप परद्रव्य के

भाव को—किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है मो २८ मूलगुणादि रूप ही सच्चा मुनिपना है—ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना । (२) निश्चयनय=सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भाव को और २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपना परद्रव्य के भाव को यथावत् जैसा का तैसा निरूपित करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है । २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति मुनिपना नहीं है, सकलचारित्ररूप शुद्धि ही निश्चय मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इसलिए उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न ११—“(१) यहाँ प्रश्न है कि यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ? (२) समाधान—जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यतया लिये व्याख्यान है, उसे तो ‘सत्यार्थ ऐसे ही है’ ऐसा जानना । (३) तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे ‘ऐसे हैं नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है’ ऐसा जानना । (४) इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य प्रश्न करता है कि आर कहते हो कि २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है—इसलिए उसका त्याग करना और सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए । परन्तु जिनमार्ग में तो निश्चय-व्यवहार दोनों प्रकार के मुनिपने का ग्रहण करना कहा है सो कैसे ? (२) वहाँ समाधान किया है कि जिनमार्ग में कही तो सकल-चारित्र शुद्धिरूप मुनिपना कहा है, यह तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है” ऐसा जानना । (३) तथा जिनमार्ग में कही २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा है, यह व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “ऐसा

है नहीं, निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से कथन किया है"—ऐसा जानना । (४) २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति मुनिपना नहीं है अपितु सकल-चारित्र रूप शुद्धि ही सच्चा मुनिपना है—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार मुनिपने का ग्रहण है ।

प्रश्न १२—“तथा दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है और ऐसे भी है इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नहीं कहा है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—कोई-कोई चतुर विद्वान निश्चयनय सकलचारित्र शुद्धिरूप भी मुनिपना है और व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप भी मुनिपना है—ऐसा कहते हैं । क्या उन चतुर विद्वानो का ऐसा कहना झूठा है ? वहाँ उत्तर दिया है कि ऐसे चतुर विद्वानो का कहना झूठा ही है क्योंकि निश्चय और व्यवहारनय के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर सकलचारित्र शुद्धिरूप भी मुनिपना है और २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप भी मुनिपना है—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहारनय का ग्रहण करना जिनमार्ग में नहीं कहा है ।

प्रश्न १३—“(१) फिर प्रश्न है कि यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? एक निश्चयनय ही का निरूपण करना था । (२) समाधान—ऐसा ही तर्क समयसार गाथा ८ में किया है, वहाँ उत्तर दिया है—जिस प्रकार अनायं अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिये व्यवहार का उपदेश है । (३) तथा इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है कि “व्यवहारनयोनानु सत्तव्य” इसका अर्थ है—इस निश्चय को अंगीकार कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं । (४) परन्तु व्यवहारनय है, सो अंगीकार करने योग्य नहीं है ।’ इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि यदि २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? एक सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का ही निरूपण करना था । (२) उसका समाधान करते हुए उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराना अशक्य है—इसलिए असत्यार्थ व्यवहार मुनिपने का उपदेश है । (३) तथा समयसार गाथा ८ की टीका में कहा है कि यथार्थ निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराने के लिए असत्यार्थ व्यवहार मुनिपने का उपदेश है । (४) परन्तु २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु असत्यार्थ व्यवहार मुनिपना अगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न १४—“(१) व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? (२) समाधान—निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है उसे जो नहीं पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नहीं पाये । (३) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा, (४) व्यवहारनय से व्रत-शील-संयमादि-रूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हें वीतराग भाव की पहिचान हुई ।” इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसे व्यवहार के बिना सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसको स्पष्टता से समझाइये । (२) समाधान—निश्चय से सकलचारित्र रूप वीतराग भाव ही मुनिपना है । उस सकलचारित्र वीतराग भाव रूप मुनिपने को जो नहीं पहिचानते उनसे ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नहीं पाये । (३) तब उनको जिन्हे सकलचारित्र रूप वीतराग मुनिपना प्रगट हुआ है, उनके २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति के

विरुद्ध धर्म-विरोधी कार्यों के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा; (४) व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति को सकलचारित्र वीतराग भावरूप मुनिदशा के विशेष बतलाये । तब उन्हें सकलचारित्र वीतराग भावरूप मुनिपने की पहचान हुई ।

प्रश्न १५—“(१) व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना ? सो कहिये (२) समाधान किया है । तथा परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से; (३) व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना । (४) क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता हो जावे । परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के अधीन नहीं । (५) इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है । (६) इसलिये निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है । (७) वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है । (८) इसलिये व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है । (९) परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि अशुद्धि रूप व्यवहार मुनिपने को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो स्पष्टता से समझाइये । (२) वहाँ उत्तर दिया है कि भूमिकानुसार २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति व पोछी-कमडल के अलावा कुछ ना होने की, घरो मे ना रहने की, किया-कराया-अनुमोदित भोजन ना लेने आदि धर्म विरोधी परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षाए; (३) व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति को मुनिपना कहा सो इसी को मुनिपना नहीं मान लेना; (४) क्योंकि २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य की क्रिया का कर्त्ता-हर्त्ता हो जावे परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के अधीन नहीं है । अतः २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया से तो आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध ही नहीं है ।

(५) इसलिये आत्मा अपने २८ मूलगुणादिक जो रागादिक भाव है उन्हें छोड़कर सकलचारित्र वीतराग भाव रूप होता है । (६) इसलिये निश्चय से सकलचारित्र वीतराग भाव ही सच्चा मुनिपना है । (७) सकलचारित्ररूप वीतरागभाव और २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है । (८) इसलिये २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा है सो कथन मात्र ही है । (९) परमार्थ से २८ मूलगुणादि रूप बाह्य क्रिया मुनिपना नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना ।

प्रश्न १६—“(१) यहाँ प्रश्न है कि व्यवहारनय पर को उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है ? (२) समाधान—आप भी जब तक निश्चयनय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने तब तक व्यवहार मार्ग से वस्तु का निश्चय करे । (३) इसलिये निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी है । (४) परन्तु व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी हो । (५) परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर “वस्तु इस प्रकार ही है” ऐसा श्रद्धान करे तो उल्टा अकार्यकारी हो जाये । (६) यही पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६-७ में कहा है कि मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं । (७) जो केवल व्यवहार ही को जानता है उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है । (८) तथा जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जाने उसका व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) मुनिपना २८ मूलगुणादि पालने के भावरूप है ऐसा व्यवहारनय पर को ही उपदेश में कार्यकारी है या कुछ अपना भी प्रयोजन साधता है ? यह प्रश्नकार का प्रश्न है । (२) समाधान—शिष्य भी जब तक निश्चयनय से प्ररूपित वीतराग शुद्धोपयोग रूप

मुनिदशा को ना समझे (प्रगट ना कर ले) तब तक व्यवहार मार्ग से वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिदशा को प्रगट करने का उपाय करे । (३) इसलिये निचली दशा मे शिष्य को भी २८ मूलगुणादि मुनिपना है ऐसा व्यवहारनय कार्यकारी है । व्यवहारनय कार्यकारी कब कहा जावेगा ? जब निज ज्ञायक भगवान के आश्रय से पर्याय मे वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिदशा प्रगट करे । (४) परन्तु २८ मूलगुणादि रूप मुनिदशा है ऐसे व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा अर्थात् उसका अभाव करके वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिपने की प्राप्ति हो तब तो कार्यकारी है । (५) परन्तु यदि कोई सकलचारित्र वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने के समान २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को भी सच्चा मानकर “मुनिपना इस प्रकार ही है ।” ऐसा श्रद्धान करे तो उल्टा अनर्थकारी हो जावे । (६) यही बात पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६-७ मे बतलाया है कि जो भगडाखोर नहीं है परन्तु जैसा मुनिराज कहते हैं वैसा ही मानता है ऐसे अज्ञानी को मुनिराज ज्ञानी बनाने के लिए असत्यार्थ जो व्यवहारनय है उसका उपदेश देते हैं । (७) जो अज्ञानी मूलगुणादि ही मुनिपना है ऐसे व्यवहार का ही पक्ष करता है—ऐसे अज्ञानी को मुनिराज देशना के योग्य नहीं मानते हैं । (८) जैसे कोई जंगल मे जा रहा था और उसने कभी सिंह नहीं देखा था उसे बड़ी मूछो वाली बिल्ली दिखाकर कहा कि सिंह ऐसा होता है । तब वह पुरुष बड़ी मूछो वाली बिल्ली को ही सिंह मान ले, उसी प्रकार कोई सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने को ना पहिचाने और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को सच्चा मुनिपना मानले वह भगवान की वाणी सुनने योग्य नहीं है क्योंकि उसने व्यवहार मुनिपने को ही सच्चा मुनिपना मान लिया ।

प्रश्न १७—“(१) यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे कि तुम व्यवहार को असत्यार्थ, हेय कहते हो तो हम व्रत-शील-संयमादि व्यवहार कार्य किसलिये करें सबको छोड़ देंगे । (२) उससे कहते हैं कि

अतः शील-संयमादि का नाम व्यवहार नहीं है । (३) इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दें । (४) और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है—यह तो परद्रव्याश्रित है । (५) तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है वह स्व-द्रव्याश्रित है । (६) इस प्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना । (७) व्रतादिक को छोड़ने से तो व्यवहार का हेयपना नहीं होता है ।” इस वाक्य पर मुनिपने को लगातार समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना हेय है और सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना प्रगट करने योग्य उपादेय है । ऐसे हेय-उपादेय का जिसे विचार नहीं है—ऐसा निर्विचारी पुरुष कहता है कि तुम २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को असत्यार्थ—हेय कहते हो तो हम २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति-रूप व्यवहार मुनिपने का पालन क्यों करे ? हम तो २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को छोड़कर अशुभ में प्रवर्तन करेंगे—ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न है । (२) उसे उत्तर दिया है कि २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति का नाम व्यवहार मुनिपना नहीं है । (३) २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति को मुनिपना मानना व्यवहार है—इस खोटी मान्यता को छोड़ दे । (४) ऐसा श्रद्धान कर कि जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना प्रगटा है, उसके २८ मूल-गुणादि की प्रवृत्ति को बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति तो पर-द्रव्याश्रित है । (५) तथा सच्चा मुनिपना तो सकलचारित्ररूप शुद्धि ही है और यह स्वद्रव्याश्रित है । (६) इस प्रकार मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को असत्यार्थ-हेय ही जानना । (७) २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को छोड़ने से तो व्यवहार मुनिपने का हेयपना नहीं होता है ।

प्रश्न १८—“(१) फिर हम पूछते हैं कि व्रतादिक को छोड़कर क्या करेगा ? (२) यदि हिंसादि रूप प्रवर्तेंगे तो वहाँ तो मोक्षमार्ग का

उपचार भी सम्भव नहीं है । वहाँ प्रवर्तने से क्या भला होगा ? नरकादि प्राप्त करेगा । इसलिये ऐसा करना तो निर्विचारपना है । (३) तथा व्रतादिरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है । (४) वह निचली वशा में हो नहीं सकता । (५) इसलिये व्रतादिक साधन छोड़कर स्वच्छन्द होना योग्य नहीं है । (६) इस प्रकार श्रद्धान में निश्चय को और प्रवृत्ति में व्यवहार को उपादेय मानना—वह भी मिथ्याभाव ही है ।” इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) पंडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य से पूछते हैं कि २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति को छोड़कर तू क्या करेगा ? (२) और यदि २८ मूलगुणादि रूप शुभभावो को छोड़कर हिंसादि अशुभभावो मे प्रवर्तंगा तो वहाँ तो मुनिपने का उपचार भी सम्भव न हो सकेगा और अशुभभावो मे प्रवर्तने से तेरा क्या भला होगा ? नरकादि के दुखो को प्राप्त करेगा । इसलिये २८ मूलगुणादि के शुभभावो को छोड़कर अशुभभावो मे प्रवर्तना तो निर्विचारीपना है । (३) तथा २८ मूलगुणादिक व्यवहार मुनिपने की परिणति को मिटाकर केवल यथाख्यात चारित्र वीतराग शुद्धोपयोग भावरूप होना बने तो अच्छा है । (४) यथाख्यात चारित्र वीतराग शुद्धोपयोग दशा निचली दशा में नही हो सकती है । (५) इसलिये २८ मूलगुणादिक के शुभभावो को छोड़कर स्वच्छन्द—पापी होना योग्य नही है । (६) इस प्रकार श्रद्धान मे निश्चय को और प्रवृत्ति मे व्यवहार को उपादेय मानना—वह भी मिथ्याभाव ही है ।

प्रश्न १९—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २०—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २१—ईर्ष्या समिति पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २२—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २४—क्षुधापरिणहजय पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २५—अहिंसाणुव्रत पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २६—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र्य गुणरूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्र्य की प्राप्ति को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। (२) जहाँ श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्र्य की प्राप्ति को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग व सात तत्वों की भेदरूप श्रद्धा बध का कारण होने पर भी सम्यग्दर्शन के आरोप को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। (३) जहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग व सात तत्वों की भेद रूप श्रद्धा को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ हाथ जोड़ने आदि शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

प्रश्न २७—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को श्रावकपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र्य गुण रूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा दो चौकड़ी कषाय के अभाव रूप देशचारित्र्य को उपचार का

नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है । (२) जहाँ दो चौकड़ी कषाय के अभाव रूप देशचारित्र को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ बारह अणुव्रतादि के विकल्पो को उपचार का नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है । (३) जहाँ बारह अणुव्रतादि के विकल्पो को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ बारह अणुव्रतादिरूप शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है ।

प्रश्न २८—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को मुनिपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र गुणरूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है । (२) जहाँ तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ २८ मूलगुणादि के विकल्पो को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है । (३) जहाँ २८ मूलगुणादि के विकल्पो को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ २८ मूलगुणादिरूप शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है ।

प्रश्न २९—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को ईर्यासविति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ३०—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को उत्तम क्षमा पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ३१—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को मनोगुप्ति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ३२—तीन प्रकार निश्चय-व्यवहार को सामायिक पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ।

प्रश्न ३३—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ,

प्रश्न ३४—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को क्षुधा परिषहजक पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो ।

—इति उभयाभासी प्रकरण समाप्त—

पाँच लब्धियों का स्वरूप

प्रश्न १—पाँच लब्धियों के क्या नाम हैं ?

उत्तर—क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण ये पाँच नाम हैं ।

प्रश्न २—क्षयोपशम लब्धि क्या है ?

उत्तर—जिसके होने पर तत्त्व विचार हो सके-ऐसा ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो; उसकी प्राप्ति से क्षयोपशम लब्धि है ।

प्रश्न ३—क्षयोपशम लब्धि में उपादान-निमित्त क्या है ?

उत्तर—क्षयोपशम भाव उपादान कारण है और उसके योग्य ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम निमित्त है ।

प्रश्न ४—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वों का श्रद्धान करने योग्य

क्षयोपशम तो सर्व पंचेन्द्रिय जीवो के हुआ है क्या उन सब को क्षयो-
पशम लब्धि की प्राप्ति नहीं है ?

उत्तर—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वो का श्रद्धान करने योग्य क्षयो-
पशम तो पंचेन्द्रिय सर्व जीवो के प्रगट हुआ है। परन्तु उस क्षयोपशम
को सामारिक प्रयोजन मे, दवाखाना खोलने मे, देश की सेवा मे, जीवो
की दया पालने मे, व्रतादि पालने मे लगावे उसको क्षयोपशम लब्धि
की प्राप्ति नही है। परन्तु जैसा अनादि से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कहते
हैं उसी प्रकार तत्व का विचार करे अन्य प्रकार की बात ध्यान मे
ना लावे तब उसे क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति कही जा सकती है।

प्रश्न ५—विशुद्धि लब्धि क्या है ?

उत्तर—मोह का मन्द उदय आने से मन्द कषायरूप भाव हो जहाँ
तत्व विचार हो सके सो विशुद्धि लब्धि है।

प्रश्न ६—विशुद्धि लब्धि में उपादान और निमित्त क्या है ?

उत्तर—सकलेश की हानि, विशुद्धि की (शुभभाव की) वृद्धि
उपादान कारण है और अशुभ कर्म का अनुभाग घटना निमित्त है।

प्रश्न ६—विशुद्धि लब्धि क्या बताती है ?

उत्तर—तत्व के विचार मे ज्ञान का विकास हुआ हो तब राग की
दशा कैसी होती है ? अर्थात् कषाय बहुत मन्द होती है यह विशुद्धि
लब्धि बताती है।

प्रश्न ८—देशनालब्धि क्या है ?

उत्तर—जिन देव के उपदिष्ट तत्व का धारण हो, विचार हो, सो
देशनालब्धि है।

प्रश्न ९—देशनालब्धि में उपादान और निमित्त क्या है।

उत्तर—उपदेशित नो पदार्थों की धारणा होना उपादान कारण है
और ज्ञानी गुरु निमित्त कारण है।

प्रश्न १०—देशनालब्धि क्या बताती है ?

उत्तर—जिसको तत्व विचाररूप क्षयोपशम, मन्दकषायरूप अवस्था-

होती है तब वह भगवान की या गुरु की देशना सुनने लायक है। तब उसे अपनी योग्यता से जैसा सच्चा गुरु कहते हैं वैसा ही ध्यान में बैठाता है, यह देशनालब्धि बताती है। यहा उपदिष्ट कहा है। कोई उपदेश बिना अकेले शास्त्र बाँचकर देशनालब्धि प्राप्त नहीं कर सकता है।

प्रश्न ११—प्रायोग्य लब्धि क्या है ?

उत्तर—कर्मों की पूर्व सत्ता अतः कोडाकोडी सागर प्रमाण रह जाये और नवीन वध अतः कोडाकोडी प्रमाण उसके सख्यातवें भाव मात्र हो, वह भी उस लब्धि काल में लगाकर क्रमशः घटता जाये और कितनी ही पाप प्रकृतियों का वध क्रमशः मिटता जावे, इत्यादि योग्य अवस्था का होना सो प्रायोग्य लब्धि है।

प्रश्न १२—प्रायोग लब्धि में उपादान निमित्त क्या है ?

उत्तर—कर्म की स्थिति अन्त कोडाकोडी काल मात्र रहने योग्य जीव का परिणाम उपादान कारण है और द्रव्यकर्म की उस प्रकार की स्थिति का होना निमित्त कारण है।

प्रश्न १३—प्रायोग्यलब्धि क्या बताती है ?

उत्तर—कर्म की स्थिति स्वयं घटती जाती है ऐसा कर्म की दशा का होना यह प्रायोग्य लब्धि बताती है।

प्रश्न १४—ये चारो लब्धियाँ किसको होती हैं और किसको नहीं होती हैं ?

उत्तर—चारो लब्धियाँ मोटेरूप से भव्य और अभव्य दोनों के कही जाती है। परन्तु चारो लब्धियाँ होने के बाद कारण लब्धि होने पर तुरन्त ही सम्यक्त्व प्रकट होता है। जिसको कारण लब्धि हो उसी को वास्तव में चार लब्धियाँ हुई हैं अन्यथा लब्धियों का कोई लाभ नहीं है। क्योंकि कार्य होने पर कारण पर उपचार आता है।

प्रश्न १५—गौमद्वय में लब्धियों के विषय में क्या कहा है ?

उत्तर—जो जीव करणलब्धि में आता है उसे 'सात्तिशय मिथ्या-

दृष्टि' कहा है उसे नियम से सम्यक्त्व होता ही है। करणलब्धि वाले जीव की चार लब्धियाँ भी विचित्र प्रकार की होती हैं।

प्रश्न १६—वृहत् द्रव्य संग्रह गाथा ३७ की टीका में लब्धियों के विषय में क्या कहा है ?

उत्तर—“करणलब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती है। अध्यात्म भाषा में निज शुद्धात्माभिमुख परिणाम नाम के विशेष प्रकार की निर्मल भावनारूप खड्ग से पुरुषार्थ करके कर्म शत्रुओं का नाश करता है।”

प्रश्न १७—प्रवचनसार में श्री जयसेनाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—आगम की भाषा से अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति-करण नाम के परिणाम विशेषों के बल से जो विशेषभाव, दर्शनमोह का अभाव करने को समर्थ है उनमें अपने आत्मा को जोड़ता है। फिर निर्विकल्प स्वरूप की प्राप्ति के लिए—जैसे पर्यायरूप से मोती का दाना, गुणरूप से सफेदी आदि अभेदनय से एक हार ही मालूम पड़ता है; उसी प्रकार पूर्व कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय अभेदनय से आत्मा ही है ऐसी भावना करते-करते दर्शनमोह का अधकार नष्ट हो जाता है।

प्रश्न १८—कारण लब्धि किसको नहीं होती है ?

उत्तर—जिस जीव को पुण्य की रुचि, बाहरी अनुकूलता अच्छी लगती है, जैसे हम कुछ दिन जिन्दा रहे तो धर्म समझे, आँख-नाक-कान शरीर ठीक रहे, रुपये-पैसा की अनुकूलता रहे, गुरु का उपदेश मिलता रहे तो मैं धर्म कर सकूँ ऐसे जीवों को करणलब्धि नहीं होती है।

प्रश्न १९—करणलब्धि किसको होती है ?

उत्तर—जिसको पुण्य की रुचि छूटती है। उसे अपूर्वकरण से निर्जरा होनी शुरू हो जाती है। कपाय का मन्द होना यह तो विकार का सूचक है उसकी बात यहाँ पर नहीं है, परन्तु अपूर्वकरण में निर्जरा गलन होने रूप अर्थात् नाश होनेरूप होती है।

प्रश्न २०—करण लब्धि में कौनसा गुणस्थान है ?

उत्तर—पहला मिथ्यात्व गुणस्थान है । दर्शन मोहनीय कर्म का वध होता है । परन्तु वध कम होता है निर्जरा ज्यादा होती हैं तब निर्विकल्पता होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न २१—आगम से अपूर्वकरण लब्धि से जैन क्यो कहा है, जबकि वहाँ पहला गुणस्थान है और निर्जरा क्यो कही है ?

उत्तर—अपूर्वकरण से मिथ्यात्व सम्बन्धी रजकण कम आते है और अभाव ज्यादा का होता है । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण से अपूर्वकरण से ज्यादा मिथ्यात्व कर्म के रजकण खिर जाते है और बहुत कम आते है । कर्म खिरने की अपेक्षा निर्जरा कहने से आता है तथा अपूर्वकरण होने पर नियम से सम्यग्दर्शन होता ही है । इसलिए आगम से अपूर्वकरण से जैन कहा है । तथा अपूर्वकरण से मिथ्या श्रद्धा पतली पड़ जाती है और मिथ्यात्व के रजकण कम आते है इसलिए निर्जरा कही है ।

प्रश्न २२—अधःकरण होने पर नियम से अपूर्वकरण होता है तब अधःकरण से आगम से जैन क्यो नहीं कहा गया है ?

उत्तर—अधःकरण से मिथ्यात्व के रजकण जितने आते है उतने ही खिर जाते हैं । इसलिए अधःकरण से आगम से जैन नहीं कहा है ।

प्रश्न २३—क्या करणलब्धि होने पर सम्यक्त्व होता ही है ?

उत्तर—हाँ ऐसा नियम है । जिसको चार लब्धियाँ तो हुई हो और अन्तर्मूर्हत पश्चात् जिसके सम्यक्त्व होना हो, उसी जीव के कारण लब्धि होती है ।

प्रश्न २४—उस करणलब्धि वाले जीव को क्या उद्यम होता है ?

उत्तर—बुद्धिपूर्वक तत्त्व विचार मे उपयोग को तद्रूप होकर लगाये, उससे समय-समय परिणाम निर्मल होते जाते हैं । जैसे—किसी के शिक्षा का विचार ऐसा निर्मल होने लगा कि जिससे उसको शीघ्र ही उसकी

प्रतीति हो जावेगी, उसी प्रकार तत्त्वोपदेश का विचार ऐसा निर्मल होने लगा कि जिससे उसको शीघ्र ही उसका श्रद्धान हो जावेगा ।

प्रश्न २५—क्या करणलब्धि के परिणाम वचन गम्य है ?

उत्तर—नहीं है । अन्तर मे चैतन्य स्वभाव के सन्मुख होने पर अन्तर मे कोई सूक्ष्म परिणाम हो जाता है वह केवली गम्य है, वचन गम्य नहीं है ।

प्रश्न २६—मैं करणलब्धि करूँ-करूँ क्या ऐसा भाव होता है ?

उत्तर—विल्कुल नहीं होता । मैं अध करण करूँ, अनिवृत्तिकरण करूँ ऐसा लक्ष्य नहीं होता है क्योंकि करूँ-करूँ यह तो स्थूल राग है । परन्तु अन्तर मे आत्म सन्मुख होने पर अध करणादि के परिणाम हो जाते हैं वह अपनी बुद्धि मे नहीं आते हैं ।

प्रश्न २७—अध.करणादि को अध्यात्मदृष्टि और आगमदृष्टि से क्या कहा जाता है ?

उत्तर—अध्यात्मदृष्टि मे आत्म सन्मुख परिणाम कहा जाता है और आगम की दृष्टि से अध करणादि कहे जाते हैं । जीव के विशुद्ध परिणामो का निमित्त होने पर द्रव्यकर्म का भी स्वयं वैसा परिणमन हो जाता है परन्तु जीव का उद्यम तो आत्म सन्मुख परिणाम ही है ।

प्रश्न २८—करण लब्धि में उपादान—निमित्त क्या है ?

उत्तर—आत्म मे सम्यक्त्व के योग्य परिणामो की विशुद्धि उपादान कारण है द्रव्य कर्मों की उस समय पर्याय की योग्यता निमित्त कारण है ।

प्रश्न २९—सम्यक्त्व होने पर उपादान-निमित्त क्या है ?

उत्तर—आत्मा के श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगट होना उपादान कारण है दर्शनमोहनीय के उपशमादि निमित्त कारण है ।

प्रश्न ३०—करणलब्धि के तीन भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण यह तीन भेद है ।

प्रश्न ३१—अध:करण क्या है ?

उत्तर—अध करण अर्थात् हल्का, आत्मा के सन्मुख परिणाम हुआ है परन्तु हल्का है इसलिए अध करण कहा है ।

प्रश्न ३२—शास्त्रों में अधःकरण की परिभाषा क्या बताई है ?

उत्तर—त्रिकालवर्ती सर्व करणलब्धि वाले जीवों के परिणामों की अपेक्षा ये तीन नाम हैं । वहाँ करण नाम तो परिणाम का है । जहाँ पहले और पिछले समयों के परिणाम समान हों सो अध करण है । जैसे—किसी जीव के परिणाम उस करण के पहले समय में अल्प विशुद्धता से सहित हुए, पश्चात् समय-समय अनन्तगुणी विशुद्धता से बढ़ते गये, तथा उसके द्वितीय-तृतीय आदि समयों में जैसे परिणाम हों, वैसे किन्हीं अन्य जीवों के प्रथम समय में ही हों और उनके उससे समय-समय अनन्त गुणी विशुद्धता से बढ़ते हों ।—इस प्रकार अध-करण जानना ।

प्रश्न ३३—अधःकरण का स्वरूप समझने में नहीं आया कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—तीसरी ब्लास में एक विद्यार्थी पढ़ता है, वह एक वर्ष में मेहनत करके पास होकर चौथी ब्लास में आ जाता है और दूसरा विद्यार्थी दूसरी ब्लास में पढ़ता है, वह इतना होशियार है कि वह एक वर्ष में दो ब्लास पास करके चौथी ब्लास में पहुँच जाता है, वैसे ही आठ बजे जिन्होंने अधःकरण माडा हो, वह एक समय के बाद जितनी शुद्धि प्रगट करता है । उतनी शुद्धि आठ बजकर एक मिनट पर अधःकरण माडने वाले जीव विशेष पुरुषार्थ द्वारा पहले जीव की जितनी शुद्धि है उतनी ही प्रगट कर लेता है उसे अध करण कहते हैं ।

प्रश्न ३४—अपूर्वकरण क्या है ?

उत्तर—आत्म सन्मुख परिणाम अपूर्व-अपूर्व ही हो वह अपूर्व करण है ।

प्रश्न ३५—शास्त्रों में अपूर्व करण की परिभाषा क्या बताई है ?

उत्तर—जिसमें पहले और पिछले समयों के परिणाम समान न

हो, अपूर्व ही हो वह अपूर्वकरण है। जैसे कि—उस करण के परिणाम जैसे पहले समय में हो वैसे किसी भी जीव के द्वितीयादि समयों में नहीं होते, बढ़ते ही होते हैं, तथा यहाँ अध.करणवत् जिन जीवों के कारण का पहला समय ही हो उन अनेक जीवों के परिणाम परस्पर समान भी होते हैं और अधिक-हीन विशुद्धता सहित भी होते हैं; परन्तु यहाँ इतना विशेष हुआ कि—इसकी उत्कृष्टता से भी द्वितीयादि समय वाले के जवन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता सहित ही होते हैं। इसी प्रकार जिन्हें करण प्रारम्भ किये द्वितीयादि समय हुए हो उनके उस समय वालों के परिणाम तो परस्पर समान या असमान होते हैं; परन्तु ऊपर के समय वालों के परिणाम उस समय समान सर्वथा नहीं होते, अपूर्व ही होते हैं। इस प्रकार अपूर्वकरण जानना।

प्रश्न ३६—अपूर्वकरण का स्वरूप समझ में नहीं आया, कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—एक क्लास में २५ विद्यार्थी हैं। उसमें आखिरी नम्बर वाला विद्यार्थी के बराबर चौथी क्लास का विद्यार्थी पहला नम्बर वाला हो तो भी उसके समान नहीं हो सकता, वैसे ही पहले जिस जीव ने अपूर्वकरण माड़ा हो, उसके पीछे वाला उसके साथ शुद्धि में कभी भी समानता को प्राप्त नहीं हो सकता, वह सदा काल पीछे ही रहेगा उसे अपूर्वकरण कहते हैं। जैसे—एक क्लास के जितने विद्यार्थी हैं, वह सब एक सरीखे होशियार नहीं होते अर्थात् उसमें हीनाधिकता होती है, वैसे ही अपूर्वकरण माड़ने वाले पांच जीव हो उनका शुद्धि-रूप परिणाम एक समान नहीं रहता है उसे अपूर्वकरण कहते हैं ?

प्रश्न ३७—अनिवृत्तिकरण क्या है ?

उत्तर—आत्म परिणाम और विशेषता लिए हुए होना, जिसके अभाव से नियम से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

प्रश्न ३८—शास्त्रों में अनिवृत्तिकरण की परिभाषा क्या बताई है ?

उत्तर—जिसमें समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान ही होते हैं, निवृत्ति अर्थात् परस्पर भेद उससे रहित होते हैं, जैसे—उमरण के पहले समय में सर्व जीवों के परिणाम परस्पर समान ही होते हैं, उसी प्रकार द्वितीयादि समयों में परस्पर समानता जानना । तथा प्रथमादि समय वालों से द्वितीयादि समय वालों के अनन्तगुणी विशुद्धता सहित होते हैं । इस प्रकार अनिवृत्ति करण जानना ।

प्रश्न ३९—अनिवृत्तिकरण का स्वरूप समझ में नहीं आया, कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—जैसे—पाँचवीं कलास के सब विद्यार्थी समान ही होशियार हों, वैसे ही एक साथ अनिवृत्तिकरण माडने वाले जितने जीव हों उन सबके परिणाम समान हों अर्थात् जिनके परिणामों में कोई भेद ना हो उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं ।

प्रश्न ४०—अधःकरण आदि तीनों भाव कैसे हैं ?

उत्तर—गुणभावस्वरूप हैं जिसके अभाव होते ही धर्म की प्राप्ति होती है और फिर क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जाता है ।

प्रश्न ४१—श्री कार्तिकेय स्वामी ने सम्यग्दृष्टि की धर्मअनुप्रेक्षा के विषय में क्या बताया है (२) सम्यग्दृष्टि जीव वस्तु स्वरूप का कैसा चिन्तन करता है ? (३) उसमें मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ भी किस प्रकार आ जाता है ?

उत्तर—यहाँ मूलगाथाये लेकर इनका विवेचन किया जा रहा है ।

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।

णादं जिणेण णियदं जम्मं वा आहव मरण वा ॥३२१॥

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।

को सक्कइ चालेडुं इंदो वा अह जिणिदो वा ॥३२२॥

अर्थ—जिस जीव को जिस देश में जिस काल में जिस विधि से

जन्म-मरण सुख-दुःख तथा रोग और दारिद्र्य इत्यादि जैसे सर्वज्ञदेव ने जाने हैं उसी प्रकार वे सब नियम से होंगे। सर्वज्ञदेव ने जिस प्रकार जाना है उसी प्रकार उस जीव के उसी देश में उसी काल में और उसी विधि से नियम पूर्वक सब होता है। उसके निवारण करने के लिये इन्द्र या जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी समर्थ नहीं है।

प्रश्न ४२—इन दो गाथाओं के भावार्थ में क्या बताया है ?

उत्तर—भावार्थ :—सर्वज्ञदेव समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अवस्थाओं को जानते हैं। सर्वज्ञ के ज्ञान में जो कुछ प्रतिभासित हुआ है वह सब निश्चय से होता है, उसमें हीनाधिक कुछ भी नहीं होता। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि विचार करता है।

प्रश्न ४३—इन दो गाथाओं और भावार्थ से क्या सिद्ध हुआ ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि की धर्मानुप्रेक्षा कैसी होती है और सम्यग्दृष्टि जीव वस्तु के स्वरूप का किस प्रकार चिंतन करता है यह बात यहाँ बताई है। सम्यग्दृष्टि की यह भावना झूठा आश्वासन देने के लिये नहीं है, किन्तु जिनेन्द्र देव के द्वारा देखा गया वस्तु स्वरूप जिस प्रकार है उसी प्रकार स्वयं चिंतन करता है। वस्तु स्वरूप ऐसा ही है, यह कोई कल्पना नहीं है, यह धर्म की बात है। 'जिस काल में जो होने वाली अवस्था सर्वज्ञ भगवान ने देखी है उस काल में वही अवस्था होती है, दूसरी नहीं होती।' इस निर्णय में एकान्तवाद या नियतवाद नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ की प्रतीति पूर्वक सच्चा अनेकान्तवाद और ज्ञानस्वभाव की भावना तथा ज्ञान का अनन्त पुरुषार्थ निहित है।

प्रश्न ४४—सामान्य विशेष वस्तु का स्वभाव है इस पर से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—आत्मा सामान्य—विशेष स्वरूप वस्तु है, वह अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप है। द्रव्य सामान्य और समय-समय पर जो पर्याय होती है वह विशेष है। सामान्यरूप में ध्रुव रहकर वस्तु का विशेषरूप परिणमन होता है, उस विशेष पर्याय में यदि स्वरूप की रुचि करे तो

समय-समय पर विशेष में शुद्धता होती है, और यदि उस विशेष पर्याय में ऐसी विपरीत रुचि करे कि 'जो रागादि व देहादि है वह मैं हूँ' तो विशेष में अशुद्धता होती है। जिसे स्वरूप की रुचि है उसे शुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है; और जिसे विकार की—पर की रुचि है उसे अशुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है। चैतन्य को क्रमबद्ध-पर्याय में अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु क्रमबद्ध का ऐसा नियम है कि जिस ओर की रुचि करता है उस ओर की क्रमबद्ध दशा होती है। जिसे ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा व रुचि होती है उसकी पर्याय शुद्ध होती है, सर्वज्ञ भगवान् के ज्ञान के अनुसार क्रमबद्ध पर्याय होती है। उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता—इतना निश्चय करने में तो ज्ञान स्वभावी द्रव्य की ओर का अनन्त पुरुषार्थ आ जाता है। यहाँ पर्याय का क्रम नहीं बदलना है किन्तु अपनी ओर रुचि करनी है। रुचि के अनुसार पर्याय होती है।

द्रव्य दृष्टि का अभ्यास कर्तव्य है

“प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् है, एक द्रव्य का दूसरे के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है,” इस प्रकार जो यथार्थतया जानता है उसको स्वद्रव्य की दृष्टि होती है, और द्रव्यदृष्टि के होने पर सम्यक्दर्शन होता है, जिसके सम्यक्दर्शन होता है उसे मोक्ष हुए बिना नहीं रहता, इस लिये मोक्षार्थी को सर्वप्रथम वस्तु का स्वरूप जानना आवश्यक है।

प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता, ऐसा मानने पर वस्तु स्वभाव का इस प्रकार ज्ञान हो जाता है कि—आत्मा सर्व परद्रव्यों से भिन्न है, तथा प्रत्येक पुद्गल परमाणु भिन्न है, दो परमाणु मिलकर एकरूप होकर कभी कार्य नहीं करते किन्तु प्रत्येक परमाणु भिन्न ही है।

जीव के विकार भाव होने में निमित्तरूप विकारी परमाणु(स्कन्ध) हो सकते हैं, किन्तु द्रव्य की अपेक्षा से देखने पर प्रत्येक परमाणु पृथक् ही है,—दो परमाणु कभी भी नहीं मिलते और एक पृथक् परमाणु जीव को कभी भी विकार का निमित्त नहीं हो सकता, अर्थात् प्रत्येक द्रव्य भिन्न है, ऐसी स्वभावदृष्टि से कोई द्रव्य अन्य द्रव्य के विकार का निमित्त भी नहीं है। इस प्रकार द्रव्य दृष्टि से किसी द्रव्य में विकार है ही नहीं, जीव द्रव्य में भी द्रव्य दृष्टि से विकार नहीं है।

पर्याय दृष्टि से जीव की अवस्था में रागद्वेष होता है और उसमें कर्म निमित्तरूप होता है, किन्तु पर्याय को गौण करके द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो कर्म कोई वस्तु ही नहीं रहा, क्योंकि वह तो स्कन्ध है; इसलिये द्रव्यदृष्टि से जीव के विकार का निमित्त कोई द्रव्य न रहा, अर्थात् अपनी ओर से लिया जाये तो जीव द्रव्य में विकार ही नहीं रहा। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य भिन्न है ऐसी दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि के होने पर राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण ही न रहा, अतः द्रव्यदृष्टि में वीतराग-भाव की ही उत्पत्ति रही।

अवस्थादृष्टि में—पर्यायदृष्टि में अथवा दो द्रव्यों के सयोगी कार्य की दृष्टि में राग-द्वेषादिभाव होते हैं। 'कर्म' अनन्त पुद्गलो का सयोग है, उस सयोग पर या सयोगी भाव पर लक्ष दिया कि रागद्वेष होता है, किन्तु यदि अपने असयोगी आत्म स्वभाव की दृष्टि करे तो राग-द्वेष न हो, किन्तु उस दृष्टि के बल से मोक्ष ही हो। इसलिए मुमुक्षु के द्रव्य दृष्टि का अभ्यास परम कर्तव्य है।

आस्रवतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी आस्रव तत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—हिंसादि पापास्त्रव हेय है, अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है—
ऐसा मानता है।

प्रश्न २—अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसी खोटी मान्यता को
छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—“मोह महामद पियो अनादि” मोह रूपी महा मदिरा पान
बताया है।

प्रश्न ३—अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसी खोटी मान्यता का
फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियों में घूमकर निगोद इस खोटी मान्यता का
फल बताया है।

प्रश्न ४—अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता का
फल छहढाला की प्रथम ढाल में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव वीतराग विज्ञानता रूप है और
अहिंसादि पुण्यास्त्रव त्याज्य-हेय है। अज्ञानी ऐसा न मानकर अहिंसादि
पुण्यास्त्रव को उपादेय मानने के कारण इस खोटी मान्यता का फल
चारो गतियों में घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है—ऐसी खोटी मान्यता
को छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता
को आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है। (२) अहिंसादि
पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसा अनादि काल से एक-एक समय करके चला
आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (३)
अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसा अनादिकाल से एक-एक समय
करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया
है। (४) अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसा अनादिकाल से एक-
एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत
मिथ्या चारित बताया है। (५) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभवं

व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु कुशास्त्र उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसा अनादि काल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (६) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु कुशास्त्र का उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्या-ज्ञान बताया है । (७) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्रश्न ६—अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसा आलवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रकट होवे, इसका उपाय छहडाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आँख कान नाक औदारिक आदि शरीरी रूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव है । (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है । (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य हैं । (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है । (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का कर्ता भोक्ता सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य क्षेत्र काल भाव पृथक्-पृथक् है, ऐसा जानकर ज्ञान दर्शन-उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है, ऐसा आलव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का

अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होवे यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया गया है ।

प्रश्न ७—अहिंसा पुण्यास्त्रव उपादेय है—ऐसी मान्यता को आपने आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया परन्तु, अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसा ज्ञानी भी कहते सुने देखे जाते हैं । तो क्या ज्ञानियो को भी आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को बिल्कुल नहीं होते है । (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने अहिंसादि पुण्यास्त्रव तत्त्व उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता को आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादिक कहा है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है । (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे आस्त्रव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर ही के बनते हैं । (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय उपादेय का ज्ञान वर्तता है । (४) अहिंसादि पुण्यास्त्रव उपादेय है ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम में उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा ।

बंधतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी बंधत्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—पुण्य-पाप दोनो बधरूप होते हुये भी पुण्य बव को अच्छा मानता है ।

प्रश्न २—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—“मोह महामद पियो अनादि” मोहरूपी महा मदिरापान क्षताया है ।

प्रश्न ३—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को छह-ढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद—इस खोटी मान्यता का फल बताया है ।

प्रश्न ४—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में चारो गतियो में घूम कर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव वीतराग-विज्ञान रूप अबन्ध स्वभावी है और पुण्य-पाप दोनो बधरूप ही है । परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर पुण्यबध को अच्छा मानने के कारण, इस खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद बताया है ।

प्रश्न ५—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप-खोटी मान्यता की छह-ढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को बन्ध-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है । (२) पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप-मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (३) पुण्यबध को अच्छा मानने रूप-मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (४) पुण्यबध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्या चारित्र बताया है । (५) वर्तमान मे विशेष रूप से भनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन

बताया है । (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से, ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्रश्न ६—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत, गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है । (३) आँख, नाक, कान औदारिक आदि शरीरो-रूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव है । (७) अनन्तान्त पुद्गल द्रव्य है । (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है । (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है । (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं ।

इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है । ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले तो पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप बधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख को प्राप्ति होवे, यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है ।

प्रश्न ७—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को आपने बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि बताया परन्तु पुण्यबन्ध को अच्छा, ऐसा तो ज्ञानी भी कहते सुने देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को विलकुल नहीं होते है। (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि बताया है परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) पुण्यबन्ध अच्छा है, ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे उपचरित सद्भूत व्यवहार कहा है।

संवरतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी संवरतत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—वीतराग-विज्ञानतारूप निज आत्मा के आगम से सम्यक्-दर्शन-ज्ञान वैराग्य हितकारी है, परन्तु अज्ञानी निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानता है।

प्रश्न २—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—“मोह महामद पियो अनादि” मोहरूपी महामदिरा पान बताया है।

प्रश्न ३—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियों में घूमकर निगोद, इस खोटी मान्यता का फल बताया है ।

प्रश्न ४—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में चारों गतियों में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य ही जीव को हितकारी है । स्वरूप में स्थिरता रूप वैराग्य सुख का कारण है परन्तु अज्ञानी इसे कष्टदाता मानने के कारण ऐसी मान्यता का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद बताया है ।

प्रश्न ५—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की दूसरी ढाल में क्या क्या बताया है ?

उत्तर—(१) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है । (२) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (३) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (४) निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य का कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र्य बताया है । (५) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्य-भव व दिगवर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय

सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभाव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय सम्यक्दर्शन, ज्ञान, वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्रश्न ६—निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादिका अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टि है । (३) आख-नाक कान औदारिक आदि शरीरो रूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य हैं । (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य हैं । (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है । (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है । (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं । इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सबध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है । ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीवतत्व का आश्रय ले, तो निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान

वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाला में बताया है ।

प्रश्न ७—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को आपने संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया, परन्तु निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य कष्टदाता है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते सुने-देखे जाते हैं । तो क्या जानियों को भी संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते हैं [१] क्योंकि जिन-जिन-वर और जिनवर वृषभो ने निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है । [२] ज्ञानी जो बनते हैं वे सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं । [३] जानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है । [४] सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य कष्टदाता है ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम में उपचारित सद्भूत व्यवहारनय कहा है ।

निर्जरातत्त्व ।

प्रश्न १—अज्ञानी निर्जरातत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि को निर्जरा कहते हैं परन्तु अज्ञानी अनशनादि तप से निर्जरा होना मानता है ।

प्रश्न २—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को

भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता को छह ढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—“मोहमहामद पियो अनादि” मोहरूपी महा मदिरापान बताया है ।

प्रश्न ३—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियों में घूमकर निगोद—इस खोटी मान्यता का फल बनाया है ।

प्रश्न ४—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि ही निर्जरा है परन्तु अज्ञानी के अनशनादि बाह्य तप को निर्जरा मानने का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद बताया है ।

प्रश्न ५—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता को छह-ढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को निर्जरा-तत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है । (२) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (३) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय चला आ-रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्यात्व बताया है । (४) आत्मा

के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है । (५) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभवं व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (६) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभवं व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (७) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभवं व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप—ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण गृहीत को मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्रश्न ६—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखोपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छहदाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है । (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरों रूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव हैं । (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है । (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है । (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है । (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं । इन सब द्रव्यों से मुझ निज

आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है । ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे—यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्रश्न ७—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को आपने निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु अनशनादि निर्जरा है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते-सुने-देखे जाते हैं । तो क्या ज्ञानियों को भी निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते हैं । (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने अनशनादि को निर्जरा मानने रूप मान्यता को निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है । (२) ज्ञानी जो बनते हैं वह निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव को भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते हैं । (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है । (४) अनशनादि निर्जरा है—ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम में उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा है ।

मोक्षतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी मोक्ष तत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमें आकुलता का अभाव है, पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानता है।

प्रश्न २—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—“मोह महामद पियो अनादि” मोहरूपी महा मदिरापान बताया है।

प्रश्न ३—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियों में घूमकर निगोद इस छोटी मान्यता का फल बताया है।

प्रश्न ४—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता का फल चारो गतिओं में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—मोक्ष में आकुलता का अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को मोक्षतत्त्व

सम्बन्धी जीव की भूल बताया है । (२) मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय कर के चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यदर्शन बताया है । (३) मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है । (४) मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है । (५) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से—शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को, अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (६) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (७) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्रश्न ६—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे, इसका उपाय छहड़ाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हू। (२) मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। (३) आँख-नाक-कान आदिकारी आदि शरीरों रूप मेरी मूर्ति नहीं है। (४) चैतन्य अरूपी असंख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव हैं। (७) अनन्तान्त पुद्गल द्रव्य है। (८) असंख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो शरीर के मौज-शोक में ही सुख मानने रूप मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे—यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्रश्न ७—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शोक में ही मोक्ष सुख मानने रूप मान्यता को आपने मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु शरीर के मौज-शोक में ही सुख है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते-सुने-देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियों को भी मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियों को बिलकुल नहीं होते हैं। (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों ने शरीर के मौज-शोक में ही सुख है, ऐसी मान्यता को मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वह मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते हैं। (३) ज्ञानियों

को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है । (४) शरीर के मौज-शौक में ही सुख है, ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम में अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहा है ।

प्रश्न ८—केवल ज्ञान क्या बताता है ?

उत्तर—(१) जैसे दर्पण के ऊपरी भाग में घट-पटादि प्रतिबिम्बित होते हैं, उसका प्रयोजन यह है कि दर्पण को ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं इन पदार्थों को प्रतिबिम्बित करूँ, उसी प्रकार केवल ज्ञान रूपी दर्पण में समस्त जीवादि पदार्थ परिणमित होते हैं । कोई द्रव्य या पर्याय ऐसी नहीं है, जो केवलज्ञान में ना आवे । (२) केवलज्ञान में सर्व पदार्थ जानने में आने पर भी केवलज्ञान और सर्व पदार्थों का अत्यन्त अभाव है । (३) केवलज्ञान है, इसलिये सर्व पदार्थ है, ऐसा नहीं है । सर्व पदार्थ हैं, इसलिये केवलज्ञान है, ऐसा भी नहीं है । परन्तु दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है । (४) केवलज्ञान को मानते ही विश्व व्यवस्था का सच्चा ज्ञान हो जाता है । विश्व व्यवस्था को जानते ही केवली को भी माना । तभी आत्मा में से अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा मिथ्यात्वादि का अभाव होकर सम्यक्-दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है । (५) जैसे दर्पण अपना स्वरूप छोड़कर पदार्थों को प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नहीं जाता और वे पदार्थ भी अपना स्वरूप छोड़कर उस दर्पण में प्रवेश नहीं करते हैं, उसी प्रकार केवलज्ञान अपना स्वरूप छोड़कर विश्व के पदार्थों को प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नहीं जाता और विश्व के पदार्थ भी अपना स्वरूप छोड़कर केवलज्ञान में प्रवेश नहीं करते हैं । (६) केवलज्ञान को मानते ही पर में कर्ता-भोक्ता की खोटी मान्यता का तुरन्त अभाव हो जाता है और अपने निज भगवान का पता चल जाता है । (७) विश्व व्यवहार से ज्ञेय है । वैसे तो ज्ञान पर्याय ज्ञेय और निज भगवान ज्ञायक । परन्तु ऐसे भेद से भी सिद्धि नहीं है तू ज्ञायक, नायक, ज्ञायक । जय वीतराग देव की ।

लघु द्रव्य संग्रह

(श्री नेमीचन्द्र आचार्य देव कृत)

२५ श्लोक वाली २५ प्रश्नोत्तरों के रूप में

प्रश्न १—जिनेन्द्र देव ने किसका वर्णन किया है ?

उत्तर—छह द्रव्य; पांच अस्तिकाय; सात तत्त्व, नव पदार्थ और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का वर्णन किया है ॥१॥

प्रश्न २—छह द्रव्यों के नाम और उनमें अस्तिकाय कौन-कौन हैं ?

उत्तर—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये छह द्रव्य हैं। काल द्रव्य को छोड़कर शेष पांच द्रव्य बहुप्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय हैं ॥२॥

प्रश्न ३—सात तत्त्व और नव पदार्थ के नाम क्या-क्या हैं ?

उत्तर—(१) जीव, अजीव, आत्मव बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। (२) ये सात तत्त्व पुण्य-पाप सहित नव पदार्थ हैं ॥३॥

प्रश्न ४—जीव द्रव्य कौसा है और उसके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) जीव द्रव्य अमूर्तिक, स्वदेह प्रमाण, सचेतन, कर्ता और भोक्ता है। (२) जीव दो प्रकार के है—सिद्ध और ससारी। (३) ससारी जीव अनेक प्रकार के है ॥४॥

प्रश्न ५—जीव की पहिचान क्या है ?

उत्तर—जो अरस, अरुप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द तथा अनिर्दिष्ट संस्थान है (जिसके कोई संस्थान नहीं है) चेतना गुण वाला है और इन्द्रियो के द्वारा अग्राह्य है—उसे जीव जानो ॥५॥

प्रश्न ६—मूर्तिक पुद्गल काय किसे कहते हैं और कितने प्रकार का है ?

उत्तर—जिसके वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श विद्यमान हैं, वह मूर्तिक

पुद्गल काय है। उसे जिनेन्द्र भगवान ने पृथ्वी आदि छह प्रकार का कहा है ॥६॥

प्रश्न ७—पृथ्वी आदि छह प्रकार के नाम क्या हैं ?

उत्तर—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) छाया, (४) नेत्र इन्द्रिय को छोड़कर चार इन्द्रियो के विषय, (५) कर्म वर्गणा, (६) परमाणु ॥७॥

प्रश्न ८—धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वयं गमन से परिणत पुद्गल और जीवो को गमन में निमित्त धर्म द्रव्य है। जिस प्रकार मछलियों के गमन में जल निमित्त है। किन्तु गमन न करने वालो को और स्थिर रहे हुये पुद्गल और जीवो को धर्म द्रव्य गमन नहीं कराता ॥८॥

प्रश्न ९—अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वयं गतिपूर्वक स्थित रहे हुये जीव और पुद्गलो को स्थिर होने में निमित्त अधर्म द्रव्य है। जिस प्रकार छाया यात्रियो को स्थिर होने में निमित्त है। किन्तु गमन करते हुये जीव-पुद्गलो को अधर्म द्रव्य स्थिर नहीं करता है ॥९॥

प्रश्न १०—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीवादिक द्रव्यो को अवकाश देने में निमित्त है—उसे जिनेन्द्र देव द्वारा कहा गया और आकाश द्रव्य जानो उसके दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश ॥१०॥

प्रश्न ११—काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो द्रव्यो के परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले हैं वे व्यवहार काल हैं। (२) लोकाकाश के प्रदेश रूप से स्थित एक-एक कालाणु निश्चय काल द्रव्य है ॥११॥

प्रश्न १२—काल द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में रत्त राशि की भान्ति, परस्पर भिन्न, एक-एक काल द्रव्य स्थित हैं। वे काल द्रव्य असंख्य हैं ॥१२॥

प्रश्न १३—द्रव्यों की प्रदेश संख्या कितनी-कितनी है ?

उत्तर—(१) जीव, धर्म, अधर्म के असख्यात प्रदेश हैं । (२) आकाश के अनन्त प्रदेश हैं । (३) पुद्गल के व्यवहारनय से सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश हैं और परमाणु एक प्रदेशी है । (४) प्रत्येक काल द्रव्य एक प्रदेशी ही है । काल द्रव्य में शक्ति या व्यक्ति की अपेक्षा से बहुप्रदेशीपना नहीं है ॥१३॥

प्रश्न १४—प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर—अविभागी पुद्गल परमाणु द्वारा जितना आकाश रोका जाये उसे प्रदेश कहते हैं । वह प्रदेश सर्व परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ है ॥१४॥

प्रश्न १५—जीवादि के विषय में जिनेन्द्र भगवान ने क्या बताया है ?

उत्तर—(१) जीव ज्ञान युक्त है । (२) पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव हैं । इस प्रकार जिनेन्द्र देव ने कहा है । ऐसा जो नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ॥१५॥

प्रश्न १६—आलव किससे होता है और बन्ध क्या है ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, हिंसादि अव्रत, कषाय और योगो से आलव होता है । (२) कषाय सहित जीव अनेक प्रकार के पुद्गलों का जो ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥१६॥

प्रश्न १७—जिनेन्द्र देव ने संवर-निर्जरा किसे कहा है ?

उत्तर—(१) जिनेन्द्र देव ने मिथ्यात्वादि के त्याग को संवर कहा है । (२) कर्मों के एकदेश क्षय को निर्जरा कहा है और निर्जरा के दो भेद कहे हैं—अमिलाषा रहित सकाम-अविपाक निर्जरा तथा अमिलाषा सहित अकाम-सविपाक निर्जरा कही है ॥१७॥

प्रश्न १८—मोक्ष किसे कहा है ?

उत्तर—कर्मों के बन्धन से बन्धे हुये प्रशस्त अन्तरात्मा का सर्व

कर्मों का पूर्णरूप से छूटना—सो मोक्ष है—ऐसा जिनेन्द्र देव ने वर्णन किया है ॥१८॥

प्रश्न १९—पुण्य और पाप प्रकृतियाँ कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर—साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और तीर्थ-कर आदि पुण्य प्रकृतियाँ हैं। अन्य शेष पाप प्रकृतियाँ हैं—ऐसा परमागम में कहा है ॥१९॥

प्रश्न २०—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किसमें होते हैं ?

उत्तर—मनुष्य पर्याय नष्ट होती है, देव पर्याय उत्पन्न होती है तथा जीव वही का वही रहता है। इस प्रकार सर्व द्रव्यों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं ॥२०॥

प्रश्न २१—वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किस अपेक्षा से है ?

उत्तर—(१) पर्यायनय से वस्तु में उत्पाद-व्यय होते हैं। (२) द्रव्य दृष्टि से वस्तु को ध्रौव्य जानना चाहिए—ऐसा सर्वज्ञ देव द्वारा कहा गया है ॥२१॥

प्रश्न २२—सुखी होने के लिये क्या करना चाहिए ?

उत्तर—यदि कर्मों का नाश चाहते हो तो परमागम के ज्ञाता होकर स्वयं में स्थित रहकर और मन को स्थिर करके राग-द्वेष को छोड़ना चाहिये ॥२२॥

प्रश्न २३—सच्चे सुख को कौन प्राप्त होता है ?

उत्तर—जो आत्मा विषयों में लगे हुये मन को रोककर, अपने आत्मा को अपने द्वारा ध्याता है—वह आत्मा वास्तव में सच्चे सुख को प्राप्त करता है ॥२३॥

प्रश्न २४—कैसे साधुओं को नमस्कार करना चाहिये ?

उत्तर—जीवादि को सम्यक् प्रकार से जानकर जिन्होंने उन जीवादि का यथार्थ वर्णन किया है। जो मोहरूपी हाथी के लिये सिंह समान हैं—उन साधुओं को नमस्कार करना चाहिये ॥२४॥

प्रश्न २५—ये गाथायें क्यों और किसके निमित्त रची हैं ?

उत्तर—सोमश्रेष्ठ के निमित्त से, भव्य जीवों के उपकार हेतु श्री
सैमीचन्द्र आचार्य देव ने पदार्थों का लक्षण बतलाने वाली २५ गाथाएँ
रची हैं ॥२५॥

सैमीचन्द्र आचार्य देवकृत लघु द्रव्य सग्रह सम्पूर्ण

—::०::—

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

प्रारम्भ से पहले अशुद्धियों को शुद्ध कीजिये

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
६४	५	जैनधम	जिनधर्म
६४	१५	प्रधीन	प्रधान
६६	१०	सिद्धान्य	सिद्धांत
७६	२०	दाष	दोष
८५	१३	दर्शनमाह	दर्शनमोह
९०	१६	ओर	और
९०	२०	विज्ञाघन	विज्ञानघन
१०३	१४	हाती	होती
१०६	२५	ओर	और
१०७	१२	ओर	और
१०८	२१	प्रवत	प्रवत
१११	१	सम्यग्दर्शन	सम्यग्दर्शन
११४	१७	चौदहव	चौदहवें
११४	२४	प्रमादि	प्रमाद
१२७	१६	वशिष्ट	वशिष्ट
१२८	१०	सम्यत्त्व	सम्यक्त्व
१३४	२	ओर	और
१७०	२७	निश्चय	निश्चय

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१८६	२६	ज्ञानघनरूप	ज्ञानघनरूप
१९२	२१	ही	हैं
१९६	१०	आत्मावलाकन	आत्मावलोकन
१९६	२५	झठा	झूठा
२०४	१	जन	जैन
२०६	१६	शन्तिनाथ	शान्तिनाथ
२१३	१७	भदरूप	भेदरूप
२२८	२७	वतादि	व्रतादि
२३४	१३	की	को
२४५	१५	सक्षीभूत	साक्षीभूत
२५०	१४	कसे	कैसे
२५०	२५	प्रवृत्तिया	प्रकृतिया
२५२	१	आर	वीर
२५४	२१	छूटकर	छूटकर
२७२	२७	परिगमन	परिणमन
२६३	२	जसे	जैसे
२६६	१	कुशास्त्र	कुशास्त्र का
	८	घमकर	धूमकर



